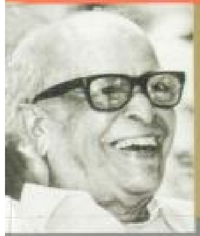
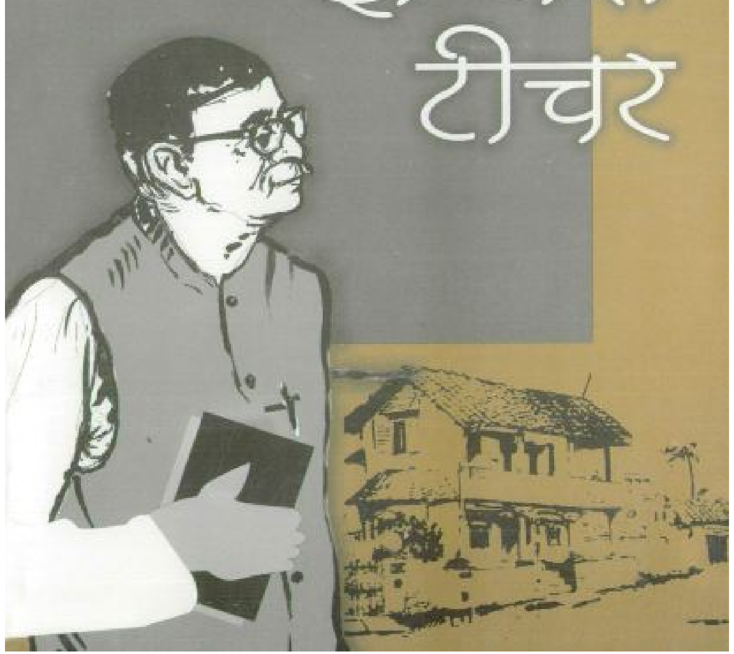
साहित्य अकादमी से पुरस्कृत लेखक

आर. के. नारायण



The English Teacher का हिन्दी अनुवाद

इंग्लिश टीचर



1

मेरा आज का दिन काफी अच्छा रहा—न ज्यादा फिक्र न परेशानियाँ, और सबसे बड़ी बात यह कि अपना किया भी ज्यादातर ठीक ही लगा। आज मैंने वे सब काम निबटा दिये जिन्हें मैं करना चाहता था, इसलिए मैं बहुत खुश और संतुष्ट महसूस कर रहा हूँ एकदम हीरो की तरह! कई दिन से मैं परेशान था और सोच रहा था कि अब कुछ कर ही डालूं लेकिन मुझे यह हो क्या गया था? मैं समझ नहीं पा रहा था, कुछ असंतोष, कुछ विद्रोह अपने ही प्रति... यही कह सकता हूँ। मेरे मन में बार-बार यह भावना आ रही थी कि, अब चूंकि मेरी उम्र तीस की हो रही है, मुझे गाय की तरह निरीह नहीं बने रहना चाहिए... हालांकि, सच कहूँ कि गाय को यह तुलना सुनकर अच्छा नहीं लगेगा... सिर्फ खाना, चलना-फिरना, बात करना, काम करना...यह सब ठीक तरह करते हुए भी हमेशा सोचते रहना कि कहीं कुछ रह गया है।

इसलिए मैंने अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी का जायज़ा लिया। सवेरे आठ बजे उठना, पचासवीं दफ़ा मिल्टन, कारलायल और शेक्सपियर को पढ़ना, लड़कों की कापियाँ देखना, खाना पेट में डालना, कपड़े पहनना और कॉलेज की दूसरी घंटी बजने से ऐन पहले हॉस्टल से निकलकर वहाँ जा पहुँचना; फिर चार घंटे बाद अपने कमरे में वापस आ जाना। एलबर्ट मिशन कॉलेज के कई सौ लड़कों को शेक्सपियर और मिल्टन इस तरह जमकर पढ़ाना कि इम्तहानों में वे खूब अच्छे नंबर प्राप्त करें जिससे साल के अंत में मुझे अधिकारियों से ऊँचा-नीचा न सुनना पड़े... यह काम कुछ बहुत आसान नहीं होता था। इस सारी मेहनत के लिए मुझे हर महीने की पहली तारीख को सौ रुपये पकड़ाये जाते थे, और 'लेक्चरर' कहा जाता था। मुझे इससे संतुष्ट होना और उन्हें धन्यवाद देना चाहिए था। लेकिन यह मेरे लिए संभव नहीं था, मेरा स्वभाव कुछ और ही था, शायद इसलिए क्योंकि मैं कवि हूं और हमेशा मुझे यह भावना परेशान किये रहती है कि मैं गलत काम कर रहा हूँ। इसलिए मैं हमेशा अपनी आलोचना करता रहता हूं... और हर बात इस वृत्ति को बढ़ावा देती लगती है। मिसाल के लिए, उस दिन विभाग के प्रमुख मि. ब्राउन ने जो कहा, वह सही हो सकता था, लेकिन मुझे इससे चिढ़ ही पैदा हुई।

उन्होंने हम सबको शाम के समय अपने कमरे में बुलाया। परिस्थितियाँ सामान्य होतीं तो वे मुस्कराकर हमारा स्वागत करते, एकाध हँसी-मज़ाक करते और शुरु के दो-चार मिनट इधर-उधर की बातें करके फिर मुख्य विषय की चर्चा करते। लेकिन आज वे चुप और गंभीर थे। सबको बैठ जाने का इशारा करके कहने लगे, "आज मुझे एक बात से गहरा धक्का लगा। इंगलिश ऑनर्स के एक छात्र को अब तक यह नहीं पता कि 'ऑनर्स' (honours) शब्द में 'यू' (u) का प्रयोग होता है।"

यह कहकर वे मुँह टेढ़ा कर हँसे। हम सबने एक-दूसरे को परेशानी से देखा और सोचने लगे कि इसके जवाब में क्या कहा जाय। असिस्टेंट प्रोफेसर गणपति ने हमको इस तरह घूरकर देखा जैसे इसके लिए हम ही ज़िम्मेदार हों। ब्राउन ने कुछ और कहने के लिए गला साफ किया और हम उनके होंठों की तरफ देखने लगे। अब उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के महत्व पर बोलना शुरु किया और कहा कि भाषा की शुद्धता बनाये रखना बहुत ज़रूरी है। वे तीस साल से भारत में हैं और चाहते हैं कि यहाँ के लोगों को सही अंग्रेज़ी लिखना और बोलना सिखा सकें। इसके लिए

अंग्रेज़ी विभाग की बड़ी ज़िम्मेदारी है। यह सुनते ही गणपति ने फिर हम सब पर एक खूँख्वार नज़र डाली। हमारे अध्यक्ष पूरे पैंतालीस मिनट इस विषय पर बोलते रहे; फिर समाप्त करते हुए उन्होंने एक मज़ाक जैसी बात कहकर वातावरण को हलका बनाने की कोशिश की: 'गणित ऑनर्स वालों के लिए भी यह गलती बहुत गंभीर है।'

सब बाहर निकले तो मैं गणपति के पीछे था। वे इतने चिंतित दीख रहे थे कि मेरा मन हुआ कि उनको ऐसा धक्का दूँ कि वे वहाँ से बुलबुले की तरह फूटकर गायब हो जायँ। लेकिन मैंने अपने पर काबू किया। यह करना ठीक नहीं होगा, वे मेरे सीनियर हैं और मुझे हर रोज़ घंटा भर ज़्यादा काम करने को कह सकते हैं, या मुझे भाषा का इतिहास पढ़ाने के लिए, जिसके बार में मैं रत्ती-भर नहीं जानता, ज़ोर डाल सकते हैं। हॉस्टल के फाटक तक मुझे उनके साथ शांतिपूर्वक चलना होगा। वे अपना महत्व महसूस करते हुए इधर-उधर देखते चल रहे थे। कहते जा रहे थे, शर्म की बात है... मुझे पता ही नहीं था कि लड़के इतने खराब हैं...हमारा काम अच्छा नहीं है, यह साफ है... मैं चिढ़ उठा और बोला, "मि. गणपति, दुनिया में एक अक्षर न लिखने से कहीं ज्यादा बड़ी बुराइयाँ हैं।' यह सुनते ही वे चलते-चलते रुक गये और मेरी तरफ घूरकर देखने लगे। लेकिन मैंने परवाह नहीं की। आगे बढ़कर कहा, हमें साफ़ बात करनी चाहिए। मि. ब्राउन से पूछिये, हिन्दुस्तान में उन्होंने तीस साल बिताये हैं। यहाँ की दो सौ भाषाओं में से किसी भी भाषा में वे यह कह सकते हैं— 'बिल्ली चूहे का पीछा कर रही है?'

'इसका उस बात से क्या संबंध है?' गणपति ने कहा।

'वे यह क्यों सोचते हैं कि सीखने की सारी ज़िम्मेदारी हमारी है, उनकी कुछ भी नहीं। उन्हें अपनी बातें इतनी महत्वपूर्ण क्यों लगती हैं?'

"गुडनाइट", कहकर गणपति चलते बने। इससे मुझे क्रोध आ गया और मैं अपमानित महसूस करने लगा, इसलिए मैं काफी देर तक ब्राउन और गणपति की बातों पर सोचता रहा। लेकिन अचानक मुझे समझ आ गई और मैं चुप हो गया। मुझे साफ लगा कि अपने ऊपर मेरा नियंत्रण कमज़ोर है और मैं अपने को रोक पाने में कामयाब नहीं होता। अब मैं निर्दय होकर अपनी आलोचना करने लगा। सोचने लगा कि मैं अपने विचारों पर लगाम क्यों नहीं लगा पाता। लेकिन मेरे इस सोच-विचार का कोई नतीजा नहीं निकला, बल्कि शाम होते-होते मैं और ज्यादा थककर चूर हो गया। मुझे अफसोस होने लगा कि इस फिज़ूल के काम में मैंने अपनी शाम बरबाद कर दी। फिर अचानक एक बहुत अच्छी बात मुझे सूझ गई। मेरी यह स्थिति इसलिए है कि मैं रोज़ाना कसरत नहीं करता और मेरी आदतें अनियमित हैं। इसलिए मैंने फैसला किया कि मैं कल सवेरे जल्दी उठूँगा, नदी के किनारे लंबी सैर को जाऊंगा, कुछ दूर दौडूँगा, नदी में नहाऊँगा और इस तरह अपनी आदतें बदलूँगा।

रात को खाने के बाद हॉस्टल में पड़ोसी कमरों के मेरे दोस्त हमेशा की तरह गपशप के लिए इकट्ठे होने लगे। हम सब साथी थे। एक था रंगप्पा जो लड़कों को दर्शन पढ़ाता था, दूसरा था गोपाल, गणित का लेक्चरर... लेकिन दुनियावी मामलों में यह बिलकुल कोरा था। सच बात तो यह है कि वह किसी और बात की तरफ ध्यान ही नहीं देता था। लेकिन उसकी प्रतिभा के कारण हम उसे बहुत चाहते थे और सोचते रहते थे कि अपने गणित के क्षेत्र में यह जरूर कुछ महत्त्वपूर्ण काम कर रहा होगा। उसे भी उम्मीद थी कि किसी न किसी दिन वह गणित के विषय में कोई ऐसी नई खोज प्रकाशित करा देगा जिससे दुनिया की सोच एकदम बदल जायेगी। लेकिन यह खोज क्या होगी, इसे ईश्वर ही जानता होगा। मुझे वह इसलिए बहुत पसंद था क्योंकि वह दोस्त अच्छा था। किसी बात का विरोध नहीं करता था, और घंटों दूसरे की बात, बिना यह समझे कि

दूसरा कह क्या रहा है, सुनता रह सकता था।

आज की रात अंग्रेज़ी की स्पेलिंग और ब्राउन की मीटिंग के बारे में ही बात होती रही। मैं हमेशा की तरह उत्तेजित था, लेकिन रंगप्पा मेरी बात समझ नहीं पा रहा था। वह बोला, "पर, प्यारे भाई, तुम यह क्यों नहीं समझते कि 'i' के ऊपर बिंदी और 't' के ऊपर कट्टा लगाने के लिए ही तो तुम्हें तनख़ाहें दी जाती हैं।" गोपाल अब तक चुपचाप सब कुछ सुन रहा था, लेकिन यह सुनकर एकदम बोल पड़ा, 'मेरी समझ में तुम्हारी बात नहीं आई।'

मैंने कहा कि 'i' पर बिंदी और 't' पर कट्टा लगाने के लिए ही अंग्रेज़ी विभाग बनाया गया है।

'अच्छा', उसने आँखें फाड़ते हुए कहा। 'मैं तो यह नहीं जानता था। लेकिन आप लोग यह करते क्यों हैं?' तथ्यों और आँकड़ों के बिना काम न करने वाला उसका दिमाग़ कथ्य पर आकर अटक गया था। प्रतीक उसके दिमाग़ में घुस नहीं पाते थे, और वे भी तभी घुसते थे जब वे गणित के प्रतीक हों।

रंगप्पा ने उत्तर दिया, 'सुनो, गोपाल तुमने अंग्रेज़ी का यह मुहावरा सुना है, 'Raining cats and dogs' (रेनिंग कैट्स एण्ड डॉग्स)?'

'हाँ, सुना है।'

'तो तुमने कभी आसमान से बिल्लियाँ और कुत्ते बरसते देखे हैं?'

'नहीं, कभी नहीं देखे। लेकिन क्यों?'

रंगप्पा इस बहस को आगे और भी खींचता, लेकिन तभी कालेज का दस का घंटा बजा और (मैंने 'गुड बाय') कहकर सबसे विदा लेनी चाही। गोपाल तो तुरंत 'गुड बाय' कहकर उठने लगा, लेकिन रंगप्पा जमा बैठा ही रहा और दार्शनिक होने के कारण, जो सवाल किये बिना कुछ भी नहीं स्वीकार करते, तुरंत बोला, 'आज यह जल्दी क्यों?'

'मैं नई आदतें डालना चाहता हूँ...'

'इन आदतों में क्या खराबी है?' यह कहकर वह जवाब का इन्तज़ार करने लगा। लेकिन मेरी कहानी लंबी थी, और इस समय बताई नहीं जा सकती थी। पर रंगप्पा अपनी जगह से हिला नहीं और जवाब के लिए आग्रह करने लगा।

'मैं कल जल्दी उठ जाना चाहता हूँ,' मैंने कहा।

'किस वक्त?'

'पाँच बजे से पहले।'

'लेकिन क्यों?'

'मैं चाहता हूँ कि उगता हुआ सूरज देखूँ और काम पर जाने से पहले कुछ कसरत वगैरह करूँ।'

'अरे वाह! यह तो बहुत अच्छी बात है। मुझे भी उठा लेना, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा...,' रंगप्पा उठते हुए बोला। मैं सबको दरवाजे तक छोड़ आया।

मेरे पास एक अलार्म घड़ी थी जिस पर कभी-कभी मैं लगाये गये वक्त पर बज जाने के लिए भरोसा कर सकता था। इसे मैंने कई साल पहले मद्रास में एक कबाड़ी के ढेर से खरीदा था। इसका चेहरा लाल रंग का था और बीसियों दफ़ा इसमें तेल डाला जा चुका था और मरम्मत भी हो चुकी थी। वक्त तो यह घड़ी सही देती थी लेकिन अलार्म का पुर्ज़ा कुछ खराब था। इसमें बहुत घर-घर की आवाज़ निकलती थी, और कभी-कभी यह अपने आप ही बज उठता था, और चल रही बातचीत में दखल देने लगता था, और अक्सर जब मैं दरवाज़ा बंद करके बाहर निकलने लगता तो यह एकदम अचानक बज उठता था और तब तक घरघराता रहता था जब तक इसकी

चाबी पूरी खत्म न हो जाय। तब कोई भी बटन दबाओ, यह बंद ही नहीं होता था। मुझे यह भी पता नहीं था कि इसमें बंद करने का कोई इन्तज़ाम है भी या नहीं, इसलिए इसे कैसे बंद किया जाय, यह मैं समझ ही नहीं पाता था... तब इसे ज़मीन पर फेंक कर ही चुप कराया जा सकता था। लेकिन प्रयोग करते रहकर एक दिन मैंने यह खोज लिया कि किसी बहुत भारी चीज़, जैसे टाइन की 'हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिटरेचर', को अगर इसके ऊपर जोर से जमा दिया जाय, जो यह फौरन चीखना बंद कर देता था।

मैंने घड़ी उठाई और बिस्तर पर बैठकर उसे देखने लगा। मन में उससे कहा, 'अब आप पर ही निर्भर हूँ, जनाब!' और साढ़े चार का अलार्म लगाकर सो गया।

साढ़े चार बजे चीखें मारकर इसने मुझे जगा दिया। मैंने बत्ती जलाई, जल्दी से टाइन की किताब उठाई और दबाकर उसे बंद कर दिया। फिर रंगप्पा के कमरे पर गया, खिड़की से एक दर्जन दफ़ा आवाज़ें लगाईं, लेकिन कोई जवाब नहीं आया। मैं बाहर खड़ा बिस्तर पर लुढ़का उसका शरीर देखता चिढ़ रहा था, कि वह ज़रा-सा हिला और बोला, 'कौन है?'

'पाँच बज रहे हैं। तुमने कहा था, मुझे भी जगा देना...'

'लेकिन क्यों?'

'तुमने कहा था कि तुम भी घूमने चलोगे।'

'क्या कहा था?'

'घूमने के लिए...'

'मुझे तो अभी आधी रात लग रही है। तुम भी जाकर सो जाओ। जाओ, इस तरह दूसरों को परेशान मत करो...', यह कहकर वह फिर लुढ़क गया।

मैं हॉस्टल के फाटक से बाहर निकला। कॉलेज और हॉस्टल दोनों नदी से सौ-दो सौ गज़ से ज्यादा दूर नहीं थे। एक पतली-सी गली पार करके हम नदी की रेत पर पहुँच जाते थे। गली में गुज़रते हुए मैंने देखा कि म्युनिसिपैलटी के एक-दो लैंप अभी भी जल रहे हैं, लेकिन वे बुझने ही वाले हैं...? पूरब का आसमान लाल होने लगा था। यह देखकर मैं फड़क उठा। सोचने लगा कि इतना शानदार नज़ारा सामने है लेकिन लोग सो ही रहे हैं, उठकर इसे देखते क्यों नहीं? मुझे रंगप्पा की याद आई। बिलकुल खुश्क दार्शनिक है... उस पर इस खूबसूरती का क्या असर होगा! बेकार आदमी... जो हो, मुझे क्या लेना-देना...'

सुबह की ओस से रेत गीली हो रही थी, लेकिन उसमें पैर डालते ही भीतर पिछले दिन की गर्मी महसूस होने लगी। झुट-पुट अँधेरा था लेकिन कुछ लोग नदी के आस-पास नहाते-धोते दिखाई पड़ रहे थे। किनारे बरगद के घने वृक्ष थे जिनमें बने घोंसलों में चिड़ियाँ चहचहाने लगी थीं। मैं सीने में ताज़ी हवा भरते और निकालते हुए पहले धीरे-धीरे फिर तेज़-तेज़ क़दमों से चलने लगा। लग रहा था जैसे किसी बिलकुल नई दुनिया में आ पहुँचा हूँ। करीब चार मील तक मैं इस तरह चलता-दौड़ता रहा। फिर एक जगह रुककर किनारे की थोड़ी-सी ज़मीन साफ की, उस पर अपने कपड़े उतारकर रख दिय और नदी में घुस गया। नहाकर वापस आया, तौलिये से बदन रगड़-रगड़ कर साफ किया, तो ऊपर से नीचे तक दौड़ती एक नई ताज़गी महसूस की। बचपन के दिनों में गाँव में अक्सर मैं इस तरह नहाता था लेकिन उसके बाद पहली बार यह खुशी महसूस की। कितनी ज़बरदस्त थी यह खुशी...! सवेरे का यह वक्त, ताज़ी बहती हवा, चारों ओर प्रकृति... अरे, यह प्रकृति ही तो है जिसके गीत गाते कवि लोग पागल हो गये...। इसमें कुछ ऐसा सूक्ष्म तत्व होता है, जिसका सेवन करके और जिसके साथ आत्म-सात होकर मनुष्य...सुख और शांति की परम अवस्था प्राप्त कर लेता है। मैंने तय किया कि अब फौरन वापस चलूँ और कमरे पर पहुँचकर एक सुंदर-सी कविता लिख डालूँ।

मैं कविता में लिखूँगा, शरीर पर शीतल-जल से पड़ने वाला प्रभाव, सीने और चेहरे पर लगती ठंडी हवा, नदी की कलकल ध्वनि, पक्षियों का गुंजन, सुबह की पहली किरणों का जादू... और इन सबसे मिलकर बनने वाला ऊर्जस्वी प्रभाव... फिर मैं क्षण-भर रुका और सोचने लगा कि यह कविता अगर मैं अपनी क्लास में पढ़कर सुनाऊँ तो लड़कों पर क्या प्रभाव पड़ेगा! नहीं, कविता समझते हुए तो लड़कों को ज़बरदस्ती अपना धीरज बनाये रखना पड़ता है, पढ़ाने वाले को बड़ी मुश्किल से उसके अर्थ उनके दिमाग़ में बिठाने पड़ते हैं, और इस सब मशक्कत में उसका वास्तविक भाव, गहरा अनुभव, एकदम नष्ट हो जाता है।

सात बजे तक मैं कमरे में लौट आया। सुबह की इस सैर से मैं बहुत प्रसन्न और संतुष्ट था। अपने से कहने लगा; 'मैं एकदम स्वस्थ हूँ। हर रोज़ यह सब कर सका तो कितना अच्छा रहेगा! रोज़ कविता की सौ लाइने लिख सकूँगा, जो कुछ पढ़ना चाहता हूँ पढ़ सकूँगा, अपने क्लास-वर्क के अलावा...' तभी मुझे पहले भी एक दर्जन दफ़ा किये गये ऐसे वादे याद आने लगे जिन्हें टूटने में देर नहीं लगती थी...। लेकिन मैंने अपनी इस निराशा पर लगाम लगाई: 'नहीं, अब मैं बिलकुल बदल गया हूँ... अब ऐसा नहीं होने दूँगा...'

'कैसे नहीं होने दूँगा?' भीतर से आवाज़ आई।

'चुप रहो', मैंने चीखकर जवाब दिया। सवाल मत करो।' ...लेकिन मेरी आत्मा बराबर मुझे टोक रही थी, उन सब कामों के लिए जो अब तक पूरे नहीं किये गये हैं, लाइब्रेरी और दोस्तों से लाई गई वे सब किताबें जो मेज़ पर अनछुई पड़ी हैं, बहुत-से खत जिनके अभी तक जवाब नहीं दिये गये हैं। महीनों पहले शुरू की गई कविताएं जो कागज़ों पर अधलिखी पड़ी हैं, पत्नी का फोटो जिसे फ्रेम कराकर दीवार पर लगाना है—लेकिन जो महीनों से कार्डबोर्ड में ही चिपका मेज़ पर पड़ा धूल खा रहा है और बीच में किताबों के घुसने से टेढ़ा-मेढ़ा भी हो गया है...

कमरे में घुसते ही जैसे यह मेज़ मुझ पर हमला करने को दौड़ने लगी, तो मैंने भुनभुनाकर कहा, 'अब इसे ठीक करके ही मानूँगा', और कुर्सी पर धप से बैठ गया। फिर जोर से आवाज़ लगाकर नौकर को पुकारा, 'सिंगाराम।' वह चालीस साल से हॉस्टल में काम कर रहा था और हम सबको, जो पहले यहाँ विद्यार्थी थे और अब अध्यापक बन गये थे, अच्छी तरह जानता था; यह बूढ़ा हम सबको ही नहीं, वरिष्ठ प्रोफेसरों और प्रिंसिपल को भी नफ़रत की नज़र से देखता था। बोलता भी बड़ी उजड्डता से था जो इसकी आदत ही बन चुकी थी। यह चूँकि हम सबको बचपन से देखता आया था, इसलिए उसे शायद हमारी उन्नति और लेक्चरर के पद फ़र्ज़ी और बकवास लगते थे, जिसे स्वीकार करना उसके लिए संभव नहीं था।

'सिंगाराम', मैंने फिर आवाज़ लगाई तो पता नहीं कहाँ से उसका जवाब आया, 'इन्तजार करो, मैं आ रहा हूँ... इस तरह चिल्लाओगे तो तुम्हारी आवाज़ बैठ जायेगी।'

कुछ मिनट बाद वह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, बूढ़े चेहरे पर गुस्से-भरी झुर्रियां लिये 'मालूम है, क्या बजा है अब? भंगिन ने ठीक से सफाई नहीं की? फिर अपनी पुरानी आदतों पर उतर आई है?'

'रसोइए से कहो, मेरी कॉफ़ी ले आये।'

'इतनी देर बाद? काफी पीने में इतनी देर क्यों लगाते हो, इस वक्त तो तुम्हें मेज़ पर होना चाहिए था...'

'सिंगाराम, मैं नदी पर नहाने चला गया था। बड़ा अच्छा लगा नहाकर...' यह सुनकर वह खुश हुआ।

'अच्छी बात है, अब तुम नहाने के लिए पानी गरम होने का इन्तज़ार नहीं करोगे। असली आदमी के लिए नदी पर नहाना ही असली स्नान है। मैं अस्सी साल का हूँ लेकिन अभी तक एक

भी दिन बीमार नहीं पड़ा और न कभी गरम पानी से नहाया...'

'शायद ठंडे पानी में भी नहीं नहाये होंगे', मैं यह कह ही रहा था कि वह कॉफ़ी भिजवाने चला गया।

मेज़ पर रखी किताबें एक तरफ सरकाकर मैंने सामने खाली जगह बना ली और कागज़ रखकर 'प्रकृति' विषय पर 50 पंक्तियों की एक लंबी कविता लिख डाली। फिर उसे कई बार पढ़ा और वह बहुत संतोषजनक लगी। मुझे महसूस हुआ कि सृष्टि की अनंत योजना में मैंने एक कर्तव्य पूरा किया है।

उस दिन मुझे चार घंटे क्लासों में पढ़ाना था। जूनियर बी० ए० में 'लियर' सीनियर आर्ट्स में निबंध लेखन की क्लास, और दूसरी कक्षाओं में गद्य और पद्य...। पूरे चार घंटे की लगातार क्लासें और मैंने अभी तक कुछ भी तैयारी नहीं की थी।

मैं कक्षा में पाँच मिनट देर से पहुँचा और सोचा कि पंद्रह मिनट हाज़िरी लेने में गुज़ार दूँगा। रजिस्टर निकालकर नाम बोलना शुरु किया।

'यस,सर',... 'प्रेजेंट, सर'... के साथ हाज़िरी भरने लगा। सामने बैठे दो छात्रों ने उठकर सुझाव दिया, 'सर, हाज़िरी पीरियड के अंत में लगा लें।'

'बैठ जाओ, यह ठीक नहीं होगा। अगली क्लास का नुकसान होगा...'

इस पर क्लास में शोर होने लगा, कुछ लोग कहने लगे कि हाज़िरी अभी ली जाय और कुछ कि बाद में। मैंने मेज़ पर ज़ोर से मुक्का मारते हुए कहा, 'बंद करो यह सब...नहीं तो मैं सबकी एब्सेंट लगा दूँगा।

'सर, हाज़िरी लगाने में ही सारा वक्त निकल जाता है।'

'लेकिन यह ज़रूरी है। जितने दूसरे काम ज़रूरी हैं, उतना ही यह भी है। शोर बंद करो और अपने नाम सुनो... नहीं तो सबको ग़ैरहाजिर कर दूँगा।' यह सुनकर लड़के शांत हो गये... मैं उन सबसे ज्यादा ज़ोर से बोल रहा था...शेर को काबू करने का दाँव था यह। किसी गंभीर क्षण में मैं आज्ञापालन के प्रश्न पर विचार कर सकता था...। अलग-अलग घरों में पले, अलग-अलग वातावरण में पनपे, ये लड़के, कहीं प्यार-दुलार, कहीं माता-पिता, चाचा, बड़े भाई वगैरह की डाँट-फटकार, जो सब इनकी उन्नति और विकास के लिए ही किये गए होंगे—इन सबको आज्ञा देने वाला मैं होता कौन हूँ? इनके और मेरे बीच किस वस्तु का बंधन है? पुराने ज़माने के अध्यापक जिस तरह छात्रों के साथ अपने को घुला-मिला लेते थे, उस तरह क्या मैं इनके लिए कर पाता हूँ? मैं तो साधारण-सा व्यक्ति हूँ जिसने इनसे कुछ वर्ष पहले 'लियर' का पाठ रट लिया है और अब इन्हें एलिज़ाबेथ काल की अंग्रेज़ी की उलझनों से गुज़ारने की कोशिश करता हूँ। यह सब न मैं इनके लिए अपने प्यार के कारण करता हूँ, न शेक्सपियर के प्रति प्यार के कारण, बल्कि खुद अपने लिए ही करता हूँ। इसके बजाय अगर मुझे इतने घंटे तक सीपियाँ एक-दूसरे में पिरोने या कागज़ फाड़-फाड़कर बाहर फेंकने के लिए सौ रुपया महीना दिया जाता तो ये सब काम भी मैं इतने ही उत्साह और लगन से करता। लेकिन क्लास लेते वक्त हमें ये विचार आते ही नहीं। मैंने मेज़ पर फिर मुक्का मारा, और लड़कों से भी ज्यादा ज़ोर से चिल्लाकर सबको शांत कर दिया... और यह सब करते-कराते आधा घंटा गुज़ार दिया।

फिर मैंने किताब खोली। पिछले दिन जहाँ तक पढ़ाया था, पैंसिल से निशान लगा दिया था —एक्ट तीन के प्रथम दृश्य के बीच...

मैंने सामान्य ढंग से बोलना शुरु किया, 'पिछले दिन, जहाँ लियर तूफान के सामने खड़ा है, खत्म किया था... इस महान ट्रेजेडी का यह बहुत महत्वपूर्ण भाग है...?' ये शब्द मेरे अपने ही कान में खोखले लग रहे थे। मन का एक हिस्सा मुझसे ही कह रहा था: 'बेचारे लड़के इस वक्त,

तुम्हारे श्रेष्ठतर ज्ञान से प्रभावित, तुम्हें सुनने के लिए एकदम तैयार हैं; जो भी तुम कहोगे उसे ये अपनी कापियों में नोट कर लेंगे, लेकिन इन्हें देने के लिए तुम्हारे पास है क्या?' मैंने देखा कि कुछ लड़के सचमुच कलमें लिये लिखने को तैयार हैं; मेरे श्रीमुख से ज्ञान के जो मोती झड़ेंगे, उन्हें वे तुरंत श्रद्धापूर्वक लिख डालेंगे...

मुझे लगा कि मैं इनके सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूँ, कहूँ: 'मित्रो, मुझ पर इतना विश्वास मत करो। मैं सिर्फ वक्त बिताने की कोशिश कर रहा हूँ क्योंकि आज मैं पढ़ाने के लिए तैयार होकर नहीं आया। आज मैं सवेरे...,' लेकिन इसके बजाय मैं यह कह रहा था: 'यह इस ट्रेजेडी का केन्द्रबिन्दु है इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप इस पर पूरा ध्यान दें...' फिर मैंने घड़ी पर नज़र डाली, सिर्फ पन्द्रह मिनट बाकी थे। 'हमेशा की तरह पहले मैं यह पूरा दृश्य पढ़ूंगा, फिर उसके बारे में विस्तार से बताऊँगा...।' मैंने मेज पर रखी किताब का पेज उलटा और पढ़ना शुरू किया:

'लियर और विदूषक का प्रवेश। हवाओ बहो और सबको परेशान कर दो! उमड़ो! तेज़ी से बहो! झरनो और तूफानो, डुबा दो शिखरों को, सब कुछ जलमग्न कर दो!'...

मैं पढ़ता जा रहा था और खुद भी चल रहे तूफान के प्रभाव में डूबता-बहता चला जा रहा था। घटना का कवित्व आगे बढ़ा...

'...और तुम, सबको हिला देने वाले गर्जन-तर्जन, दुनिया के गोलमोल मोटापे को पीट-पीट कर सपाट कर दो!'

मैं समय को भूल चुका था, यह भी कि मैं पढ़ाने के लिए तैयार नहीं हूँ...

'...वे सब महान देवता
जो हमारे सिरों के ऊपर खड़े हैं,
अब अपने दुश्मनों को तलाशें।'

मैं पढ़ता रहा। लड़के ध्यान लगाये सुनते रहे। यह दृश्य खत्म होते ही मैं अगला दृश्य पढ़ने लगा। ...मैं रुक ही नहीं पा रहा था।

'अरे, नंगे गरीब लोगो, तुम सब
जहाँ भी हो, इन हमलों से अपने सिरों की
रक्षा कैसे करोगे? —जिन के ऊपर छत भी नहीं है,
जो सब दिशाओं से असुरक्षित हैं!'

असहाय मानवता की इस दशा पर मुझे रोना आ गया। तभी घंटी बजी, मैंने चैन की साँस लेते हुए किताब बंद की और कक्षा मे बाहर निकल आया।

निबंध-लेखन का घंटा आसानी से बीत गया। दरअसल यह घंटा हमारे लिए आराम करने का घंटा होता है; मेज़ पर पड़ी कापियाँ देखते रहो, और इसमें लड़कों को भी कुछ ज्यादा कहने का मौका नहीं मिलता। यह कमरा दरअसल एक गैलरी का छोटा-सा हिस्सा था, जो दक्षिणी किनारे पर पड़ती थी। मुझे यह कमरा इसलिए बहुत अच्छा लगता था क्योंकि इसमें बगल के एक झरोखे से सूरज की एक बहुत तेज़ किरण पड़ती थी, जिसमें धूल के कण नाचते दिखाई पड़ते थे और दूसरी बेंच पर इसके नीचे बैठने वाले दो लड़के तीखी रोशनी में आग की तरह जलते नज़र आते थे। बहुत साल पहले मैं इसी सीट पर छात्र के रूप में बैठता था, और उन दिनों गजपति आज की तरह असिस्टेंट प्रोफेसर न होकर केवल जूनियर लेक्चरर था। मैं अब भी मन की आँखों से देख सकता हूँ कि वहाँ बैठा मैं किस तरह ध्यान देकर अपनी अंग्रेज़ी सुधारता रहता था, जिससे अध्यापक को डाँटने का अवसर न मिले। और मेरी बायीं और हमेशा रंगप्पा ही बैठता था, जिसे निबंध-लेखन से सख्त नफरत थी। तब मैंने कभी यह सोचा भी न था कि एक दिन मैं

इसी कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा।

लड़के बहुत शोर मचा रहे थे। मैंने धीरे से मेज़ पर हाथ मारा और कहा, 'रामास्वामी, अपनी कापी ले जाओ। इसमें लगाई गलतियाँ देखना। और किसी की कापी में इतनी गलतियाँ नहीं हैं...।' यह एक कविता की व्याख्या थी, जो उसकी समझ में ज़रा भी नहीं आई थी, लेकिन जिस पर उसने दो पूरे पन्ने रँग डाले थे। कविता की पहली पंक्ति थी, 'मृतकों के बीच मेरे दिन बीत चुके हैं...' जिसका रामस्वामी ने अर्थ यह किया था, कि वक्ता अपने मृत संबंधियों की अब कोई चिंता नहीं करेगा क्योंकि वह जिधर भी नज़र डालता है, उसे पुराने ज़माने के अति बुद्धिमान लोग ही दिखाई देते हैं— और यह उसने मूल कविता की ज्यों-की-त्यों नक़ल मार दी थी... वगैरह-वगैरह। मुझे यह पदान्वय मज़ेदार लगा। इसलिए मैंने रामास्वामी को बुलाकर उसकी कापी उसे लौटा दी। मैंने उसमें जो टिप्पणी लिखी थी, उसे खुलकर बताया नहीं जा सकता। जब वह पास आया, मैंने कापी खोलीं, पन्ने के अंत में लिखी टिप्पणी उसे दिखाई और पूछा, 'मैंने जो लिखा है, उसका मतलब समझ में आया?'

'जी सर...,' उसने धीरे से कहा।

'तुम्हारी अंग्रेज़ी बहुत कमज़ोर है।'

'जी, सर...'

'कविता का अर्थ तुम्हारी समझ में आया?'

'जी नहीं, सर...'

'फिर इतना ज्यादा क्यों लिख मारा?'

'पता नहीं, सर...'

'ठीक है, अपनी सीट पर वापस जाओ... कभी मुझ से आकर मिलना।'

'जी, सर... कब?'

इस सवाल का जवाब मैं नहीं दे सका, क्योंकि मेरे सभी घंटे इतने ज्यादा व्यस्त थे कि उसे समय देना बहुत मुश्किल था। इसलिए मैंने जवाब दिया, 'मैं तुम्हें बताऊँगा, अभी सीट पर जाओ!'

पीरियड का बाकी वक्त मैंने उन गलतियों का जायज़ा लेने में लगाया जो लड़के आम तौर पर करते हैं, जैसे rather very का एकसाथ प्रयोग, hence के लिए as such, भावार्थक संज्ञाओं का तोड़कर प्रयोग, संयुक्त संज्ञाओं का प्रयोग, और इस तरह की वे बहुत-सी उलझनें जो विदेशियों को अंग्रेज़ी भाषा में परेशान करती हैं।

फिर मैंने निबंध लिखने के लिए उन्हें विषय के रूप में एक सुभाषित दिया: 'मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी स्वयं है।' मैंने सोचा, कितनी बेवकूफी का विषय है यह, बहुत ज्यादा दार्शनिक और अस्पष्ट; लेकिन मैं कुछ कर नहीं सकता था, मुझे यही विषय देने का आदेश दिया गया था। मैं उत्सुकता से देखने लगा कि लड़के इससे किस प्रकार निबटते हैं। मार्गदर्शन के लिए मुझे कुछ बताना ज़रूरी था, इसलिए मैंने ब्लैक बोर्ड पर लिखा, 'मनुष्य क्या है? भाग्य क्या है? मनुष्य भाग्य पर कैसे विजय प्राप्त कर सकता है? भाग्य मनुष्य पर किस प्रकार हावी हो सकता है? नियति क्या है? इच्छा शक्ति क्या है और क्या यह स्वतंत्र है?' —इस तरह के बहुत-से शीर्षक मैंने इन कोमलवय बालकों के सामने पहेलियों की तरह सुलझाने के लिए लिख दिये।

देर दोपहर तक मैंने तीन घंटे के क्लास पूरे कर लिये, और खरखराता गला लिये कुछ देर आराम करने कॉमन रूम में आकर बैठ गया। यहाँ एक दर्जन के करीब अध्यापक जमा थे। सभी या तो सामने खुली किताब पर नज़र गड़ाये थे या ऊपर छत को एकटक ताक रहे थे, इसलिए कमरे में सन्नाटा-सा छाया हुआ था। यह मुझे कभी अच्छा नहीं लगा और इसे तोड़ने का मेरा

अपना ढंग था। मैं वहाँ बैठे सब लोगों पर एक सवाल फेंक देता: 'इम्तहान शुरू होने से पहले हमें एक महत्वपूर्ण समस्या पर फैसला करना है।' यह सुनकर सब उत्सुकता से ऊपर देखने लगते। आज मैंने कहा: 'हमें यह तय करने के लिए स्टाफ़ की मीटिंग बुलानी है कि 'ऑनर्स' शब्द की स्पेलिंग में 'यू' का प्रयोग न करने पर छात्र के कितने नंबर काटे जाएं?'

'नहीं, नहीं, मेरे ख्याल से यह बेकार की बात है,' तर्कशास्त्र के शिक्षक शास्त्री ने, जिसका दिमाग एकदम सीधी लाइन में चलता था, चार दिन पुराने अखबार से जिसे वह बड़े ध्यान से पढ़ रहा था, नज़र ऊपर उठाते हुए, कहा। गजपति ने, जो कमरे के सबसे पीछे के हिस्से में बैठा था, चश्मे के भीतर से झाँकते हुए टिप्पणी की, 'लगता है, तुम कल की मीटिंग का मज़ाक बना रहे हो?' 'नहीं', मैंने तुरंत उत्तर फेंका, 'मैं मज़ाक नहीं कर रहा, गंभीरता से कह रहा हूँ।'

'क्या मामला है यह?' डॉ॰ मेनन पूछने लगे। वे दर्शन के असिस्टेंट प्रोफेसर थे। इस पर गजपति ने, वकील की तरह धीरे-धीरे स्पष्ट करके बताया कि कल शाम क्या हुआ था।

'मामूली-सी बात थी, बतंगड़ बना डाला...,' दार्शनिक ने फैसले के स्वर में कहा। अब गजपति ने चश्मा उतारा, उसे बाक़ायदा बंद किया और लड़ने के लिए तैयार गर्दन उठाकर कहा, 'अगर तुम्हारे विद्यार्थी करंट की स्पेलिंग में 'के' के बजाय 'सी' का प्रयोग करें तो तुम उनसे कैसा व्यवहार करोगे?'

डॉ॰ मेनन ने उत्तर दिया, 'अगर वे कांट ने क्या कहा है, इसे ठीक से समझते हैं, तो मैं इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दूँगा।'

गजपति बोले, 'मैं यह नहीं मानता। सही बोलने और लिखने का अपना महत्व है जिसे दरगुज़र नहीं किया जा सकता। इसका अभ्यास किया ही जाना चाहिए।'

अब मैंने अपनी बात कही, 'अमरीकी लोग 'यू' के बिना ही 'ऑनर्स' शब्द का प्रयोग करते हैं,' ...जिसने बात का रुख ही बदल दिया और गजपति जिस लड़ाई की तैयारी कर रहे थे, वह मौका उनके हाथ से निकल गया। डॉ॰ मेनन, जिन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी से डाक्टरेट प्राप्त की थी, कहने लगे, 'अमरीकी लोग प्राय: सभी मामलों में अपने अंग्रेज़ भाई-बंदों से ज्यादा समझदार हैं।'

लेकिन गजपति ने भी अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की सेवा में अपनी पूरी ज़िंदगी गुज़ारी थी, इसलिए उन्होंने भी नहले पर दहला फेंका, 'मैं अमरीकी स्पेलिंग को ज़बरदस्त बेवकूफी समझता हूँ।'

मैंने इस पर टिप्पणी जड़ी, 'अगर अमरीका हमारे ऊपर शासन करता होता तो हम अंग्रेज़ों के लिए भी यही बात कहते।'

'हर बात में राजनीति को नहीं घुसेड़ना चाहिए,' गजपति ने चिढ़कर कहा। 'कई दफ़ा मैं सोचता हूँ कि दुनिया में राजनीति होती ही नहीं और हमें पता न होता कि हमारे ऊपर कौन राज कर रहा है, तो कितना अच्छा होता! इससे हम ज्यादा खुलकर और ज्यादा सही ढंग से सोच सकते। समूचा पश्चिम अपनी राजनीति के कारण उलट-पलट हो रहा है, और हम पूरब के लोग भी उसी रास्ते पर चलना चाहते हैं। यह उस घास की तरह है जो बढ़ते-बढ़ते सारे तालाब को ढक लेती है। जैसा शैली ने अपनी कविता 'सेंसिटिव प्लांट' में कहा है...'

अब बी.ए. की कक्षाओं को राजनीति पढ़ाने वाले कुमार के लिए कुछ कहना ज़रूरी हो गया: 'गजपति साहब, आपके ख्यालात हज़ार साल पुराने लगते हैं, बिलकुल एकपक्षीय मत है आपका...। आज तो सभ्य संसार में कारपोरेट ढंग की जिंदगी का बोलबाला है, और यही आज की दुनिया के मूल्य हैं...'

बहस अब रूखी हो चली थी इसलिए उसका पटाक्षेप करने के विचार से मैंने कहा, 'मेरा

खयाल है कि अगले इम्तहानों में लड़कों के सामने यह ज़ोरदार सवाल रखा जा सकता है: 'कारपोरेट सभ्यता ने गुफा-मानव को बाहर की खुली दुनिया में ला खड़ा किया'—इस पर विचार व्यक्त कीजिए। अगर मुझसे राजनीतिशास्त्र का प्रश्नपत्र बनाने को कहा जाय तो मैं यह प्रश्न अवश्य पूछूँ, और इसे 'आवश्यक' भी कर दूँ। इससे इन युवा प्रतिभाओं का दिमाग़ ठिकाने पर आ जायेगा...।'

'तुमने कॉलेज के दिनों की अपनी बेवकूफियाँ अभी छोड़ी नहीं हैं, कृष्ण। 'गजपति ने डाँटने के अंदाज़ में कहा, 'कुछ तो गंभीरता पैदा करो...।'

'मैंने एक अमरीकी अखबार में किसी का विज्ञापन देखा था जो अगंभीर लोगों को दुरुस्त करने का काम करते हैं, और मैंने उनका कूपन भरकर भेज दिया है। अब जल्द ही आप लोग मुझे ज्यादा सभ्य रूप में देख सकेंगे...।'

'अरे, इन विज्ञापनों में ज्यादा विश्वास मत करना। अमरीका में इस तरह की बातें होती ही रहती हैं। जब मैं शिकागो में था...' कोलंबिया यूनिवर्सिटी में पढ़े डॉ० मेनन ने कहना शुरू ही किया था कि घंटी बजने लगी और सब अध्यापक अपनी-अपनी कक्षाओं में जाने के लिए उठ खड़े हुए।

मैं अपने कमरे में लौट आया। पोस्टमैन दरवाज़े से दो खत मेरे लिए डाल गया था। मैं जान गया कि नीले लिफाफे का खत मेरी पत्नी का है; जो ऊपर पते पर शहर के नीचे तीन लाइनें लगाती थी, क्योंकि उसे हमेशा लगता था कि खत किसी और जगह न पहुँच जाय। दूसरा खत मेरे पिता का था जो गाँव से आया था। मुझे, पता नहीं क्यों, खत पाकर बहुत उत्सुकता होती है। जितनी देर मुझे उसे खोलने में लगती है, तब तक का समय एक युग के बराबर लगता है, और मेरा दिल बड़ी तेज़ी से धड़कने लगता है।

मैंने पहले पिताजी के खत पर ध्यान दिया। वे अब भी बड़ी सफाई और खूबसूरती से हर अक्षर बना-बनाकर लिखते थे, हालांकि उसमें कोई पच्चीकारी नहीं होती थी, और जो कागज़ वह इस्तेमाल करते थे, वह हमेशा आयकर विभाग के पैड का होता था। न जाने कब से वह इसी कागज़ का इस्तेमाल करते आए थे, और पता नहीं उनके पास कितने पैड थे और उन्होंने इन्हें कहाँ से प्राप्त किया था... शायद किसी दोस्त से किया हो जो आयकर विभाग का कर्मचारी रहा हो। सालों तक रखे रहने के कारण इस कागज़ में हल्का-सा खूबसूरत भूरापन आ गया था, लेकिन यह पार्चमेंट कागज़ की तरह कड़क और मज़बूत था।

पिताजी के पास स्टील की एक कलम थी जिसका हेंडिल लकड़ी का और हरे रंग का था, और सालों से वे इससे ही लिखते चले आये थे। उनके पास स्याही की भी कई बोतलें थीं... जिसे वे खुद अपने हाथों से और अपने ही नुस्खे से बनाते थे, और इस नुस्खे पर गर्व भी बहुत करते थे। पूरे साल के इस्तेमाल के लिए वे एक दफ़ा स्याही तैयार कर लेते थे... और घर के हम छोटे बच्चे बड़े उत्साह से इस घटना का इन्तज़ार करते थे। इस अवसर पर सब नौकर भी मौजूद रहते थे। घर के पीछे पड़ी खाली जगह में ईंटों की एक भट्ठी तैयार की जाती थी, जिस पर चढ़ा एक बड़ा-सा कड़ाह पिताजी की विशेष देख-रेख में, दिन-भर उबलता रहता था।

लेकिन इस काम का सबसे रोचक हिस्सा वह होता था, जब एक दिन पहले की शाम को हम सब दल बनाकर ज़रूरी चीज़ें खरीदने, सबसे नज़दीक करीब पंद्रह मील दूर, कस्बे, कावडी की यात्रा करते थे। दोपहर तीन बजे के करीब पिताजी बैलों को गाड़ी में जोतते, और हम सब, मेरा बड़ा भाई और दोनों बहनें, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर उनके साथ जाने के लिए तैयार खड़े हो जाते। बड़ा भाई हम सबको अपने हुक्म पर चलाता, और गाड़ी में हम कहाँ बैठेंगे, यह भी बड़ी

सख्ती से बताता था। वह जिस ढंग से हम पर नियंत्रण रखता, उससे हम सोचते थे कि वह जरूर सेना में कमान्डर या पुलिस अफसर बनेगा—लेकिन बेचारा हैदराबाद में ऑडिटर ही बनकर रह गया और अब उसकी नकेल हमेशा पत्नी के हाथ में रहती थी। बहुत परेशानियाँ थीं उसे, क्योंकि दस बच्चों का बाप था वह, और उसकी पत्नी काफी घमंडी और झगड़ालू थी। दफ्तर और घर के ढेरों कामों में लगा रहने के कारण वह बहुत कम गाँव आ पाता था।

दो घंटे बाद हम कावडी पहुँच जाते। लेकिन बैलों की टुन-टुन सुनते मैं गाड़ी में ही सो जाता था। मुझ जैसे निपट गाँव के लड़के के लिए कावडी बड़ी अद्‌भुत जगह थी—लंबी सड़क पर दोनों तरफ तरह-तरह की चीज़ों से लदी दुकानें कहीं मशीनें घर्र-घर्र करती कपड़े सी रही हैं, दुकानों के आगे रंग-बिरंगे रिबन लटक रहे हैं। पिताजी अपनी परिचित दुकान पर पहुँचते, दुकानदार हम सब बच्चों को चटाई बिछाकर उस पर बिठाता, और जब तक दुकानदार स्याही बनाने की ज़रूरी चीज़ें पैक करता, पिताजी सामने की दुकान से हम सबके लिए खाने की चीज़ें खरीदते। फिर वे हम सबके लिए एक-एक खिलौना भी खरीदते— किसी के लिए गेंद, किसी के लिए लकड़ी पर झूलता बंदर, एक गुड़िया... और बड़े भाई के लिए वे लिखने की कापी और पेंसिल खरीदते, क्योंकि उनका कहना था कि अब वह बड़ा हो गया है और उसकी उम्र खिलौनों से खेलने की नहीं रही है—और भाई को भी इस बात से ज्यादा स्मार्ट बनने की प्रेरणा मिलती थी।

लौटते समय सड़क टखनों तक धूल से भरी होती, दिन-भर उसके ऊपर चली गाड़ियाँ और अनगिनत जानवर सारे वातावरण में धूल का एक बादल-सा बना देते; यही नहीं, हम सबके कपड़े और सिर के बाल भी धूल-धक्कड़ से इतने भर जाते कि घर पहुँचते ही माँ सबसे पहला काम यही करतीं कि हमें अच्छी तरह नहलाकर साफ-सुथरा किया जाए।

पता नहीं, पिताजी क्यों अपनी स्याही खुद बनाने का काम करते थे जबकि दुकान से जितनी चाहो स्याही खरीदी जा सकती थी, और साथ ही बहुत बड़ी तवालत से भी बचा जा सकता था। सब चीजें खरीदने के बाद दूसरा पूरा दिन वे यह मसाला कूट-पीसकर उबालने और देर तक पकाने फिर उसे बड़ी सावधानी से निथारने और छानने और फिर सफाई से बोतलों में धीरे-धीरे भरने में बिताते थे। हमारे इस्तेमाल के लिए वे छोटी शीशियों में स्याही निकाल देते और बाकी सब अलमारी में ताला डालकर बंद कर देते थे। हम इसी स्याही से अपनी कापियों में लिखते थे। इसमें एक हलका-सा हरापन होता था जो हमें बिलकुल भी पसंद नहीं था और जिसके कारण हम सोचने लगते थे कि बाज़ार में बिकने वाली काली और गहरी नीली स्याही ही सबसे अच्छी है। हम कभी इस भावना से नहीं उबर पाये कि यह असली स्याही नहीं है—जबकि पिताजी को यही बहुत पसंद थी और वे कहते थे कि इस जैसा स्याही का शेड भारी कीमत देकर भी नहीं खरीदा जा सकता।

पिताजी का खत पढ़कर मेरे सामने मेरा पूरा बचपन और गाँव का वातावरण ही साकार नहीं हो उठा, वहाँ के सब तथ्य भी जीवित हो उठे— हमारा घर, नारियल का बगीचा, खेत और उसकी फसल, और आयकर की कार्यवाही। उन्होंने माँ के स्वास्थ्य पर एक पूरा पैराग्राफ लिखा था, साथ ही हलकी-सी शिकायत भी की थी कि वे अपना सही तरह से ध्यान नहीं रखतीं—रात को खाना बड़ी देर से बनाती हैं और खुद सबके खा लेने के बाद ही खाती हैं, और दवाइयाँ लेने को तैयार ही नहीं होतीं...

इसके बाद के पैरा में उन्होंने जो लिखा था, वह मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण था। 'आज तुम्हारे ससुरजी का पत्र आया है। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर की कृपा से तुम्हारी पत्नी सुशीला और बच्ची दोनों अच्छी तरह हैं। उनका सुझाव है कि अब तुम हॉस्टल में अकेले रहना खत्म करके परिवार

के साथ रहो और दोनों को वहाँ ले जाओ। इस बारे में मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ और चाहता हूँ कि तुम परिवारी बन जाओ। हॉस्टल में तुम बहुत दिन रह लिये, और मेरा ख्याल है कि और ज्यादा वहाँ रहकर अपनी जिंदगी के सबसे अच्छे दिन बरबाद मत करो, और यह तुम्हारी सेहत के लिए भी अच्छा नहीं है। इससे तुम्हारे विकास पर भी असर पड़ता है। तुम्हारी माँ का भी कहना है कि ससुरजी का घर बच्ची के लिए सही नहीं है। अगर तुम्हें इस विषय में कोई आपत्ति न हो तो तुम्हारे ससुरजी का कहना है कि इसके लिए अगले महीने की दस तारीख बहुत शुभ रहेगी...'

पिताजी पुराने वक्त के बी. ए. थे जो पेटर और कार्लाइल और स्कॉट और ब्राउनिंग पढ़कर बड़े हुए थे; मद्रास कालेज में डॉ. विलियम मिलर, मार्क हंटर और इन्हीं जैसे दूसरे वरिष्ठ प्रोफेसर जिन पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देते थे; इस कारण अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग में वे पूरी सावधानी बरतते थे, हालांकि उनके लेखन में उस वक्त के पढ़े होने का कुछ गुरूर भी झलकता था। बी. ए. पास करने के बाद अपने दूसरे साथियों की तरह उन्होंने सरकारी नौकरी में जाने से इंकार कर दिया, और गांव लौटकर अपनी ज़मीन और खेती-बाड़ी सँभालने में ही अपना ध्यान लगाया।

पत्र पढ़कर मैंने सोचा कि सात महीने की बच्ची को मैं कैसे सँभालूँगा!...यह सोचकर ही मैं डर गया। मैं नहीं जानता था, ये सब काम कैसे किये जाते हैं। बच्ची होने के बाद मैं तीन-चार दफ़ा पत्नी के घर गया था। पहली दफ़ा तो मैं बच्ची की तरफ ज़रा भी ध्यान नहीं दे पाया, हाँ, पत्नी को खुश करने के लिए उसके गाल पर एक हल्की-सी चुटकी जरूर काट ली। बच्ची के लिए मेरे मन में प्यार ज़रूर था लेकिन इसके लिए कुछ खास करना मैंने आवश्यक नहीं समझा...। इसके बाद की यात्राओं में बच्ची के प्रति मेरी रुचि सचमुच बढ़ने लगी और मैं सोचने लगा कि साथ रहने पर उसका उछलना-कूदना और बोलने की कोशिश करना बहुत अच्छा लगेगा... लेकिन इतनी जल्दी उसका अभिभावक बन जाना मेरी समझ में नहीं आया। मैंने अपनी बहन के इस उम्र के, सात या आठ महीने के, बच्चे देखे थे जो जब रात में रोना शुरु करते थे तो किसी भी तरह चुप नहीं होते थे, और लगता था कि जिस भी तकलीफ़ से ये रो रहे हैं, वह सवेरे तक इन्हें ज़िंदा भी रहने देगी या नहीं। लेकिन माँ इन सबकी देखभाल कर लेती थी, और कभी छाती की सिकाई करके, कभी कोई तेल मलकर और कभी कोई चूरन खिलाकर उन्हें शांत कर देती थी।

पिताजी ने खत में अलग से लिखा था: अगर तुम तैयार हो तो तुम्हारी माँ कुछ हफ्ते तुम्हारे साथ आकर रह जायेगी। मुझे कोई एतराज़ न होगा... मैंने पिताजी का खत पढ़कर रख दिया। उसमें मेरे लिए सोचने की बहुत सामग्री थी।

अब मैंने पत्नी का खत उठाया और खोलने से पहले उसे सूँघा। इसमें उसके बक्से की खुशबू थी, जिसमें वह अपने कागज़-कलम भी रखती थी... और जब से मैंने उसे जाना था तब से उसकी हर चीज़ में चमेली की हलकी खुशबू महसूस करता रहा था। मैं जल्दी से पूरा खत पढ़ गया। अपने गोल-गोल अक्षरों में लिखे खत के बहुत बड़े हिस्से में उसने बच्ची के बारे में ही लिखा था... जिसे पढ़कर मुझे उसे तुरंत देख लेने की इच्छा होने लगी। अपनी उम्र के लिहाज़ से बच्ची बहुत बुद्धिमान थी और घर में जो भी कहा या किया जाता था, उस सबको समझ लेती थी। इस बात के पूरे संकेत थे कि बड़ी होकर वह परिवार की सबसे समझदार सदस्य बन जायेगी। वह अपने पेट के बल सारे घर का चक्कर लगाती रहती थी और जासूस की तरह अपनी माँ की हर गतिविधि पर नज़र रखती थी। कितनी चालाक थी वह! अब वह 'अप्पा' कहना सीख रही थी और अपनी हर नज़र से माँ से यही पूछती थी कि पिता कब उसे ले जाने के लिए आ रहे हैं... यह बात मुझे अच्छी तो लगी, लेकिन इस पर पूरी तरह मैं विश्वास नहीं कर सका। इसके बाद उसने लिखा कि उसके पिताजी ने मेरे पिताजी को लिखा है कि अब हम जल्द से जल्द अपना घर बसा

लें। यह पढ़कर मुझे लगने लगा कि मेरी भलाई के लिए सब लोग कितना सोच-विचार कर रहे हैं...

मैंने खत मेज़ पर रखा, कमरा बंद किया और हाथ-मुँह धोने बाहर निकला। सामने का मैदान पार करते हुए मैंने चमेली की एक बड़ी लतर देखी जो लायब्रेरी की दीवार को पूरी तरह ढके हुए थी। बहुत साल पहले मैंने इसे बहुत छोटी-सी बेल के रूप में देखा था। जब मैं विद्यार्थी था, तब मैंने इसके उगने पर बहुत ध्यान दिया था और नौकर सिंगाराम की सहायता से इसके बढ़ने के लिए बाँस की लकड़ियाँ रोप दी थीं जिन पर चढ़कर यह फैलती चली जाय...। तब कई लड़के मेरे इस काम पर हँसे थे, उन्होंने कहा था, 'लड़कों के इस हॉस्टल में चमेली का क्या काम है?' और मैंने जवाब में कहा था, 'यह हमें याद दिलायेगी कि दुनिया में करने के लिए अच्छे काम भी हैं।' इस जगह चमेली का बढ़ना एक मुश्किल काम ही था क्योंकि यहाँ आने वाले जानवर इसे देखते ही खाने लगते थे। इसलिए यह बढ़ती और फिर घट जाती—जो मेरे लिए बड़ी चिंता की बात थी। फिर एक दिन मुझे ख्याल आया कि क्यों न इसे सिंगाराम के सुपुर्द कर दिया जाय, यह लालच देकर इसमें निकलने वाले फूल वह औरतों के जूड़े के लिए घर ले जा सकता है और हॉस्टल में होने वाले विनायक उत्सव पर देवता की पूजा में उनका इस्तेमाल कर सकता है।

इसके बाद चमेली ने बढ़ना शुरू कर दिया। अब जो भी इसके साथ छेड़-छाड़ करता, उससे वह सख्ती से पेश आता; और कभी-कभी मेरे लिए विशेष रूप से चार-छह कलियाँ मेरी खिड़की पर सवेरे ही रख जाता। अब इसके बगल से गुज़रते हुए मैंने इसे भरपूर नज़र से देखा और कहा, 'अब मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा...' इतने सालों बाद...पूरे दस साल—पहले छात्र और फिर अध्यापक के रूप में मैंने यहाँ दस साल बिता दिये थे। यहाँ से आगे बढ़ते हुए मेरे मन से एक आह निकल गई, हॉस्टल के इस मैदान में यही एक हरियाली थी, बाकी सब मालगुड़ी के भभकते सूरज से जली मिट्टी और धूल ही थी।

मुझे बाथरूम की गैलरी में कुछ देर इन्तज़ार करना पड़ा, सब केबिन घिरे हुए थे। इनके भीतर दो लड़के पानी की धार के साथ फिल्मी गाने गा रहे थे। गले में तौलिया लपेटे मैं इधर-उधर टहलता रहा। यहाँ काफी अँधेरा था, चारों तरफ सीलन और पानी था, और ऊपर एक ही छोटी खिड़की थी जहाँ से रोशनी भीतर आती थी। मैं सोचने लगा—अब मैं जल्द ही इस मुसीबत से मुक्त हो जाऊँगा... अब मेरा अपना घर होगा। हॉस्टलों के बाथरूम दुनिया में नरक की तरह होते हैं।— मैं सोचता रहा: ईश्वर ने अपने सहायकों से कहा, 'इस आदमी को नरक में ले जाओ,' तो वे उसे हॉस्टल के बाथरूम के सामने ले गये और ईश्वर ने हुक्म दिया, 'अब इसे दंड दो।' और यह सुनकर उन्होंने केबिन का दरवाज़ा खोला और उसे भीतर ढकेलने लगे...। 'नहीं, अभी नहीं,' फरिश्तों ने आवाज़ लगाई, 'केबिन खाली नहीं है...' ईश्वर ने तब तक इन्तज़ार किया जब तक कोई ईश्वर इन्तज़ार कर सकता है, फिर पूछा, 'नहा चुके क्या?' तो फिर जवाब आया, 'नहीं, अभी इन्तज़ार करो'... और वे इन्तज़ार करते रहे, करते रहे... तब तक करते रहे जब तक उनके अपराधी के इर्द-गिर्द लंबी घास न उग गई जिसमें वह गायब ही हो गया।... यह कविता के लिए अच्छा विषय है, इस पर ज़रूर कभी एक लंबी कविता लिखूँगा।

इसी समय एक केबिन खुला और पानी से चूता कोई बाहर निकला। द्वितीय वर्ष का एक छात्र था यह। वह परेशानी से बोला, 'सर, मैंने आपको बहुत इन्तज़ार कराया?'

'हाँ, कराया तो, लेकिन तुम अपना शानदार गाना पूरा गाये बिना कैसे निकल सकते थे?' लड़के ने ज़रा ज्यादा इज्ज़त दिखाते हुए मेरे लिए दरवाज़ा खोला और मैं भीतर चला गया।

नहाकर मैं कमरे में लौट आया। बालों में ज़रा-सी क्रीम लगाई, दीवार पर कील से लटक रहे छोटे-से शीशे के सामने खड़े होकर बाल काढ़ने लगा। शीशा दक्षिणी दीवार पर था जिसमें मेरा

भी रह सकें...। अच्छे और भले सहायक लोग हमारे पास रहते हों, और शैतान पड़ोसी हमसे कोसों दूर...। हमारा घर कॉलेज के पास भी होता कि पैदल पहुँचा जा सके और इतनी दूर भी कि कभी नौकरी की परेशानियों से मुक्त होकर सुखी घरेलू ज़िंदगी बिताना चाहें तो बिता सकें।

मैं यह सारी शाम शहर में इधर-उधर घूमकर ऐसे मकानों की तलाश करता रहा जिन पर 'टू लैट' लिखा हो।

'इस मकान का मालिक जब इसका पिछला हिस्सा बनवा रहा होगा, तब वह शराब में धुत्त होगा। इसमें तो बंदर ही रह सकते हैं। यह मकान किसी टी. बी. के विशेषज्ञ ने बनाया होगा जिसमें सौ साल तक उसका व्यापार चलता रह सके। यह मकान ऐसे आदमी के लिए सही है जिसे हर दस कदम पर सिर टकराने में मज़ा आता हो। यह घर किसी पिग्मी के ही मतलब का है।' इस तरह मैं शहर के उत्तर, दक्षिण, पूरब और पश्चिम में बहुत से मकानों को देखने के बाद अपने मन में टिप्पणियाँ करता रहा। मैंने साउथ एक्सटेंशन, फोर्ट एरिया, रेस कोर्स रोड, और विनायक मुदाली स्ट्रीट को अच्छी तरह छान मारा। लॉली एक्सटेंशन मैंने इसलिए छोड़ दिया क्योंकि वह महँगा था और इसके पार वाला न्यू एक्सटेंशन बहुत दूर पड़ जाने के कारण छोड़ दिया।

इस तरह मैं तीन-चार दिन तक मकान की तलाश में भटकता रहा। मुझे इन दिनों मकान के सिवा और कुछ नहीं सूझता था। जो कोई मिलता, उसी से सवाल कर देता, 'कोई अच्छा मकान बता सकते हो?' रात-दिन मकान, मकान की बातें कर-करके मैं सबके लिए बोर बनता जा रहा था। कॉलेज में अपने छात्रों से भी मकान की ही बात करता। और अब मुझे चिंता भी होने लगी, कि पत्नी और बच्चे के आने का दिन पास आता जा रहा है। सारे शहर में एक भी घर उनके रहने लायक दिखाई नहीं देता था। अगर पंद्रह दिन बाद भी यही हालत रही तो उन्हें स्टेशन से बाहर आने पर कहाँ ले जाऊँगा? मेरी रातों की नींद उड़ गई थी।

और तभी उम्मीद की किरण दिखाई दी। मेरा एक छात्र एक ऐसे व्यक्ति को जानता था जिसका एक परिचित सरयू स्ट्रीट पर अपने मकान में रहता था, जिसका एक हिस्सा खाली था और जिसे वह किसी संस्कृत परिवार को किराये पर उठाना चाहता था। मैंने फौरन स्वयं से पूछा, 'क्या मैं इस योग्य हूँ? क्या मेरा परिवार संस्कृत है?' सरयू स्ट्रीट शहर का एक शानदार मुहल्ला था। इस पर वे सब बातें लागू होती थीं जो किसी अच्छी रिहायशी बस्ती के लिए ज़रूरी हैं, जैसे सस्ते घर, सुन्दर वातावरण और बाज़ार तथा दफ्तर दोनों से नज़दीकी। मैं इस घर के लिए उतावला हो उठा।

लड़के ने दूसरे दिन सवेरे मकान से संबंधित पहली कड़ी अपने परिचित से मुझे मिलाने का वादा किया। लेकिन मैं इतनी प्रतीक्षा के लिए तैयार नहीं था। मैंने उससे आग्रह किया, 'ऐसी बातों को टालना सही नहीं है। हो सकता है और कोई और तब तक मकान को हथिया ले। आज ही चलते हैं।' मुझे लग रहा था कि सारा शहर इस मकान को लेने के लिए इकट्ठा होकर लड़ने न लगे। लड़के ने मुझसे विनती की कि वह शाम उसने किसी और ज़रूरी काम के लिए रखी हुई है, लेकिन मैंने उसके सब बहाने नकार दिये और ज़िद पर अड़ा रहा।

हारकर पहले वह मुझे खुद मार्केट के पीछे अपने मकान पर ले गया, फिर वहाँ से मील-भर दूर पूरब की तरफ़ ले जाकर अंत में एलामन स्ट्रीट के एक घर के वरांडे में गूदड़ से भरी एक बेंत की कुर्सी पर बैठे एक बूढ़े के पास ले गया। यह जगह बहुत सँकरी थी जिसकी छत सिर को छू रही थी। और कुर्सी ने पूरे वरांडे को घेर रखा था। बूढ़ा पहले तो मेरे बारे में खासी पूछताछ करता रहा, फिर मुझे वरांडे के सिरे पर रखे एक स्टूल पर, जो मेरे ज़रा-सा हिलते ही नीचे सड़क पर जा गिरता, बैठने को बाध्य किया। मैं अपनी साँस रोककर किसी तरह वहाँ बैठ गया। बूढ़ा एकदम

जर्जर था, उसकी नज़र भी कमज़ोर थी। उसने आँखें पूरी खोलकर मुझे देखने की कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुआ। वह चुप बैठा था इसलिए मैंने ही शांति भंग की, 'आप ही मकान के मालिक हैं?'

'नहीं', उसने जैसे लड़ाई के अंदाज़ में कहा, 'मालिक तो वह भगवान है और मैं उसका सेवक हूँ।'

'किराया क्या है?'

'पहले मकान देख लो और पसंद हो तो बात करो।'

मैं उसके अधिकारी अंदाज़ से सहम उठा। फिर भी बोला, 'पहले मैं उसके बारे में जान लूं, तभी कुछ करूंगा।'

उसने कुछ सोचते हुए सिर हिलाया और कहने लगा, 'अच्छा, तुम्हें गराज चाहिए या नहीं?'

'इसमें गराज है क्या?' मैंने पूछा।

'यह सब अभी मत पूछो।' उसने उत्तर में कहा।

'मुझे पता होना चाहिए कि गराज है या नहीं...,' मैं बोला।

'तुम चाहते हो कि सब कुछ तुम्हें पहले ही बता दिया जाए...', उसने चिढ़ते हुए कहा 'पहले अपनी ज़रूरत बताओ।... अच्छा, निकलो यहाँ से। मैं तुमसे और बात नहीं करना चाहता। मैं तुम्हें मकान देना ही नहीं चाहता। सैकड़ों आते हैं, बातें करके चले जाते हैं, और फिर शक्ल नहीं दिखाते।'

'आपको यह हुआ क्या है?' अब मैंने भी गुस्से से भरकर पूछा।

इस पर वह अपना चेहरा मेरे चेहरे के पास लाकर कहने लगा, 'मैं अंधा हो रहा हूँ। तीन महीने पहले तक सब ठीक था, मैं साफ़ देख सकता था, लेकिन अचानक यह हालत हो गई। और मैं सफाई से बात भी नहीं कर सकता, लकवे ने बेकार कर दिया है। बोलने में मुझे तकलीफ होती है। नहीं तो मैं सारे दिन यहाँ बैठकर तुमसे घंटों बात करता रहता, बिना यह परवाह किये कि तुम असली किरायेदार हो या नकली—जो मुझे रात-दिन परेशान किये रहते हैं। मैं एक लड़के को चाभी देकर तुम्हारे साथ भेजता हूँ। पहले मकान देख आओ, फिर बात करेंगे।'

'ठीक है,' मैंने कहा। फिर उसने एक लड़के को बुलाया और उसके हाथ में एक ज़ंग-लगी चाभी देकर कहा, 'इन साहब को बंगला दिखा दो। हर कबर्ड खोलकर दिखाना। 'मैं लड़के के साथ बाहर निकला। रास्ते में मैंने उससे दोस्ताना बात करने की कोशिश की लेकिन वह चुप रहा। उसकी जेब में भुनी मूँगफली भरी थी जिसे वह तेज़ी से मुँह के हवाले करता जा रहा था। वह मुझसे दस कदम आगे चल रहा था। 'किस क्लास में पढ़ते हो?' मैंने पूछा तो उसने जवाब दिया, 'पढ़ता नहीं हूँ।' उसने चाभी हवा में उछाली और हाथ में लपक ली। कई छोटी-छोटी गलियों से मुझे घुमाते हुए वह सरयू स्ट्रीट ले आया।

सड़क पर आखिरी मकान था यह। पहली नज़र में मुझे यह अच्छा लगा। लकड़ी का छोटा-सा गेट, सामने बगीचे के लिए दस गज़ ज़मीन, फिर चार सीढ़ियाँ ऊपर मेहराबदार वरांडा। उससे लगा एक छोटा कमरा जो मुख्य मकान से अलग था। मैंने भीतर जाकर खिड़की खोल दी, 'सरयू स्ट्रीट कितनी सुंदर लगती है यहाँ से! जब मुझे कुछ करने को नहीं होगा', मैं सोचने लगा, 'तो बाहर का नज़ारा देखूँगा।... यह कमरा खासतौर पर मेरे ही लिए बना है, जहाँ मैं शांति से बैठकर पढ़-लिख सकता हूँ... घर वाले भी डिस्टर्ब नहीं होंगे।'

'अब तक यह मकान खाली क्यों पड़ा है' मैं लड़के से पूछने लगा, हालांकि, वह उत्तर देगा, इसकी उम्मीद नहीं थी। वह बाहर खड़ा चाभी उछाल-उछाल खेल रहा था। लेकिन इस बार उसने जवाब दिया, 'क्योंकि दादा इसे देना नहीं चाहते।'

'पिछली दफा कब इसमें कोई रहा था?'

'पंद्रह दिन पहले,' उसने बताया।

'अच्छा!' मैं कुछ और जानना चाहता था लेकिन अब उसने चुप्पी साध ली।

मकान मुझे बहुत पसंद आया। बीच में एक बड़ा सा हॉल था। जहाँ हम सब एक साथ बैठ सकते थे और हॉल के अंत में एक छोटा कमरा था। 'यह पत्नी और बच्ची के लिए हो जायेगा', मैंने खुद से कहा। किचेन और दूसरी ज़रूरतों के स्थान भी बहुत अच्छे थे। मकान के पीछे नारियल का एक पेड़ था, पीछे वाले वरांडे से उसकी तरफ देखते हुए मैंने सोचा, 'इस पर जब कभी बंदर चढ़ेगा तो मैं बच्ची को दिखाऊँगा।'

मैं बूढ़े के पास लौटकर बोला, 'मकान मुझे पसंद है, मैं इसे लूँगा। किराया क्या है?'

'हाँ,' वह सोचता हुआ-सा बोला, 'गराज के साथ चाहिए या उसके बिना?' मैं गराज के सवाल में उलझना ही नहीं चाहता था। इसलिए चालाकी से बोला, 'गराज है या नहीं, इससे फर्क क्या पड़ता है। मान लीजिए मुझे गराज चाहिए?'

इस पर वह फिर चिढ़ गया और तल्खी से बोला, 'बस, बस! तुम्हारा शान बघारना मुझे पसंद नहीं है। खाली बातें मत करो। तुम्हारे पास गाड़ी है, यह दिखावा मत करो। तुम यहाँ पैदल चलकर आये हो। मैं अंधा भले ही हूँ लेकिन इतना तो देख सकता हूँ।'

अब मैं भी धीरज खो बैठा, बोला, 'सुनो, मकान किराये पर देना हो तो दो, और जिन बातों से तुम्हारा कोई मतलब नहीं है, उन्हें मत पूछो। मैं तुमसे कुछ सीखने नहीं आया हूँ, मैं खुद सिखाता हूँ कालेज में प्रोफेसर हूँ, हज़ार लड़कों को पढ़ाता हूँ मैं।'

इस बात का उस पर गहरा असर हुआ। बोला, 'कालेज में प्रोफेसर हैं आप!' यह कहकर उसने दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया। 'मैं कालेज के अध्यापकों की इज़्जत करता हूँ, वे हमारे गुरु हैं। पुराने जन्मों के श्रेष्ठ कर्मों के कारण वे इस जन्म में गुरु बनते हैं। मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे ऐसे ही श्रेष्ठ, सुसंस्कृत परिवार चाहिए।'

मैंने भी गर्वपूर्वक कहा, 'हम कितने अच्छे हैं, हमारा परिवार कितना सुसंस्कृत है, यह सारी दुनिया जानती है।' इस बात का भी असर हुआ। मैंने कहा, 'मुझे मामूली आदमी मत समझना।' यह कहकर मैंने सीना भी तान लिया।

मेरी बातों से उसे बहुत चैन मिला और उसका चेहरा भी चमकने लगा। 'जानते हो मैं किसी सुसंस्कृत परिवार को ही मकान क्यों देना चाहता हूँ?' यह सवाल उसने इस तरह किया जैसे राजशासन का कोई रहस्य बताना चाहता हो। फिर बोला, 'मैं मकान किराये पर देकर अपने बेटे के पास रहने जाना चाहता हूँ, इसलिए मुझे ऐसा किरायेदार चाहिए जो हर महीने अपने-आप किराया भेजता रहे।'

'इसके लिए आप मुझ पर निर्भर कर सकते हैं,' मैंने जवाब में कहा, और किराया क्या होगा?'

'पच्चीस रुपये हर महीने की पाँच तारीख को। उस दिन ये मुझे बेलारी में मिल जाना चाहिए।'

'ठीक है, मिल जायेंगे और गराज के बारे में क्या...'

'अगर ज़रूरत होगी तो बनवा दूँगा, लेकिन उसके दस रुपये और लगेंगे।

'ठीक है, ज़रूरत पड़ते ही मैं आपको सूचना दे दूँगा।'

चार दिन बाद मेरी मेज़, कुर्सी और ट्रंक एक बैलगाड़ी में लादे गये, मेरे पुराने कमरे में ताला बंद किया गया और चाभी सिंगाराम को पकड़ा दी गई। हॉस्टल के मेरे दोस्त वरांडे पर इकट्ठे हो गये

और एक-दो मज़ाक भी मुझे देखकर किये गये। हॉस्टल ऐसी जगह होती है जहाँ लोग आते और जाते रहते हैं, इसलिए वे किसी भी बात के लिए ग़मगीन नहीं होते। रंगप्पा और गणित के अध्यापक ने बरांडे में खड़े होकर मुझसे कहा, 'अच्छा, गुड बाय, गुडलक नए घर में। गृहप्रवेश के दिन हमें मत भूलना।' सिंगाराम सारा दिन मेरा सामान बाँधने और गाड़ी पर चढ़ाने में मशगूल रहा था। उसने दस साल तक मेरे सब काम किये थे—कमरे की सफाई, मेरी जरूरतें पूरी करना, और वक्त-वक्त पर सलाह-मशवरा भी देना। चरमराती बैलगाड़ी के साथ वह दूर तक गया, और गाड़ी वाले को समझाकर कहा, 'जब सामान उतारो तो सबसे पहले ट्रंक उतारना और सबसे बाद में मेज़। अगर मुझे पता लगा कि कुछ तोड़ दिया है तो मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।... याद रखना।' मैं गाड़ी के पीछे चल रहा था। सिंगाराम अपने इलाके की सीमा तक आया, जहाँ हॉस्टल खत्म होता था, और वहाँ रुक गया। फिर मुझे सलाम किया और कहने लगा, 'अपने इस हॉस्टल को मत भूलना। कभी-कभी आते रहना।' फिर एक क्षण रुककर बोला, 'अब इस बूढ़े को इजाजत दो...।' यह इशारा था कि उसे इनाम देने का समय आ गया है। और उसने खुद ही हाथ भी फैला दिया। मैंने जेब से पर्स निकाला और एक रुपया उसके हाथ पर रख दिया। उसने मुँह बनाकर मेरी तरफ देखा और बोला, 'इस बूढ़े की यही कीमत है...।' 'हाँ,' मैंने जवाब में कहा, 'किसी और को मैं इससे आधा ही देता...'

'नहीं, नहीं। ऐसा मत कहिए। एक ईमानदार आदमी का हक मत मारिये। मैंने दस साल आपकी नौकरी की है। जानते हैं, प्रो०...ने जब हॉस्टल छोड़ा था, मुझे क्या दिया था?'

'मुझे ये सब बातें मत बताओ,' यह कहकर मैंने एक और सिक्का उसके हाथ पर रख दिया।

वह चुप नहीं हुआ। 'मैं आपका पुराना नौकर हूँ। अब शायद आप मुझे न देखें, मेरे ऊपर जाने का वक्त आ गया है। अगले साल मैं काम छोड़कर गांव चला जाऊँगा। इसके बाद आप मुझे देख नहीं पायेंगे। जब आपको पता लगेगा कि बूढ़ा सिंगाराम अब नहीं रहा, तो आपको दुख होगा। ईश्वर के लिए आठ आने और...।'

मैंने आठ आने का सिक्का उसके हाथ में रख दिया। उसने सिर झुकाया और बोला, 'भगवान आपको बड़ा प्रोफेसर बनाये...' और पीछे मुड़कर चला गया।

मैं भी गेट से बाहर निकला और गाड़ी तथा उसमें लदे अपने सामान के पीछे चलने लगा।

2

अगले तीन दिन मैं बहुत व्यस्त रहा। नए घर के सामने वाले कमरे में मेरी मेज़ रखी गई। उस पर मेरी किताबें और कागज़ करीने से सजाये गए और। कपड़े दीवार पर लगी खूँटी पर टाँगे गये। सारे घर की अच्छी तरह सफाई की गई।

गाँव से मेरी माँ ढेर सारे बर्तन लेकर आ गई और घर को ठीक करने में मेरी मदद करने लगीं। वह किचेन और स्टोर को भरा-पूरा करना चाहती थीं, इसलिए रोज़ गाड़ी पर बैठकर बाज़ार जातीं और ज़रूरत की कुछ न कुछ चीज़ लेकर वापस आतीं। वह रात को देर तक काम करतीं और हर कमरे को ठीक-ठाक करती रहतीं। फिर देर रात मेरे साथ बैठकर मुझे बतातीं कि घर कैसे चलाना चाहिए। मुझे यह वरांडा बहुत पसंद था। इसमें ठंडी हवा आती थी। यह घर चुनने के लिए मैं बहुत खुश था और सोचता था कि पत्नी को भी यह पसंद आयेगा। लेकिन माँ जब पहले दिन इसमें घुसीं तो किचेन को देखते ही उन्होंने कहा, 'अरे, कितना सँकरा है! और डायनिंग रूम की लंबाई एक गज़ और ज्यादा कर देते तो वह भी ठीक हो जाता...।'

'दूसरों के बनाये घर में हम अपनी पसंद की हर चीज़ नहीं पा सकते...,' इस घर की कोई बुराई करता तो मैं अपना धीरज खो बैठता था। माँ समझ गईं और कहने लगीं, 'मेरा मतलब यह नहीं कि घर खराब है...।' दरअसल गाँव में हमारा घर बहुत बड़ा और फैला हुआ था, और उसके सामने उन्हें हर चीज़ छोटी और दम घोंटू ही लगती थी। यह बात मैंने उन्हें समझाई तो वे मान गईं कि तुम ठीक कहते हो। फिर कहने लगीं, 'लेकिन तुम जानते हो, इतना बड़ा घर साफ-सुथरा रखने में कितनी परेशानी होती है। मेरी सारी ज़िंदगी इसी में गुज़र गई। लेकिन इसका मुझे कोई गिला नहीं है। मैं बस, ज़रा ज़्यादा सहयोग चाहती हूँ। तुम्हारे पिताजी अब कुछ मुश्किल होते जा रहे हैं...'

फिर उन्होंने बताया कि एक दिन झाड़ू की आवाज़ सुनते ही वे बड़े ज़ोर से चीखे और फौरन काम बंद करने को कहने लगे। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, बरदाश्त कम होती जाती है। इसलिए जब वे खेतों को चले जाते हैं, तभी मैं सफाई करती हूँ। और पता है तुम्हें, सफाई का काम रुक जाय तो और कामों पर भी असर पड़ता है। मैं घर साफ न करूँ तो नहाने नहीं जा सकती। और नहाये बिना पूजा नहीं की जा सकती...। और पूजा करके ही मैं गायों के पास जा सकती हूँ।.... और आधे घंटे मैं गायों के थान पर ध्यान न दूँ तो पता है, क्या होता है?'

माँ के लिए घर का काम ही सब कुछ था। वे इसी में पूरी तरह लगी रहती थीं। उनके जीवन और अस्तित्व का केन्द्रबिन्दु पूरे घर की समुचित व्यवस्था करना ही था और इसी के सुख-दुख उनके जीवन के सुख-दुख थे। घर से बाहर उन्हें कहीं संतोष नहीं मिल सकता था। घर में कोई कमी देखते ही वे उग्र हो उठती थीं। उनका कहना था कि 'अगर कोई औरत घर की ज़िम्मेदारी नहीं सँभाल सकती और उसे सही ढंग से नहीं चला सकती तो उसे चाहिए कि मर्दों के कपड़े पहन ले और सड़क पर निकलकर जुलूस में शामिल हो जाए...।'

मैं अपनी पत्नी के बारे में सोचने लगा कि माँ उसके साथ जब तक इस घर में रहेगी, पता नहीं उसकी क्या हालत कर देगी। वह अपने मां-बाप की आखिरी संतान थी, इसलिए उसका सारा समय पढ़ने, बुनने, कशीदाकारी करने या बगीचे की देखभाल करने में बीता था। इस पर

भी शादी के बाद माँ ने उसे गाँव में ही रखा था और उसे घर चलाने की ट्रेनिंग देने की कोशिश की थी। पत्नी ने भी खाना बनाने और सफाई वगैरह करने के लिए कुछ ज़रूरी बातें सीख ली थीं और इसके बाद जब वह अपने घर गई थी तो उसके माता-पिता भी उसकी नई योग्यताओं को देखकर बहुत प्रभावित हुए थे। वे तो इतने खुश हुए कि जब मैं इसके बाद वहाँ गया तो कहने लगे, 'सुशीला को ट्रेनिंग के लिए इतना अच्छा घर मिला, इससे हम बहुत संतुष्ट हैं। दुनिया की हर लड़की को तुम्हारी माँ के साथ रहकर ज़रूरी बातें सीखनी चाहिए।' फिर जब मैंने माँ को यह बात बताई तो वे फूली नहीं समाईं। फौरन बोलीं, 'मुझे हर लड़की को ट्रेनिंग देकर खुशी ही होगी। लेकिन ऐसी लड़कियाँ भी होती हैं जो सीखने-समझने के लिए तैयार ही नहीं होतीं। ऐसों को तो, मन करता है कि धक्के मारकर बाहर निकाल दूँ।' मैं समझ गया कि उसका इशारा बड़े भाई की पत्नी की तरफ था, उसकी बड़ी बहू, जिससे वह तहेदिल से नफ़रत करती थी। मेरा ख्याल है कि इसी वजह से मेरा भाई गाँव से काफी दूर, हैदराबाद नौकरी करने चला गया। जब तक वे यहाँ थे, आये दिन घर पर भयंकर तमाशे होते रहते थे जिनके लिए माँ का किन्तु-परन्तु का स्वभाव और भाभी का घमंड दोनों ही बराबर ज़िम्मेदार थे। वह हाई कोर्ट के रिटायर्ड जज की बेटी थी, इसलिए अपने खिलाफ़ ज़रा-सी भी कोई बात होते ही उसका सामना करने को तैयार हो जाती थी, इसलिए जब तक वह हमारे घर रही, ज़बरदस्त कशमकश जारी रही। जब कभी भाई घर पर न होता, माँ सबको सुनाकर घोषणा करतीं, 'अब कुछ भी हो जाए, दहेज में हमें दस हज़ार रुपये भी दिये जाएं, मैं हाई कोर्ट के जज की बेटी तो कभी घर में ब्याहकर नहीं लाऊंगी...'

इसलिए मैं हमेशा इस बात के लिए चिंतित रहा कि कहीं मेरी पत्नी को भी यह सब भुगतना न पड़ जाय। माँ का सोचना यह था कि मुझे ज्यादा सीधी लड़की दिलाई जाय, इसलिए जब उसने कहा कि, 'यह लड़की अच्छे स्वभाव की है। ज़िद्दी नहीं है,' तो उसी नकारात्मक टिप्पणी से मैं खुश हुआ। यह शादी के पहले सालों की बात है। इसके बाद सुशीला माँ के साथ रहकर कुछ-न-कुछ उन्नति करती ही रही, और एक दिन आया जब माँ ने कहा, 'सुशीला ने अब सीख लिया है कि मेहमानों के सामने कैसे व्यवहार करना चाहिए।' इसके बाद पत्नी अपने घर चली गई और अब दोनों फिर पहली बार मिलेंगे, यहाँ उसका अपना घर होगा जिसकी उसे ही देखभाल भी करनी होगी। यहाँ माँ उसे अपनी शिष्या मानकर ही उससे व्यवहार करेगी —और इसी बात से मुझे डर लगता था।

अगले शुक्रवार को मैं मालगुड़ी के छोटे-से रेलवे स्टेशन पर बहुत उत्तेजित-सा टहल रहा था। इतनी परेशानी मुझे पहले कभी नहीं हुई थी। पत्नी ज़रूर अपने साथ बहुत-सा सामान लेकर आयेगी, साथ में बच्ची भी होगी। यह सब डिब्बे में से बाहर प्लेटफार्म पर कैसे उतारा जायेगा, जिससे बच्ची को कुछ चोट-वोट न लगे। मैंने तय कर लिया, उसे देखते ही ज़ोर से कहूँगा, 'बच्ची को ठीक से उठाना।' मेरी उत्तेजित कल्पना को इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही लग रही थी कि अफरा-तफरी में कहीं बच्ची का सिर दरवाज़े से न टकरा जाय।... पहले अक्सर यह होता रहा है कि बेफिक्र माँएं नीचे उतरते हुए अपने बच्चों को दरवाज़े से टकरा-टकराकर बाहर निकालती हैं। ये रेलवे वाले ज्यादा बड़े और चौड़े दरवाज़े क्यों नहीं बनाते जिससे यात्री आराम से चढ़-उतर सकें। बच्चों की सुरक्षा के ख्याल से तो यह करना निहायत ज़रूरी है। 'दरवाज़े और बच्ची का ख्याल रखना',— यह कहना बहुत ज़रूरी है। और फिर सामान! सुशीला ज़रूर अपने साथ ढेर-सा सामान लायेगी। चार ट्रंक तो उसे अपनी साड़ियों के लिए ही चाहिए। औरतें कभी नहीं समझतीं कि सफर में सामान कम रखना चाहिए।

और वे समझे भी क्यों? जब तक उनकी सब समस्याओं का हल करने के लिए आदमी

मौजूद हैं, उन्हें इसकी ज़रूरत ही क्या है! अगर अकेले उन्हें पूरा सफर करना पड़ जाए तो वे कुछ ज़रूर सीख सकती हैं। तभी उन्हें पैसे की कीमत का भी ज्ञान होगा।

परेशानी में मैं अपने हाथ मरोड़ने लगा। बच्ची और इतने ज्यादा सामान के साथ वह बाहर कैसे निकलेगी? ट्रेन तो इस स्टेशन पर सिर्फ सात मिनट रुकती है। पहले मैं उसे उतारूँगा, फिर सामान को जल्दी-जल्दी बाहर फेंकूँगा, और अगर एकाध बक्स उतारा नहीं जा सका, तो भी कोई बात नहीं, ट्रेन के साथ वह जाय तो जाय। इतना नुकसान तो सहना पड़ेगा, इसका कोई उपाय भी नहीं है।

इसके बाद मैं अपने पीछे नीली वर्दी पहने खड़े कुली की तरफ मुड़ा। उसका नंबर पांच था और सालों से मैं उसे जानता था। प्लेटफार्म पर जो भी करना होगा, उसकी मदद से ही हो सकता था। आज अपनी मदद करने के लिए मैंने उसे तिगुनी मज़दूरी देने का वचन दिया था। मैंने उससे पूछा, 'सामान बहुत ज्यादा हो तो भी तुम उतार लोगे?'

'जी, साहब! ट्रेन यहाँ सात मिनट रुकती है।' उसे सात मिनट बहुत ज्यादा समय लगता था, जो मेरी नज़र में बहुत ही कम था। 'इतने वक्त में तो हम बड़े-बड़े वैगन उतार लेते हैं।'

फिर उसने कहा, 'ज़रूरी हुआ तो मैं पाइंट्समैन से कहकर अगले सिग्नल पर ट्रेन रुकवा लूँगा।' यह सुनकर मुझे बहुत राहत मिली। लेकिन मिनट-भर बाद मेरा सिर फिर चकराने लगा। इस बेकार की चिंता से मैं कुछ पागल-सा होने लगा। जैसे ही मुझे स्टेशन मास्टर दिखाई दिया, मैं उसकी तरफ चला। मैंने देखा कि वह अपने कमरे से बाहर निकल रहा है और प्लेटफार्म पर दूर लगे सिग्नल की चौकी देखने जा रहा है, तो हाँफता हुआ मैं उसके पीछे दौड़ा और चिल्लाकर बोला, 'गुड मार्निंग, स्टेशन मास्टर साहब!' उसने सरकारी ढंग की मुस्कान मेरी ओर फेंकी, लेकिन रुका नहीं और प्लेटफार्म के छोर पर पहुँच कर ही मेरी तरफ़ रुख़ किया। मैंने तय किया कि इसी समय मुझे अपनी सारी परेशानियाँ सुलझा लेनी चाहिए, इसलिए शुरूआत करने के उद्देश्य से मैंने कहा, 'सिग्नलों की जांच कर रहे हैं?'

'जी,' यह कहकर वह आँखें नीची करके फिर अपने कमरे की तरफ चलने लगा। मैंने जल्दी से कहा, 'प्लेटफार्म पर गाड़ी जरा ज्यादा देर नहीं रुकवाई जा सकती?'

'किसलिए? क्या पहले ही कम परेशानियाँ है?'

मैं सहानुभूति दिखाते हुए धीरे से हँसा, फिर बोला, 'मैंने इसलिए कहा कि इतने कम समय में यात्रियों को सारा सामान उतारने में कठिनाई हो सकती है।'

'मैं यहाँ तीस साल से हूँ और अब तक मैंने एक भी ऐसा यात्री नहीं देखा जिसने छह मिनट में अपना पूरा सामान उतार न लिया हो।'

मैंने कहा, 'आज मेरी पत्नी आ रही है, बच्चे को लेकर। मैं सोचता हूँ कि सावधानी से उतरने में वह काफ़ी वक्त लगायेगी। फिर उसके साथ बहुत सारे बक्से भी होंगे। आप तो जानते ही हैं औरतों की आदतें।' मैंने बनावटी हँसी के साथ यह बात कही जिससे वह पिघल जाए। 'हाँ, कई दफा दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिए ट्रेन को कुछ देर के लिए रोक भी लिया जाता है। क्या ये लोग दूसरे दर्जे से सफर कर रहे हैं?'

'मैं कह नहीं सकता', मैं बोला। मैं जानता था कि हालांकि मैंने उसे दूसरे दर्जे में सफर करने के लिए बार-बार लिखा है, लेकिन, वह कभी नहीं करेगी। जवाब में उसने कूटनीतिक ढंग से लिखा, 'तुम फिक्र मत करो। मैं और बच्ची बिलकुल सुरक्षित आ जायेंगे।' मैंने अपने ससुरजी को भी लिखा लेकिन उन्होंने इस विषय में चुप्पी साध ली। मैं जानता था कि वे दूसरे दर्जे को फिजूलखर्ची समझते हैं, यद्यपि आर्थिक दृष्टि से वे समर्थ हैं और दूसरी बातों में उन्होंने कभी कंजूसी नहीं दिखाई है। उनके बारे में सोचकर मुझे गुस्सा हो आया और मैंने जवाब दिया, 'कुछ

लोग आदत से कंजूस होते हैं...वे तकलीफ़ सह लेंगे लेकिन...। मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही स्टेशन की घंटी बज उठी और स्टेशन मास्टर दौड़कर कमरे में घुस गया— मैं अपनी समस्याओं से निबटने के लिए अकेला खड़ा रह गया। मुड़कर मैंने देखा तो कुली किसी से तंबाकू मांग रहा था। मैंने चिल्लाकर कहा, 'पाँच नंबर, कहीं गायब मत हो जाना।' प्लेटफार्म पर धीरे-धीरे भीड़ इकट्ठी हो रही थी। एक और घंटी बजी। लोग अपना सामान उठाने और इधर-उधर चलने लगे। दूर से रेल की सीटी और फक-फक सुनाई देने लगी। इंजन दिखाई देने लगा था।

ट्रेन मेरे सामने से गुज़री तो खिड़कियों में लोगों के चेहरे दिखाई देने लगे। फिर वह रुक गई तो लोग दौड़ने लगे। नंबर पाँच तंबाकू चबाता मेरे साथ चल रहा था। 'मेल वाले डिब्बे की तरफ चलो।' मैं हर डिब्बे में झाँकता हुआ तेज़ी से भीड़ को काटता आगे बढ़ रहा था। देखा, एक डिब्बे में ससुरजी दरवाज़े पर पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं। मैं उस डिब्बे की तरफ दौड़ा। बहुत से लोग चढ़-उतर रहे थे लेकिन मेरी बीवी बच्ची को गोद में लिये आराम से अपनी सीट पर बैठी थी। 'बाहर निकलो,' मैं चिल्लाया। 'सिर्फ तीन मिनट बाकी हैं।' ससुरजी नीचे उतर आये। मैं और पाँच नंबर सबको धकेलते भीतर घुसे और सेकिंड भर में पत्नी के पास पहुँच गये।

'अब बैठने का वक्त नहीं है। बच्ची मुझे दो और नीचे उतरो', मैंने उतावली से कहा। लेकिन वह आराम से बोली, 'बेबी को मैं ही ले चलूँगी। तुम सामान उतारो। और वह बेंत वाला बक्स उसे ध्यान से उतारना। उसमें बच्ची का दूध और बोतल वगैरह हैं।' फिर बच्ची को उठाकर वह मज़े-मज़े से आगे बढ़ने लगी। दरवाज़े के पास भीड़ देखकर रुक गई और बोली, 'रास्ता दीजिए', तो लोग सामने से हट गये। मैं चिल्लाया, 'सुशीला, दरवाज़े का ध्यान रखना। बच्ची को लग न जाये।' इस वक्त मैं जो भी कहना चाहता था, वह सब दिमाग़ में ही गड़बड़ हो गया, और जब तक वह अपने पिताजी की मदद से, सही तरह नीचे न उतर आई, उसे ध्यान से देखता रहा। नंबर पाँच ने जादू की तरह सब सामान उतारकर नीचे रख दिया था।

अब गाड़ी जब चाहे चली जाय, मुझे परवाह न थी। प्लेटफार्म पर सारे ट्रंक एक-दूसरे के ऊपर रखे थे और बच्ची को लिए सुशीला उनके बगल में सुरक्षित खड़ी थी। मैंने उस पर भरपूर नज़र डाली, तो वह एकदम ताज़ी और खूबसूरत दिखाई दी, चमकते हुए बाल, कपड़ों पर एक भी सलवट नहीं, चेहरा फूल की तरह खिला, थकावट का एक भी निशान नहीं। हमेशा की तरह नीले रंग की सिल्क की साड़ी पहने। मैं उसके पास जाकर बोला, 'इस साड़ी में बहुत अच्छी लगती हो।' इस वक्त उसके पिता डिब्बे में जाकर देख रहे थे कि कुछ रह तो नहीं गया। 'यह जगेगी कब?' मैंने बच्ची की तरह इशारा करते हुए पूछा जो अपनी नीली फ्राक में लाल-लाल गाल लिये बहुत प्यारी लग रही थी।

'पिताजी नीचे उतर रहे हैं,' यह कहकर उसने मुझे इशारा किया कि मैंने अभी तक उन पर ध्यान नहीं दिया और अच्छी तरह मुझे उनका स्वागत करना चाहिए। मैंने उसकी आज्ञा का पालन किया, तुरंत उनके पास पहुँचकर बोला, 'आप खुद इनके साथ आये, मैं बहुत खुश हूँ...।' उन्होंने मुस्कराकर कहा, 'तुम्हारी पत्नी और बेटी दोनों ही बड़े आराम से आये...बहुत अच्छी सीटें मिल गई थीं उन्हें।'

'अच्छा, लेकिन कैसे... मैं तो समझता था कि गाड़ी में बहुत ज्यादा भीड़ होगी।' जवाब मेरी बीवी ने दिया 'और लोग भी हों डिब्बे में तो क्या फर्क पड़ता है। उन्हें भी तो सफर करना होता है। मैं ऐसी बातों की चिंता नहीं करती।' मैं जानता था कि वह इस तरह अपने पिता का समर्थन ही कर रही है क्योंकि उसे पता था कि तीसरे दर्जे में आने के लिए मैं नाराज़ होऊँगा। मैंने कहा, 'मेरा ख्याल था कि बच्ची को ठीक से सुलाने में तुम्हें तकलीफ़ होगी।'

'अरे, सबने हमें जगह दे दी, बल्कि पूरी बर्थ ही हमें मिल गई', उसने कहा और अपनी

हर नज़र और हरकत से यह व्यक्त किया कि मुझे इसके लिए दोनों का कृतज्ञ होना चाहिए। इसलिए मैंने पिताजी की तरफ मुड़कर कहा, 'आप इतनी अच्छी तरह सबको ले आये, मैं बहुत आभारी हूँ।' यह सुनकर वे प्रसन्न हो उठे। बोले, 'सुशीला और बच्ची को देखकर लोग हर तरह से मदद करने लगते हैं?'

'मैं चाहता हूँ कि आप कम से कम एक हफ्ता हमारे साथ रहें...', मैंने कहा और समर्थन के लिए पत्नी की तरफ देखा। लेकिन बहुत-बहुत धन्यवाद देते हुए उन्होंने यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। उन्हें दूसरे ही दिन वापस पहुँचना था और वे शाम की गाड़ी से चले जायेंगे। उन्होंने बताया, 'गाड़ी में तीन बंबई वाले थे जिन्हें लीला बहुत प्यारी लगी और वे उसे बिस्कुट देने लगे, और वह लेना भी चाहती थी लेकिन मैंने नहीं लेने दिये।'

'छोटे बच्चों के लिए बिस्कुट अच्छे नहीं होते,' मैंने कहा। फिर हम चलने को हुए। मैंने हाथ आगे बढ़ाकर कहा, 'अब इसे मुझे दे दो।' लेकिन पत्नी ने इनकार कर दिया। 'तुम नहीं जानते इसे कैसे गोद में उठाया जाता है। इसे मोच आ सकती है।' उसने उसे कसकर छाती से चिपका लिया और प्लेटफार्म से बाहर निकल आई।

बाहर एक विक्टोरिया बग्घी खड़ी थी। उसमें पहले ट्रंक भरे गये, फिर हम सब बैठे। चालक की पिछली सीट पर मैं और ससुरजी सिकुड़कर बैठे और सामने वाली माँ और बेटी के लिए छोड़ दी। बीच की जगह में ट्रंक एक-दूसरे के ऊपर रखे गये और उनके बीच खाली रही थोड़ी सी सँध में से मुझे कभी-कभी दोनों दिखाई पड़ जाते थे। वह बराबर बच्ची की आदतों के बारे में बात करती रही, मकान कैसा है यह पूछा और रास्ते में पड़ने वाली सड़कों और इमारतों के नाम वगैरह पूछती रही।

माँ ने फाटक पर आकर उनका स्वागत किया। उसने दीवारों पर आम की पत्तियाँ लटका दी थीं और ज़मीन पर आटे से अल्पना काढ़ दी थी। वह दरवाज़े पर बाहर खड़ी हमारा इन्तज़ार कर रही थी और जैसे हम नीचे उतरे, ज़ोर से बोली, 'सुशीला और बच्ची को वहीं रहने दो।' फिर अलक्तक से भरी एक कटोरी लेकर उनके चारों तरफ घुमाई, फिर उतरने को कहा। फिर बाँहें आगे बढ़ाकर बच्ची को गोद में ले लिया।

मैंने माँ पर एक नज़र डाली, तो बहू और बच्ची को सही ढंग से घर में उतारने और प्यार से गोद में लेने की उसकी आतुरता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हो उठा और सास के रूप में वह सुशीला से कैसा व्यवहार करेगी, मेरा यह भय एकदम काफूर हो गया।

मेरी माँ तो अब अपनी पोती में ही चौबीसों घंटे व्यस्त रहने लगी। उसे किसी और बात के संबंध में सोचने या कुछ कहने का समय ही नहीं मिलता था। वह बच्ची ही नहीं, उसकी माँ के संबंध में भी चिंतित रहने लगी कि उसे सब तरह की पूरी आज़ादी और सुविधा दी जाए जिससे बच्ची पर अपना ध्यान लगा सके। बच्ची उन दोनों के जीवन का केन्द्रबिन्दु थी, जिसके कारण उनमें आपस में भी एक-दूसरे के लिए सद्भावना पैदा हो गई थी। मेरी माँ सारा दिन मेरी पत्नी को अपने कमरे में ही बने रहने का आग्रह करती और खुद इन दोनों के लिए किचेन में खाना-पीना तैयार करती रहती थी। रात को जब बच्ची रोती तो मेरी माँ हॉल में पड़े अपने बिस्तर पर उछलकर खड़ी हो जाती और सुशीला के जागने से पहले उसकी देखभाल शुरू कर देती। उसका विचार था कि चूँकि बच्ची को अभी भी अपनी माँ के दूध की ज़रूरत है, इसलिए उसे सब तरह की सुविधाएं मिलती रहनी चाहिए।

माँ मेरे पास अधिक से अधिक जितने दिन रह सकती थी—यानी दो महीने— उतने दिन रहकर गाँव वापस चली गई।

मैं साढ़े चार बजे, जैसे ही आखिरी घंटी बजती, कॉलेज छोड़ देता और बीस मिनट में घर पहुँच जाता था। घर के सामने सड़क का मोड़ मुड़ने पर मुझे सुशीला बगीचे में कुछ करती, या मैदान में बच्ची के साथ कंकड़-पत्थर से खेलती दिखाई देती थी।... मेरी पत्नी में बाहरी दिखावा कभी नहीं रहा, लेकिन मैं जानता था कि वह मेरा इन्तज़ार कर रही है। इसलिए मैं कहता: मैं सिर्फ बीस मिनट में यहाँ आया और तुम मेरा इन्तज़ार कर रही हो।' वह यह सुनकर लाल हो उठती लेकिन ऊपर से कहती, 'मैं तो बच्ची के साथ खेल रही थी, तुम्हारा इन्तज़ार थोड़े ही कर रही थी...' बेटी आकर पैरों से लिपट जाती और मेरी किताबें पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा देती। मैं किताबें उसे दे देता तो वह सीढ़ियों पर चढ़कर कमरे में जाती और मेज़ पर किताबें रख देती। मैं भी उसके पीछे कमरे में जाता, कोट और कमीज़ उतारता और तौलिया लेकर बाथरूम में घुस जाता। बच्ची मेरी बगल में होती और वह जगह-जगह रखी चीज़ों की तरफ इशारा करके उनके बारे में अपने ढंग से बात करती रहती। अभी वह एक-एक, दो-दो शब्द ही बोलती थी और तरह-तरह के इशारों से काम चलाती थी। जब मैं नल के नीचे सिर रखता तो वह ध्यान से देखती और पानी इधर-उधर छिटकता देखकर बहुत खुश होती। नहाते वक्त मैं उसे अपने से दूर ही रखता और पास बिलकुल नहीं आने देता था, लेकिन वह एकाध कदम इधर-उधर बढ़ाकर पास आ जाती और पानी की बूँदों को हाथ से पकड़ने की कोशिश करती। तब मैं चिल्लाता, 'बेटे, पानी से दूर रहो।' वह झट से दूर हट जाती लेकिन नहाते हुए मैं जब आँख बंद कर लेता और फिर उन्हें खोलता, तो वह फिर पानी के पास ही खड़ी मिलती। तब उसकी फ्राक भीगी होती, जिसे देखकर मैं नहाना खत्म कर देता और बदन पोंछने लगता। फिर उसे गोद में लेकर बाहर आता और अपने कमरे में जाकर बालों में कंघी करता। मैं ये सब काम धार्मिक कर्तव्य की तरह इसलिए करता क्योंकि शाम को घर लौटने पर मैं अपने को, उनकी तुलना में एकदम बदहवास और धूल-धक्कड़ से भरा हुआ पाता-चेहरा गंदा, स्याही से सनी उंगलियाँ, ढीला लटकता सूट—जबकि माँ और बेटी दोनों एकदम तरोताज़ा और खुश दिखाई देतीं।

जब मैं भी ताज़ा होकर बाहर आता, सुशीला की आवाज़ सुनाई देती, 'आपकी कॉफ़ी ठंडी हो रही है। भीतर आ जाइये।'

'आता हूँ!' यह कहकर हम दोनों डाइनिंग रूम में पहुँच जाते। उस के अंत में एक छोटा-सा ताक़ था जिस पर देवताओं की मूर्तियाँ रखकर मंदिर बना दिया गया था। चाँदी की ये मूर्तियाँ फूलों से ढंकी होतीं और सामने दो दीपक जल रहे होते, जिन्हें वह रोज़ सुबह जला देती थी। मैं अक्सर उसे दीपक हाथ में पकड़, आँखें बंद करके धीरे-धीरे प्रार्थना करते देखता था। इससे मेरा मनोरंजन होता था और मैं उसे पूछता था कि देवताओं से वह क्या माँगती है? इस सवाल का जवाब उसने कभी नहीं दिया। मुझे आज तक यह मालूम नहीं हो पाया कि वह क्या प्रार्थना करती है। एक दफ़ा जब मैंने मज़ाक में कहा, 'योगी बनने का इरादा है?' तब भी वह चुप रही और मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया, विरोध भी नहीं किया। मुझे लगा वह अपने भीतर एक अलग जीवन जीती है। इस ताक़ से हमेशा कपूर की खुशबू आती और सूखे हुए फूल उसमें पड़े रहते।

मैं सामने रखी कुर्सी पर बैठ गया, गोद में बच्ची थी। मेरे सामने एक तश्तरी आई जिसमें खाने के लिए कुछ नाश्ता रखा हुआ था। सुशीला मेरी प्रतिक्रिया का इन्तज़ार करने लगी, कि उसे देखकर मैं क्या कहता हूँ। मैंने पूछा, 'यह क्या है?' तो उसने जवाब दिया, 'खुद देखकर बताओ। देखें बता पाते हो या नहीं?' अब मैं देखने लगा कि यह वस्तु क्या हो सकती है, तभी बच्ची ने उसके लिए अपना हाथ बढ़ा दिया। मैंने थोड़ा-सा प्लेट में से उठाकर उसके मुँह में डाला

तो वह बोली, 'इसे सब कुछ खिलाकर तुम बिगाड़ दोगे...।'

'कोई बात नहीं। ज़रा-सा दिया है...।'

'बीमार पड़ जायेगी। सारा दिन उलटा-सीधा खाती रही है। बीमार पड़ जाये तो मुझे दोष मत देना...।'

'इतने ज़रा से खाने से इसे कुछ नहीं होगा...।'

लीला ने उसे खाकर फिर और लेने के लिए अपना हाथ बढ़ाया तो सुशीला ने डाँटा, 'और मत खाओ... और पिताजी को तंग मत करो। मेरे पास आओ, आ जाओ...', तो उसने कसकर मुझे पकड़ लिया। मैंने भी बायें हाथ से उसे उठाकर गोद में बिठा लिया और कहा, 'फिक्र मत करो, मैं और नहीं दूँगा इसे...', और खुद प्लेट में से उठाकर खाने लगा। जब मेरा खाना खत्म हो गया तो उसने पूछा, 'और दूँ क्या?' मैं हिचकिचाया तो वह बोली, 'अच्छा नहीं लगा क्या?'

'अच्छा है, लेकिन...'

'गंध अच्छी नहीं है, है न? गंध ठीक होती तो अच्छा था?' और मैं इस बात से सहमत हो गया था। 'तुम्हें अच्छा लगेगा यह सोचकर मैंने काफी ज्यादा बना लिया...।' यह कहकर वह भीतर गई और मेरे लिए थोड़ा सा और ले आई। इस बार खाते हुए मैंने तारीफ की क्योंकि तारीफ़ पाने के लिए ही तो उसने यह चीज़ बनाई थी।

इसके बाद उसने मुझे कॉफ़ी दी। कॉफ़ी पीकर हम हॉल में आकर बैठ गये। बच्ची कोने में रखे अपने डिब्बे के पास गई और उसमें रखी चीज़ें निकालने-रखने लगी। पत्नी दरवाज़े के पास जा बैठी और सड़क पर आते-जाते लोगों को देखने लगी। हम वहाँ घंटा-भर बैठे बातें करते रहे। मैं अपने कॉलेज के बारे में उसे जो भी बताता था, वे सब बातें वह बड़ी उत्सुकता से सुनती थी। यद्यपि अभी तक वह कॉलेज के एक भी व्यक्ति से नहीं मिली थी, वह मेरे सब साथियों और अध्यापकों के नाम और छात्रों के बारे में भी बहुत कुछ जान गई थी। वह जान गई थी कि ब्राउन कौन है और वह किस बात से खुश और किस से नाखुश होता है। मेरी सब बहसों और बातचीत में वह मेरे ही पक्ष का समर्थन करती थी और जो मुझे नापसंद था या पसंद था, उन सबको भी उसी तरह पसंद और नापसंद करती थी। यहां के पड़ोसियों और उन सबकी अच्छी-बुरी आदतों के बारे में भी वह मुझे बताती रहती थी। ये बातें तब तक चलती रहीं जब तक अँधेरा न घिर आया और रोशनियाँ कर दी गईं। इसी वक्त बच्ची के खिलौनों की खटर-पटर भी बंद हो गई। अब उसे भी हमारी ज़रूरत है, यह साफ़ था। वह कुनमुनाती हमारे पास आई और कुछ खाने के लिए कहने लगी। मेरी पत्नी उठी और किचेन में जाकर रात का भोजन तैयार करने में लग गई। बच्ची को मैंने गोद में ले लिया और उसे घुमाने बाहर निकल आया।

हर महीने की पहली तारीख को मैं घर आता और उसी दिन मिली तनख्वाह, सौ रुपये के एक लिफाफे में मिले दस-दस के दस नोट उसके हाथ में रख देता। पैसा वही रखती थी। और उसका हिसाब-किताब एकदम पक्का था। उसके हाथ में पहुँचकर ये सौ रुपये दो सौ के बराबर हो जाते, और पूरे महीने जब भी मैं माँगता, वह मुझे रुपये दे देती थी। इससे पहले जब मैं खुद अपना हिसाब रखता था, कुछ ज़रूरी खर्चों और बचत के रुपये निकालने के बाद मैं जो भी सामने दिखाई देता, खरीद लेता था, या जो भी कुछ माँगता उसे दे देता था, जिसका नतीजा यह होता कि दस दिन बीतते ही मेरा पैसा खत्म हो जाता था। अब यह ऐसे व्यक्ति के हाथ में पहुँच गया था, जिसे यह पता था कि एक-एक रुपया कैसे खर्च किया जाना चाहिए, और जो सही ढंग से उसे खर्च करता था। वह सारा पैसा एक खूबसूरत डिबिया में अपनी अलमारी में बंद करके रखती थी और चार साल पुरानी एक डायरी के आखिरी पन्नों में नियमित हिसाब भी लिखती जाती

थी।

हम मेज़ पर बैठकर महीने का बजट और खरीदने वाले सामानों की सूची बनाने लगे। उसने कापी से एक कागज़ फाड़ा और उस पर चावल से सरसों के तेल तक सब चीज़ें लिख डालीं। फिर बोली, 'मैंने हर चीज़ और जितनी-जितनी वह चाहिए, इस पर लिख दी है। पिछली दफ़ा की तरह इसमें कोई फेरबदल मत करना।' मैंने तब एक ही चीज़ में ज़रा सा परिवर्तन किया था। लेकिन वह भी उसे ठीक नहीं लगा था। उसने चने दो सेर लिखे थे लेकिन नेशनल प्रावीज़न स्टोर पर इतना चना नहीं था, इसलिए उसने उसे पूरा करने के लिए गुड़ की मात्रा बढ़ा दी थी। मुझसे पूछ कर ही उसने यह किया था। लेकिन जब मैं घर लौटा तो यह कम-ज्यादा देखकर वह बहुत परेशान हो उठी। उस दिन मैंने जाना कि इन मामलों में उसका रुख बड़ा सख्त है और उसे गुस्सा भी बहुत आ जाता है।

'उसने यह परिवर्तन क्यों किया?' पत्नी ने सवाल किया और मेरे यह बताने पर कि इतना चना उसके पास नहीं था, वह गुस्से से भन्ना उठी। मैं भी थका-माँदा घर लौटा था और सख्त जवाब देने ही जा रहा था, वह बोल पड़ी, 'कैसी दूकान है यह जिसके पास चने जैसी आम चीज़ नहीं है?'

'चाहो तो खुद जाकर देख लो,' यह कहकर मैं अपने कमरे में चला आया। वह बोली, 'इसमें गुस्से की क्या बात है, जो तुम एकदम भड़क उठे?' मैं कुर्सी पर बैठ गया और उसकी बात अनसुनी करके एक किताब उठाकर पढ़ने लगा। वह थोड़ी देर बाद फिर आई, अब उसके हाथ में कागज़ की एक थैली थी। 'इस आदमी ने शक्कर कम दी है। उसने तुम्हें ठगा है।' मैंने किताब रख दी और उसे घूर कर देखते हुए पूछा, 'क्या मतलब है तुम्हारा?'

'तुम गुस्सा हो इसलिए नहीं कहूँगी,' वह बोली।

'गुस्सा कौन है,' मैंने धीरे से पूछा, 'बात तो बताओ।'

'मैंने दो सेर शक्कर लिखी थी। इसने पैसे दो सेर के ही लिये हैं लेकिन डेढ़ सेर ही दी है। मैंने तौलकर देख लिया है।' उसने विजयी भाव से मेरी ओर देखा, कि इस पर मैं क्या कहता हूँ। मैंने इतना ही कहा, 'वह ऐसा नहीं करेगा। तुम्हारे घर के बाट अलग ही लगते हैं।'

'मेरे बाट बिलकुल सही हैं। तुम्हारी माँ भी इन्हीं से तौलती थीं और कहती थीं, ये ठीक हैं।' तो यह उसने अपनी सास से सीखा था। उसने इसे यह भी सिखा दिया था। उसके पास एक काँसे का बर्तन था जिसे वह आधे सेर का मानती थी। और इसके अलावा वह कोई भी दूसरी नाप स्वीकार नहीं करती थी। इसी से नापकर वह घी, तेल, दूध, नमक, सब कुछ खरीदती थी। उसका कहना था कि बाकी सब बाट नकली हैं, सरकारी मुहर लगे बाट गलत होते हैं, और जान बूझ कर गलत बनाये जाते हैं क्योंकि म्युनिसिपैलिटी के कई लोग व्यापारी होते हैं। इस बर्तन से वह नापती और तौलती दोनों ही काम करती थी, उसका कहना था कि उसका बर्तन तौल में भी आधे सेर का ही है और कहती थी कि उसे कोई गलत नहीं साबित कर सकता। ज्यादातर दुकानदार उससे झगड़ा करना ठीक न समझकर उसकी बात मान लेते थे और जैसा वह कहती, कर देते थे। अब वैसा ही बर्तन उसने अपनी बहू को भी पकड़ा दिया था और उसका इस्तमाल भी सिखा दिया था।

मैंने चिल्लाकर कहा, 'वह बर्तन फेंक दो और सरकारी बाट इस्तेमाल करो।'

इस पर वह बोली, 'ज़ोर से मत बोलो। बच्ची सो रही है।' फिर कमरे से बाहर जाने लगी। मैंने उसे रोका और कहा, 'सरकारी बाट इस्तेमाल करोगी तो तुम्हें हर चीज़ सही लगेगी। सब लोग यही करते हैं।'

इस पर वह ज़ोर से बोली, 'नेशनल प्राविज़न्स का मालिक बेईमान है। इसे बदलना ही ठीक

है।'

मुझे यह बात ठीक नहीं लगी। मैं इसे सालों से जानता था और पसंद भी करता था। मैं साउथ एक्सटेंशन इसीलिए जाता था कि इसकी दुकान से खरीदारी कर सकूँ, और यह आदमी मुझे पसंद इसलिए था कि यह मोटा-तगड़ा और बातूनी था, और तर्कशास्त्र के अध्यापक शास्त्री का कहना था कि शहर में यह सबसे अच्छी दूकान है। मुझे लगता था कि इस दूकान से खरीदने वालों की इज़्ज़त भी बढ़ती है। मैंने कह दिया, 'मैं इसे नहीं बदलूँगा। यह शहर की सबसे अच्छी दूकान है। आदमी भी सही है।'

'मुझे समझ नहीं आ रहा कि जो आदमी तुम्हें कम और घटिया चीज़ देता है, उसी से खरीदने की ज़िद क्यों कर रहे हो?'

इस पर मैंने झुँझालकर कहा, 'हाँ, वह मेरा चचेरा भाई लगता है, इसलिए वह मुझे पसंद है।'

लेकिन सुशीला की उसके प्रति नफरत बनी ही रही। वह बोली, 'तुम यहीं पास की किसी दुकान से खरीदने के बजाय गाड़ी लेकर इतनी दूर जाओगे और उस ठग से ही खरीदोगे... और उसके रेट भी ज्यादा हैं।' यह कहते हुए वह काँपने भी लगी। मैंने घोषणा की, 'जो भी हो, मैं उसे नहीं बदलूँगा।' 'चुप रहो, बच्ची सो रही है,' यह कहकर वह कमरे से बाहर निकल गई।

मैं पंद्रह मिनट कुर्सी पर बैठा तमतमाता रहा, फिर किताब उठाकर पढ़ने की कोशिश की, लेकिन पाँच मिनट से ज्यादा न पढ़ सका। फिर मैं उठा और स्टोर-रूम में जाकर खड़ा हो गया जहाँ वह सारा सामान अलग-अलग बर्तनों और बोतलों में भर-भरकर रख रही थी। कुछ देर तक मैं उसे काम करते देखता रहा। फिर मुझे उस पर तरस आने लगा, इसलिए कि मैंने धीरज से काम नहीं लिया था। मैंने कहा, 'गुड़ ज्यादा हो तो मैं वापस कर दूँगा। क्या यह किसी और काम नहीं आ जायेगा?' जवाब में उसने गुड़ रखने का छोटा-सा डिब्बा मेरे सामने कर दिया, 'देखो, इसमें कितना थोड़ा गुड़ आता है। कहीं और रखूँ तो चींटे भर जायेंगे। हमारे लिए तो उतना गुड़ ही महीने-भर के लिए काफी होता है।' अब मुझे उसके गुस्से का कारण समझ में आ गया और अगली दफ़ा जब मैं बाज़ार करने गया तो उसने मुझे को-आपरेटिव स्टोर से सामान खरीदने के लिए राज़ी कर लिया था।

इसके बाद जब भी वह सामान की सूची तैयार करती, मुझे आगाह कर देती, 'इसमें कोई तब्दीली मत करना।' अब मैं बिलकुल सूची के अनुसार खरीदारी करता और पैसों का हिसाब कम-ज्यादा होने पर भी कोई परिवर्तन नहीं करता था। उसे संतुष्ट करने के लिए कोई चीज़ खरीदने से मना भी कर देता और लौटकर उससे दोबारा पूछकर ला देता।

उसे अपनी बनाई सूचियों पर बहुत गर्व होता था। हर चीज़ वह पूरी तरह हिसाब लगा कर लिखती थी कि महीने में कितनी लगेगी, न ज़रा-सी कम, न ज्यादा करीब दो दर्जन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती थी और सबका हिसाब लगाने में वह काफी समय लगाती थी। इसीलिए उसे अपनी इस योग्यता पर गर्व था। यह सब खरीदने के लिए वह मुझे बीस रुपये या इससे कुछ ज्यादा देती थी। मैं सूची और पैसे लेकर मार्केट रोड पर स्थित कोआरपरेटिव स्टोर जाता और तीन घंटे बाद कागज़ की छोटी-बड़ी थैलियों में बंद सब सामान टोक़री में मजूदर के सिर पर रखवाकर घर आता था। वह दरवाज़े पर खड़ी बड़े उत्साह से हमारा स्वागत करती, और मेरे गेट के भीतर घुसते ही मेरे हाथ से बिल लेकर तेज़ी से हर चीज़ का वज़न और कीमत देख जाती थी।' तुम सब चीज़ें ले आये और पैसे भी 22 रुपए 8 आने ही चुकाये, पिछली दफ़ा से कम हैं ये...अच्छा कौन सी चीज़ इस दफा सस्ती मिल गई? इसे देखकर वह बहुत खुश होती। उसे देखकर मैं भी खुश होता और बाकी पैसे एक-एक गिनकर उसे वापस कर देता। मज़दूर को वह तीन आने देती, और

कुछ भी हो जाय, इससे एक पैसा ज्यादा नहीं देती थी। अगर कोई मज़दूर ज़्यादा लेने के लिए अड़ जाता तो उसे धमका कर कहती, 'बहस मत करो। अब जाओ। साहब ने तुम्हें पहले ही एक आना ज्यादा दे दिया है। यहाँ से बाज़ार आधा मील दूर ही तो है...।'

फिर ये सब थैलियाँ वह स्टोर-रूम में ले जाती और हर चीज़ अलग-अलग डिब्बों में, जिन पर नाम भी चिपके हुए थे, सफाई से बंद कर रैक पर करीने से रखती। लेकिन चावल रखने में वह हमेशा मेरी सहायता लेती थी। यही बोरा सबसे बड़ा होता था। इस दिन यह मेरी खास ड्यूटी होती थी कि चावल का बोरा सावधानी से खींचकर स्टोर तक ले जाऊँ और उससे भी ज्यादा सावधानी से उसे उठकर लोहे के ड्रम में उड़ेल लूँ, जिससे चावल का एक भी दाना बाहर ज़मीन पर न गिरे। अगर किसी कारण कुछ चावल बिखर जाता तो कहती, 'पता नहीं कब तुम किफ़ायत से रहना सीखोगे। बहुत बरबाद करते हो तुम। जितना चावल तुम फैलाते हो, उतने में तो पूरा परिवार गुज़र कर सकता है।'

इन बर्तनों को वह बैरोमीटर की तरह देखती थी। उनमें रखी चीज़ ऊपर-नीचे होने से वह महीने में कितना खर्च हुआ, यह नाप लेती थी। हर चीज़ एक खास तारीख को कहाँ तक भरी होनी चाहिए, और महीने की आखिरी तारीख को— सिर्फ एक दिन के लायक, क्योंकि, दूसरे दिन उसे फिर से भरा जाना होता था। जैसे किसी पावर हाउस का टेक्नीशियन मीटर पर बढ़ती, कम होती बिजली की जाँच करता है, ठीक उसी तरह सुशीला भी स्टोर में चीज़ों की जाँच करती थी।

जब तक किचेन में उसका प्रभुत्व रहा, तब तक सब ठीक-ठाक चलता रहा— इसके बाद माँ ने गाँव से एक बुढ़िया हमारे लिए खाना पकाने और घर के दूसरे काम-काज के लिए भेज दी।

एक शाम हम घर के सामने वाले वरांडे में बैठे बातें कर रहे थे कि एक बुढ़िया फाटक पर आकर खड़ी हो गई। उसके पास एक छोटा-सा बक्सा था। वह पूछने लगी, 'कृष्णन का मकान यही है?'

'हाँ तुम कौन हो, भीतर आ जाओ...,' यह कहकर मैंने फाटक खोल दिया। उसने मुझे आँखें मिचमिचाकर देखा और बोली, 'किट्टू... मैंने तुम्हें बचपन में देखा था, अब कितने बड़े हो गये हो...।' फिर वह वरांडे में आ गई और ध्यान से मेरी पत्नी को देखकर बोली, 'तुम बहू हो न! मैं कामू की पुरानी सहेली हूँ।' कामू माँ का घर का नाम था। अब तक लीला भी एक नई आवाज़ सुनकर वहाँ आ गई— वह अपने खिलौनों से खेल रही थी। बच्ची को देखते ही बुढ़िया चीखकर बोली, 'यही कामू की पोती है!' और गोद में उठाकर उसे प्यार करने लगी।

सुशीला यह देखकर पिघल गई और बोली, 'भीतर आ जाओ।' बुढ़िया भीतर आकर बैठ गई, और साड़ी का एक कोना खोलकर उसमें से एक खत निकालकर दिया। माँ का खत था यह। लिखा था: 'मैं अपनी एक पुरानी परिचिता के हाथ यह खत भेज रही हूँ। जब तुम बच्चे थे, घर के काम-काज में यह मेरी मदद करती थी। फिर यह अपने बेटे के साथ रहने चली गई। पिछले साल वह गुज़र गया और अब यह अकेली रह गई है। कुछ दिन पहले यह काम की तलाश में मेरे पास आई, लेकिन अब मुझे किसी की ज़रूरत नहीं है। फिर तुम्हारे पिताजी, किसी नए आदमी को घर में देखते हैं तो एकदम नाराज़ हो उठते हैं। इसलिए मैं इसे बस का किराया देकर तुम्हारे पास भेज रही हूँ। मैंने हमेशा महसूस किया है कि सुशीला को घर के काम के लिए किसी की मदद की जरूरत है। क्योंकि इसके बिना वह बच्ची की सही ढंग से देखभाल नहीं कर सकती। यह औरत खाना बनायेगी और बच्ची की देखभाल भी करेगी। इसे तुम जितना ठीक समझो दे सकते हो।'

बुढ़िया ज़मीन पर बैठी बच्ची से दुलार कर रही थी और मैं हॉल की रोशनी में खत पढ़ रहा

था—पत्नी भी मेरे ही पीछे खड़ी उसे पढ़ रही थी। पढ़कर मैंने उसकी तरफ देखा। उसकी आँखों में परेशानी थी। वह मुझसे कई सवाल पूछना चाहती थी। इसलिए बातें करने हम दूसरे कमरे में चले गये।

'अब क्या करना है?' वह पूछने लगी।

'तुम इतनी घबरा क्यों रही हो? तुम्हें पसंद नहीं होगी तो वापस भेज देंगे।'

'नहीं, नहीं। यह कैसे हो सकता है? तुम्हारी माँ ने भेजा है। हमें इसे रखना ही होगा।'

'मैं भी सोचता हूँ कि उसे रखना अच्छा ही रहेगा। अब जब भी तुम बच्ची की देखभाल से फारिग होती हो, तुम्हारा सारा वक्त किचेन में निकल जाता है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा सारा वक्त खाना बनाने में ही बीतता रहे।'

'लेकिन मुझे तो यह काम पसंद है। क्या बुराई है इसमें?' उसने सवाल किया।

'तुम्हें कुछ वक्त पढ़ने या सिलाई करने या गाने-बजाने में भी बिताना चाहिए। लोग सिर्फ पकाने और खाने के लिए ही पैदा नहीं होते,' मैंने कहा, 'तुमने किताबों को हाथ लगाना बिलकुल बंद कर दिया है। अच्छा, 'आइवन हो' पूरा किया?' वह कई साल से 'आइवन हो' पूरा पढ़ने की कोशिश कर रही थी, और लैंब की 'टेल्स ऑफ शेक्सपियर' भी पढ़ना चाहती थी। लेकिन पचास पेज से आगे बढ़ ही नहीं पा रही थी। उसके पुस्तक-संग्रह में एक तमिल संत के भजनों की किताब भी थी, कम्ब की 'रामायण' थी, और पाल ग्रेव की 'गोल्डेन ट्रेज़री' तथा चमड़े की जिल्द से मढ़ी संस्कृत में 'भगवद्गीता' भी थी। मैं ज़ानता था कि उसे पढ़ने का काफी शौक है। वह हमेशा कहती रहती थी कि ये किताबें पढ़ने के बाद वह किसी लाइब्रेरी को मेम्बर हो जायेगी। लेकिन उसकी यह इच्छा मन में ही रह गई।

शादी के शुरु के दिनों में हम दोनों उसके पिता के घर की सबसे ऊपरी मंज़िल पर बने अकेले कमरे में कोई न कोई किताब लेकर साथ बैठते थे और पढ़ते थे। पहला आधा घंटा तो यूँ ही बेकार चला जाता, क्योंकि शुरु में उसका मूड इतना हल्का होता कि वह हर बात पर एकदम हँसना शुरु कर देती और देर तक बेतहाशा हँसती चली जाती; यहाँ तक कि गंभीर कविता भी, विशेषकर किसी प्रेमी की अभिव्यक्ति—जैसे, 'मेरा सच्चा प्रेम मेरा हृदय ले गया है और अपना हृदय मुझे दे गया है'—भी उसे हँसने से नहीं रोक पाती थी। वह तब तक हँसती रहती जब तक उसका चेहरा एकदम सुर्ख न हो जाता। 'ये लोग अपना हृदय अपने पास ही सँभालकर क्यों नहीं रखते, इस तरह उनकी अदला-बदली में क्यों लगे रहते हैं?' फिर वह हाथ बढ़ाकर मेरी जेबों की तलाशी लेती कि कहीं उसका हृदय तो मेरी जेब में नहीं पड़ा है।

'हुश, चुप रहकर कविता सुनो,' मैं कहता तो वह हँसी दबाकर मुझे सुनने लगती लेकिन अस्वीकार में सिर हिलाती जाती। एक और कविता की पंक्ति जो उसे बहुत मज़ेदार लगी, यह थी: 'ओ मेरी प्रिया, तुम यह कहाँ घूमती रहती हो?' इसे वह और आगे नहीं पढ़ने देती, कहती: 'इस कविता के कारण मैं किसी दिन मर ही जाऊँगी। यह औरत अपने पति के पास क्यों नहीं बैठती, इधर-उधर डोलती क्यों फिरती है?'

वह कविता को समझती हो या न समझती हो, पुस्तक के पन्ने पलटने में उसे एक विशेष सुख मिलता था, विशेष रूप से इस बात से कि मैं उसके पास बैठकर पढ़ता और सुनाता हूँ और समझाता भी जाता हूँ। वह तमिल और संस्कृत के ग्रंथ तो मेरी सहायता के बिना पढ़ लेती थी, लेकिन अंग्रेज़ी की रचनाएं मुझसे सुनना ही पसंद करती थी। अगर मैं ज़रा भी आना-कानी करता, तो कहती: 'लगता है, जब तुम्हें इस काम के सौ रुपये महीने मिलेंगे, तभी तुम सुनाओगे।'

लेकिन बच्ची के जन्म लेने के बाद यह सब खत्म हो गया। जब उसे बच्ची से फ़ुरसत मिलती, तो वह किचेन में चली जाती। इसलिए नौकरानी के लिए किया गया मेरा तर्क उसे

अच्छा लगा। बोली, 'लेकिन इससे हमारा खर्च भी बढ़ जायेगा। इसे हम देंगे क्या?'

'आठ रुपये, मेरा ख्याल है कि और लोग भी यही देते हैं', मैंने कहा।

'अरे, यह तो बहुत ज्यादा है', उसने कहा। 'और वह इतने ही रुपये की चीज़ें बरबाद भी करेगी। इतना खर्चा हमें नहीं करना चाहिए।' मैंने कहा, 'नहीं, यह खर्चा ज़रूरी है और हम कर भी सकते हैं। हमारा प्राविडेंट फंड तो है ही, इसके अलावा पैंतीस रुपये सेविंग्स बैंक में जमा करते हैं। मेरा ख्याल है, पच्चीस रुपये ही काफी हैं। मेरे कई दोस्त तो पाँच रुपये भी नहीं बचा पाते।'

'हमें उनकी नकल क्यों करनी चाहिए? हमें अपने साधनों के भीतर रहना चाहिए, और बचाना भी काफी चाहिए।' वह अक्सर कहती थी: 'अपने बुढ़ापे में हमें दूसरों से मदद नहीं माँगनी चाहिए। और, यह लड़की है जिसकी शादी के लिए हमें बचत करनी होगी।'

'हम और भी तो लड़के-लड़कियाँ पैदा करेंगे...' मेरे यह कहते ही उसने मेरा मुँह बंद कर दिया और बोली, 'तुम मर्द लोग...तुम्हें क्या परवाह... ईश्वर अगर तुम्हें भी बच्चे पैदा करने वाला बना दे, तो तुम्हें पता चले कि यह काम कितना मुश्किल है! और तुम्हारे वादे का क्या हुआ?' हम अक्सर बात करते थे कि लीला हमारी अकेली संतान होगी। और अगर कभी मैं मज़ाक में भी कुछ और कहता तो वह बहुत परेशान हो उठती थी।

हमारे भविष्य का पूरा ध्यान रखकर ही वह सारा खर्चा चलाती थी। घर में आने वाले हर रुपये पर वह कड़ी नज़र रखती थी, उसे आसानी से हाथ से निकलने नहीं देती थी, और उसकी कोशिश यही होती थी कि वह बैंक में पहुँच जाय।

लेकिन नौकरानी के कारण हमारा खर्चा दस रुपये महीने बढ़ जायेगा, जिसका हिसाब, उसके अनुसार, यह था: बुढ़िया की तनख्वाह छह रुपये—इससे एक पैसा भी ज्यादा देने को सुशीला तैयार नहीं हुई, कम से कम एक साल तक—और चार रुपये 'उसके द्वारा की जाने वाली बरबादी की कीमत—इससे कम तो होगा ही नहीं...', काफी दिन तक वह इस खर्च के खिलाफ रही—और एक दिन जब मैंने उससे कहा कि 'तुम फिक्र मत करो। जब परचे जाँचने के पैसे मिलेंगे तो सेविंग्स की पूरी रकम मैं तुम्हें दे दूँगा', तब वह इसके लिए तैयार हुई।

कुछ दिन बाद हम महसूस करने लगे कि बुढ़िया के बिना तो हमारा काम चल ही नहीं सकता। वह खाना बनाती थी, बच्ची की देखभाल करती थी और जब बच्ची को बुखार आ जाता था या पेट दर्द करने लगता और हमें समझ नहीं आता था कि क्या करें, क्या न करें, तो वह हमें दिलासा देती थी और इलाज भी बताती थी—बच्चों की तन्दुरुस्ती ठीक रखने की उसे बहुत सी तरकीबें आती थीं। लीला को वह प्यार भी बहुत करती थी और खुश रखती थी। वह हमारे लिए घर की बड़ी-बूढ़ी बन गई थी और हम उस पर निर्भर करने लगे थे। बच्ची को उसकी ज़िम्मेदारी में छोड़कर अब मैं सुशीला को महीने में दो-तीन दफ़ा सिनेमा दिखा लाता था, नदी पर घुमा लाता था और खरीदारी के लिए बाज़ार ले जाता था। सुशीला भी उसे बहुत चाहने लगी थी और उसे 'अम्मा' कहने लगी थी, जिसकी देखा-देखी लीला की भी वह अम्मा बन गई थी। लेकिन इसके लिए सुशीला को एक कीमत भी चुकानी पड़ गई थी—अब वह किचेन और स्टोर की मालकिन नहीं रही थी। बर्तनों में रखे सामान की ऊँचाई-नीचाई अब दूसरे ढंग से घटती-बढ़ती, जो उसके हिसाब से मेल नहीं खाती थी, और इसके लिए वह अम्मा से उलझती भी थी, लेकिन वह अपने ढंग से इन आपत्तियों के जवाब दे देती थी। कुछ दिन बाद सुशीला ने उससे कहना-सुनना बंद कर दिया। उसने कहा, 'मेरा ख्याल था कि यह कम से कम चार रुपये की बरबादी करेगी, लेकिन उतनी नहीं करती, तीन ही रुपये की करती है।' खाने-पीने के हमारे बजट में तीन रुपये का ही फर्क पड़ा था, लेकिन उसकी सेवाओं को देखते यह ज्यादा नहीं था;

वह दिन में एक ही दफा खाती थी, और वह भी थोड़ा-सा भात और छाछ। हमें ताज्जुब होता था कि इतना कम खाकर भी वह इतना काम कैसे कर लेती है! मेरी पत्नी अक्सर उसे ज्यादा खाने के लिए समझाती लेकिन उस पर कोई असर नहीं होता था।

मैं अपने कमरे में मेज़ पर बैठा था। बृहस्पत का दिन था और कालेज में भी उस दिन ज्यादा काम नहीं था—दोपहर बाद सिर्फ दो घंटे की क्लास, जिनके लिए तैयारी भी नहीं करनी थी। सीनियर क्लास को 'प्राइड एण्ड प्रिजूडिस' पढ़ाना था, सिर्फ पढ़कर सुनाना, व्याख्या के बिना। और एक निबंध की क्लास। हमेशा की तरह मैं कॉफ़ी पीने के बाद मेज़ पर बैठा सामने रखी किताबों और कापियों को उलट-पुलट कर देख रहा था। 'करने को कुछ नहीं है। कविता क्यों न लिखूँ? बहुत दिन हो गये कुछ लिखे...।' छह महीने में एक बार मेरी आत्मा ज़ोर मारती थी और कविता लिखने की याद दिलाती थी। इन क्षणों में मैं मेज़ की सबसे नीचे वाली दराज़ खोलता और उसमें से 500 पेज की एक सुन्दर जिल्दवाली नोट बुक निकालता था। कई साल पहले मैंने एक स्थानीय प्रेस में सात दिन लगाकर यह नोट बुक तैयार कराई थी। इसके सिल्क की तरह चिकने पृष्ठों में जीवन, प्रकृति और मानवता के संबंध में मेरे भाव दर्ज थे। विविध समय और विविध विषयों पर लिखे छोटे-छोटे टुकड़ों के अलावा इसमें एक लंबी कविता भी लिखी थी जिसे मैं महाकाव्य का रूप देना चाहता था, और जब भी मेरी आत्मा मुझे प्रेरित करती, मैं इसमें कुछ नई पंक्तियाँ जोड़ देता था। मैं हमेशा सोचता था कि मेरा जन्म कवि बनने के लिए ही हुआ है और किसी दिन मेरा काव्य संग्रह प्रकाशित होकर संसार को उलट-पुलट कर देगा। कुछ कविता मैंने अंग्रेज़ी में और कुछ तमिल में लिखी थीं। (मैं अभी यह तय नहीं कर पाया था कि अपनी रचनाओं से किस भाषा को शोभा प्रदान करूँ—लेकिन महत्त्व भाषा का उतना नहीं होता, जितना तत्व का होता है।) मैं पन्ने उलटकर पिछली रचनाओं को देखने लगा। आखिरी रचना कई महीने पहले लिखी गई थी, प्रकृति विषय पर। यह मुझे काफी संतोषजनक लगी, लेकिन यह सोचकर मुझे बहुत दुख हुआ कि इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कर सका। लेकिन आज मैं यह सारी क्षतिपूर्ति कर दूँगा। मैंने कलम उठाई, स्याही में उसे डुबोया, और सोचने लगा कि क्या लिखूँ। मैं पूरी तरह तैयार था लेकिन विषय समझ में नहीं आ रहा था। क्या विषय हो नई कविता का?

मेरी पत्नी चुपचाप मेरे पीछे आकर खड़ी हो गईं थी और कंधे के पीछे से सामने खुला पन्ना देख रही थी। जब मैं कलम हाथ में पकड़े सोच रहा था कि क्या लिखूँ, तो चुप्पी तोड़कर बोली, 'अच्छा, कविता लिखी जा रही है! लेकिन पन्ना तो खाली है...।' उसका प्रवेश मुझे अच्छा लगा। कहा, 'बैठ जाओ।' नोट बुक अलग रख दी और एक स्टूल उसके लिए आगे बढ़ा दिया। 'नहीं। मैं जा रही हूँ। तुम कविता लिखो, मैं डिस्टर्ब नहीं करूँगी। नहीं तो तुम भूल जाओगे कि क्या लिखना हैं।' मैं बोला, 'मैंने तो अभी सोचा भी नहीं कि क्या लिखना है।...लेकिन मैं चाहता हूँ कि यह पूरी नोट बुक भर डालूँ, फिर यह छपे और सारी दुनिया इसे पढ़े।' यह सुनकर उसने पूरी नोट बुक देखी और कहने लगी, 'यह तो हजार पन्नों की है, लेकिन अभी तक दस पेज ही लिखे गये हैं।'

'बात यह है कि मेरे पास लिखने के लिए ज्यादा विषय ही नहीं हैं,' मैंने अपनी परेशानी बताई। इस पर वह मेरे सामने आ गई और बोली, 'बताओ, मेरे ऊपर लिख सकते हो...'

'अच्छा विचार है,' मैं ज़ोर से बोला। 'चलो, पहले तुम्हें देखूँ।' मैं उसके सामने बैठ गया और ध्यान से उसे इस तरह देखने लगा जैसे कोई कलाकार या फोटोग्राफर काम शुरु करने से पहले अपने विषय को देखता है। फिर बोला, 'ज़रा-सा अपनी बायीं तरफ सरको। सिर दायीं तरफ घुमाओ। और सामने सीधे मेरी तरफ देखो...ठीक है। अब मैं तुम्हारे बारे में कविता लिख सकता

हूँ। अपनी सुंदर पलकें ज्यादा मत झपकाओ। नहीं तो मैं अपना काम भूल जाऊँगा। अरे, दाँत मत निकालो। बिलकुल ठीक! बिलकुल चुप होकर बैठी रहो, और देखो, मैं क्या लिखता हूँ।' मैंने नोट बुक निकाली, कलम उस पर रखी और तेज़ी से पूरा एक पेज लिख डाला, जिसकी शुरुआत थी:

जब वह पहली बार मेरी नज़र में उतरी
तो जैसे बह उठी खुशी की बयार
एक खूबसूरत, हलका-सा आभास
एक क्षण, एक मुहूर्त का अलंकार

इसके बाद तीस लाइनें थीं और अंत में था:

चेतना सी वह स्थिर, चमकदार
जैसे हो छाया देवता की निराकार

लिखते हुए मैं रुक-रुककर उसकी ओर देख लेता था और 'वाह! बढ़िया है! अब सुनो।' कहता जाता था।

'तुम कितनी जल्दी लिखते हो...,' उसने आश्चर्य व्यक्त किया।

'और कितना अच्छा लिखता हूँ। अब पूरी सुन लो।' यह कहकर मैंने धीरे-धीरे पढ़ना शुरू किया, जैसे अपनी कक्षा में पढ़ रहा हूँ, और व्याख्या भी करता गया।

'मुझे नहीं पता था, इतना अच्छा लिखते हो!'

'अफसोस की बात है कि तुमने अब तक मुझे नहीं जाना। अब गलती मत करना।' मैंने कहा। 'और सुनो, 'गोल्डन ट्रेज़री' में 150 और 200 नंबर पेजों के बीच कभी मत देखना। वर्ड्सवर्थ नामक किसी ने ऐसी ही कविताएं लिखी हैं।' यह जैसे उसे इन्हीं पेजों को देखने का निमंत्रण था। वह दौड़कर 'गोल्डन ट्रेज़री' की अपनी प्रति उठा लाई और एक-एक पेज पलटकर इन पेजों को देखने लगी। आखिर उसे मूल कविता मिल ही गई। उसे पूरी पढ़कर वह बोली, 'तुम्हें इस तरह नकल करने में शरम नहीं आई?'

'नहीं,' मैंने जवाब दिया। 'मेरी कविता वह नहीं है। उसने किसी और के लिए लिखी थी, मैंने किसी और के लिए...।'

'मैं ऐसा काम कभी नहीं करूँगी।'

'मुझे तो तुम्हारी याद्दाश्त पर शर्म आ रही है। तुम्हारे पास सालों से थी यह किताब और फिर भी मेरी कविता बिना पहचाने सुनती रहीं। अगर तुम मेरी छात्रा होतीं तो मैं तुम्हें सौ में से दो से ज्यादा नंबर नहीं देता।'

इसी वक्त मेरी घड़ी अचानक बजने लगी और हमारी बातचीत में उसने विघ्न डाल दिया। वह इतना ज्यादा शोर करने लगी कि समझ में नहीं आता था कि क्या करें। सुशीला ने उसे उठा लिया और बंद करने की हर संभव कोशिश की लेकिन कामयाबी नहीं मिली। फिर मैंने टाइन की किताब से उसका गला दबाया, तो चुप हो गई।

'यह अचानक क्यों बज उठी?' सुशीला ने सवाल किया। मैंने गर्दन हिलाकर कहा,' अपनी खुशी के लिए।' वह घड़ी का चेहरा घूरकर देखती रही, फिर बोली, 'यह तो टाइम भी ठीक नहीं दे रही। दो बजा रही है, चार घंटे ज्यादा। इसे मेज़ पर रखते ही क्यों हो?' मैं कोई जवाब नहीं दे पा सका। फिर बोला, 'चूकि यह सालों से मेरे साथ है। बेचारी!'

'आज शाम को मैं इसे बेच दूँगी—कबाड़ी रोज़ आता है।'

'नहीं, नहीं। यह हरगिज़ मत करना...,' मैंने चेतावनी के स्वर में कहा। वह कुछ नहीं बोली, फिर बुदबुदाने लगी, 'यह पहली दफ़ा नहीं है। जब तुम यहाँ नहीं होते और मैं घंटों पालना झुलाकर बच्ची को सुला देती हूँ, तब अचानक टनटना उठती है, और समझ में नहीं आता कि कैसे बंद करूं। यह हमारे लिए ठीक नहीं है। बड़ी परेशानी है...'

उस शाम जब मैं घर लौटा तो देखा कि कमरा बिलकुल बदला हुआ है। मेज़ बिलकुल साफ-सुथरी चमक रही थी और किताबें करीने से लगी थीं। जैसे कोई जंगली बदलकर सभ्य बन गया हो। कोने में जहाँ अखबार और पत्रिकाएं भरी रहती थीं, वह भी साफ हो गया था। उनका ढेर वहाँ से गायब था। मेज़ पर घड़ी भी नहीं थी। उसके बिना मेज़ सूनी हो गई थी। सालों से वह यहीं रखी रहती थी। कापियाँ बगल में दबाये मैं सुशीला को ढूँढ़ने चला। वह बाथरूम में बच्ची के हाथ धुला रही थी। 'मेरी घड़ी का तुमने क्या किया?' मैंने पूछा। जवाब देने की जगह उसने भी सवाल किया, 'तुम्हें अपना कमरा कैसा लगा? मैंने उसे साफ कर दिया है। कितना कूड़ा-कचरा 'जमा हो गया था! अब हर बृहस्पत को...।

'पहले मेरी बात का जवाब दो। घड़ी कहाँ है?'

'ज़रा देर रुको। मैं बच्ची का काम कर लूँ, फिर जवाब दूँगी।'

मैं सामने खड़ा होकर इन्तज़ार करने लगा। बच्ची को बाँहों में लिये वह बाहर आई। मेरी बगल से गुज़रते हुए उसने बच्ची का हाथ पकड़ कर मेरे मुँह से छुआया और आगे बढ़ गई। बाद में मेरे कमरे में आकर, जहाँ मैं मेज़ पर सिर झुकाये बैठा था, मुझसे मिली।

'तुमने अभी तक नाश्ता क्यों नहीं किया और नहाये भी नहीं', उसने मुझे पीछे से छूकर पूछा।

'मुझे नाश्ता नहीं चाहिए', मैंने गुस्से से कहा।

'नाराज़ क्यों हो रहे हो?' उसने पूछा।

'तुमने घड़ी कहाँ डाल दी है?'

'मैंने कहीं फेंका नहीं है उसे...कबाड़ी को दी है, उसने बारह आने दिये घड़ी के... उम्मीद से कहीं ज्यादा।'

'तुम जो चाहे करती हो...', मैं बोला। फिर कोने की तरफ देखकर कहा, 'ये कागज़ भी बेच दिये सब...इनमें पुरानी इम्तहान की कापियाँ भी थीं।'

'हाँ, मैंने देखा था,' वह बोली। 'लेकिन वे चार साल पुरानी थीं। इनकी तुम्हें क्या ज़रूरत थी?' मैं बहुत गुस्से में था। 'तुम्हें मेरी कोई भी चीज़ छूने की ज़रूरत नहीं है।... मुझे न नाश्ता चाहिए न कॉफ़ी।' यह कहकर मैंने कोट उठाकर पहना और घर से बाहर निकल गया। वह पीछे से पूछती ही रही, 'अरे, जा कहाँ रहे हो?'

मैं सीधा कॉलेज आया। यहाँ कोई नहीं था। मेरा दिमाग़ काम नहीं कर रहा था। डिबेटिंग रूम में झाँककर देखा, शायद वहाँ कोई हो। लेकिन उस दिन वहाँ भी कोई कार्यक्रम नहीं था। मुझे याद आया कि मैंने कॉफ़ी तक नहीं पी है। फिर बरांडे में चक्कर लगाता बाहर आया और चपरासी से कहा कि कॉमन रूम खोल दे। फिर उससे कहा कि रेस्त्राँ से कॉफ़ी और कुछ खाने के लिए ला दे। फिर अपना लॉकर खोलकर लड़कों की कापियाँ निकालीं। रात को देर तक उनमें संशोधन करता रहा। कॉलेज की घड़ी ने नौ बजाये। अब मैं उठा और घर की तरफ बढ़ा। इस तरह चलता रहा जैसे कोई खास बात न हुई हो। घर पहुँचकर कोट उतारा और तेज़ी से नहाने चला गया। फिर निकलकर पत्नी के कमरे में झाँका। वह बच्ची का पालना झुला रही थी। फिर किचेन में गया और अम्मा से पूछा, 'सबने खाना खा लिया?'

उसने जवाब दिया, 'सुशीला साढ़े आठ बजे तक इन्तज़ार करती रही।'

मैं उसका नाम नहीं सुनना चाहता था। चिढ़कर बोला, 'ठीक है, ठीक है। मुझे खाना दे दो। मैं सिर्फ यह जानना चाहता था कि बच्ची ने खाया या नही।' यह मैंने इसलिए कहा कि वह भी समझ ले कि सुशीला में मुझे कोई रुचि नहीं है।

मैं चुपचाप खाना खाता रहा। कुछ देर बाद उसके पैरों की आवाज़ सुनाई दी। 'वह आ रही है,' यह सोचकर मैं घबरा उठा, वह कहीं और न चली जाए। लेकिन वह डायनिंग रूम में ही घुसी, मैंने तिरछी नज़र से देख लिया। मैं सिर झुकाये चुपचाप खाता रहा, हालांकि देख रहा था कि हमेशा की तरह वह सामने खड़ी है— यह देखने के लिए कि मुझे ठीक से परसा गया है या नहीं। फिर वह किचेन के भीतर गई, अम्मा से कुछ कहा और लौटकर अपने कमरे में वापस चली गई। अब मुझे और गुस्सा चढ़ा। उसे मेरी परवाह नहीं है। परवाह होती तो घड़ी क्यों बेच देती? मैं उसे अच्छा सबक सिखाऊँगा।

खाना खाकर मैं अपने कमरे में आ गया और मेज़ पर बैठ गया। सारी ज़िंदगी में इतना पढ़ाकू मैं कभी भी नहीं हुआ था। कुछ निबंध की कापियाँ निकालीं। मैंने देखा कि मेज़ के एक कोने में कागज़ का एक पैकेट रखा हुआ है। उसमें कुछ सिक्के थे; कागज़ पर उसने लिखा था:

घड़ी: बारह आने
कागज़: एक रुपया
योग: एक रुपया बारह आने

यह देखकर मैं भड़क उठा। सिक्के उठाये और उसके कमरे में जा पहुँचा। कमरे की बत्ती बुझा दी गई थी। दरवाज़े पर खड़े होकर बुदबुदाया, 'ये पैसे मुझे नहीं चाहिए,' और पैसे उसके बिस्तर पर फेंककर अपने कमरे में लौट आया।

कुछ देर बाद जब मैं कापियों पर काम कर रहा था, मैंने रात की उस शांति में सुबकने की आवाज़ सुनी। मैं उठा, उसके कमरे में गया, और देखा कि दीवार से लगी वह रो रही है। यह देखकर मैं काँप उठा। इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी। एक क्षण मैं उसे देखता रहा, फिर पास जाकर बोला, 'इतनी बड़ी गलती करके अब रोने से क्या फायदा!' उसने सुबकते हुए ही जवाब दिया, 'मुझे क्या पता था कि इतनी टूटी-फूटी घड़ी से तुम्हें इतना प्यार है?' अब वह फफक-फफक कर रोने लगी। मैं एकदम घबरा गया। इधर मैं खुद भी परेशान था। अब मैं यह चाहता था कि उसे बाँहों में भर लूँ और सांत्वना दूँ, लेकिन घमंड यह नहीं करने दे रहा था। इसलिए मैं बोला, 'अगर तुम सामान्य आदमी की तरह बात करो, तो मैं भी बात करने को तैयार हूँ। यह सब नाटक मुझे पसंद नहीं है।'

'अपने कमरे में वापस जाओ। आधी रात को मुझे डाँट-फटकार क्यों रहे हो?'

'अच्छा, अब चुप हो जाओ, नहीं तो पड़ोसी कहेंगे कि इस घर में दो पागल रहते हैं...।'

यह कहकर मैं कमरे में लौट आया—इससे ज्यादा मैं क्या कह सकता था। चटाई पर लेटकर रात-भर सोने की कोशिश करता रहा।

अगले अड़तालीस घंटे तक हम दोनों एक-दूसरे से अलग, अपरिचित-से बने रहे। बच्ची भी चुपचाप यह तमाशा देखती रही और खिलौनों से अपना मन बहलाती रही—या दादी के पास बनी रही।

अब बरदाश्त करना कठिन हो रहा था। मैं सोचता था कि सुशीला बात खत्म करने के लिए पहल करेगी और मैं तुरंत मान जाऊंगा। लेकिन वह अपने कमरे में ही बनी रही और अपने ही कामों में लगी रही, जैसे घर में कोई और है ही नहीं। मेरी नज़र कभी-कभी उस पर पड़ जाती तो पाता कि उसकी आँखें सूज गई हैं। फिर जब मैंने उसे बाथरूम से कमरे में वापस जाते देखा तो उसकी गर्दन एकदम झुकी हुई थी—और मुझे उस पर तरस आने लगा। मैं उसकी इस हालत के

लिए अपने को दोष देने लगा। कितना निर्दय था मैं! लेकिन अब मैं खुद कुछ कह नहीं सकता था। बच्ची भी मदद करने लायक नहीं थी, वह अपने खिलौनों में डूबी रहती थी। अंत में यह हालत हो गई कि मैं और ज्यादा सहन कर ही नहीं सकता था। दूसरे दिन शाम को घर पहुँचा तो मैं उसके पास जा पहुँचा और बोला, 'आज पिक्चर देखने चलते हैं।'

'कौन सी पिक्चर?' वह बोली।

'टार्ज़न—वैरायटी हॉल में। तुम्हें बहुत अच्छी लगेगी।'

'और बेबी?'

'अम्मां उसे देख लेगी। हम नौ बजे तक लौट आयेंगे। तैयार हो जाओ...।' मैं यह भी कहना चाहता था, 'बढ़िया कपड़े पहनना', लेकिन चुप रह गया, और कहा, 'अभी काफी टाइम है। जल्दी करने की जरूरत नहीं है।'

'ठीक है, मैं दस मिनट में तैयार होती हूँ...,' यह कहकर वह उठ गई।

सिनेमा देखकर जब हम हॉल से बाहर निकले, तब हमारे व्यवहार में इतना परिवर्तन आ चुका था, हम एक-दूसरे में इतने घुलमिल चुके थे, और एक-दूसरे के विचारों और रुचियों को इतना ज्यादा सही और शानदार मानने लगे थे, कि समझ में नहीं आ रहा था कि इतने दिन हमने एक-दूसरे से इतना बुरा व्यवहार क्यों किया। उसने कहा, 'मैंने सोचा कि एक नई, बढ़िया घड़ी खरीद ली जाये, इसलिए उसे बेच दिया।'

'तुमने बहुत ही अच्छा किया,' मैंने कहा। 'हॉस्टल में भी पड़ोसियों को यह घड़ी बहुत तंग करती थी। मुझे खुशी है कि तुमने उससे निजात पा ली।

'आजकल तो बहुत अच्छी और खूबसूरत घड़ियाँ बनने लगी हैं,' उसने उत्साह से कहा।

'हाँ, हाँ, मुझे पता है। कल शाम को ही चलकर खरीद लायेंगे,' मैंने भी उसी जैसा उत्साह दिखाते हुए जवाब दिया।

घर लौटकर हमने तय किया कि अब किसी भी बात पर कभी नहीं लड़ेंगे, क्योंकि, लोग कहते हैं कि ऐसे झगड़ों का बच्चों की सेहत पर बुरा असर पड़ता है।

3

बच्ची की तीसरी सालगिरह के दिन मेरे पिता का मुझे पत्र मिला कि अगर मैं मालगुड़ी में अपना मकान बनवाना चाहूँ या कोई मकान खरीदना चाहूँ, तो वे मुझे रुपया उधार देने को तैयार हैं। उनका सोचना था कि ज्यादा दिन तक किराये के मकान में रहते रहना ठीक नहीं है। उनके इस सुझाव से हम बहुत खुश हुए। अब हम दोनों साथ बैठकर घंटों बात करते कि अपने लिए खुद मकान बनवाना ज्यादा अच्छा रहेगा या बना-बनाया खरीद लेना। मैं कहता, 'उसमें मेरा एक कमरा सिर्फ कविता लिखने के लिए होना चाहिए।'

उसने सवाल किया, 'यानी ऐसी जगह जहाँ तुम मुझसे दूर रह सको...। तुम साफ बात क्यों नहीं करते?'

'नहीं, नहीं, यह बात बिलकुल नहीं है,' मैं जवाब देता।

'मैं भी तुम पर अपने को लादना बिलकुल नहीं चाहती। मुझे भी अपना एक अलग कमरा चाहिए', उसने बात आगे बढ़ाई।

इस पर मैंने कहा, 'अगर यह बात है तो मुझे अपने लिए अलग कमरा नहीं चाहिए। क्यों चाहिए हम दोनों को अलग-अलग कमरे?'

बच्ची ध्यान से हमारी बातें सुन रही थी। वह बोली, 'आप लड़ रहे हैं?' फिर मेरी तरफ मुड़कर कहने लगी, 'आप मम्मी को हमेशा डाँटते रहते हैं।' यह सुनकर मैं एकदम चुप हो गया।

हमने तय किया कि अगले इतवार को लॉली एक्सटेंशन जायेंगे और मकान या ज़मीन देखेंगे।

उस दिन सवेरा होते ही हम तैयार होकर चल पड़े। अम्मा पिछली शाम किसी से मिलने चली गई थी। जब तक सुशीला नहाती-धोती और कपड़े पहनकर तैयार होती, तब तक मुझे कॉफ़ी के लिए पानी गरम करना था। मैं आग के सामने बैठा धुएँ से आँसू बहा रहा था, कि सुशीला एकदम तरोताज़ा, नीली साड़ी पहने, लंबे बाल और चमेली की खुशबू से भरी मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। मैं उसकी साड़ी को देखकर धीरे से मुस्कराया। उसने यह देख लिया और बोली, 'क्यों हँसे?'

'कुछ नहीं,' यह कहते हुए मैं रुका, मेरी आवाज़ भी बदल-सी गई थी। 'इस साड़ी में क्या खराबी है। यह भी दूसरी साड़ियों की तरह है,' वह बोली।

'हाँ, हाँ,' मैंने जवाब दिया। इसलिए मैं कहता हूँ कि इसे कम पहना करो, जिससे यह ज़रा ज्यादा दिन चल सके...।' यह सुनकर वह खुशी से चमक उठी और उसकी चमेली की खुशबू चारों ओर बिखर गई।

'देवी लगती है,' मैंने उसकी लंबी, छरहरी आकृति को देखकर सोचा।

जब वह पहली बार मेरी नज़र में उतरी,
तो जैसे बह उठी खुशी की बयार—

—ये पंक्तियाँ अपने आप मेरे दिमाग़ में तैर गई, वर्ड्सवर्थ की पंक्तियाँ— जो अंग्रेज़ी के अध्यापकों की आदत बन जाती है। पानी उबलने लगा था और उसके ऊपर रखी तश्तरी ऊपर नीचे हो रही थी।

किचेन में चारों तरफ कोयला, जली हुई माचिसें और दूसरी चीज़ें बिखरी हुई थीं। धुआँ ऊपर हवा में तैर रहा था। मैंने कॉफ़ी उठाई और उसे सूँघा। 'पाँच चम्मच कॉफ़ी पाउडर और दो गिलास पानी....ठीक है न?' मैंने पूछा। लेकिन उसने मुझे वहाँ से हटा दिया और बोली, 'अब तुम तैयार हो जाओ। यह सब मैं करती हूँ।'

मैं चला गया और आधे घंटे में तैयार होकर वापस लौटा। उसने मुझे कॉफी का प्याला दिया। नौकरानी आ गई थी। सुशीला ने एक गिलास में दूध भरकर बाहर तिपाई पर रख दिया और उससे कहा, 'बेबी जग जाय तो पिला देना। पूरा गिलास पिलाना। जब तक अम्मा न आ जाय उसकी देखभाल करना। अम्मा आठ बजे तक आ जायेगी, बेबी से कहना कि मैं उसके लिए खिलौने और बिस्कुट लाऊँगी...।'

फिर उसने सोती हुई बच्ची पर नज़र डाली, चादर से उसे ऊपर तक ढक दिया और कहा, 'इसके पास ही बैठना। नहीं तो यह उठते ही रोने लगेगी।'

घर से बाहर निकले तो बोली, 'हमारे पीछे बेबी...।'

'अब यह फिक्र छोड़ो। उसे कुछ नहीं होगा। इस तरह उसकी चिंता करोगी तो वह बिगड़ जायेगी। उसे आज़ाद रहना भी सीखने दो...।' पत्नी यह सुनकर मुस्करा दी। 'मैं जानती हूँ कि अम्मा के साथ वह खुश रहेगी। लेकिन उसे समय पर आ जाना चाहिए।'

सवेरे की ताज़ी हवा चल रही थी। मैंने गहरी साँस लेकर उसे फेफड़ों में भरा और कहने लगा, 'जानती हो, हॉस्टल के दिनों में मुझे नदी किनारे सैर करना कितना पसंद था... तब वातावरण में एक जादू होता है...।' मैं बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित था। उगता हुआ सूरज, ठंडी ताज़ी हवा, और साथ में पत्नी—कितनी सुंदर लग रही थी...एक तरह की अलौकिक छवि—लंबा, सुडौल शरीर, झुटपुटा रंग, हीरे की छोटी-छोटी बालियाँ...चमेली, चमेली... 'अब मैं हमेशा तुम्हें चमेली कहकर पुकारूँगा', मैं बोला, 'न जाने कब से यह बात कहना चाह रहा हूँ...।'

उसने मेरी तरफ एक मुस्कान फेंककर चेतावनी दी, 'यह आम सड़क है, यहाँ अपनी चुहलबाज़ी पर लगाम लगाये रखना...।' उसकी आँखें हमेशा हँसती रहती थीं, उनकी मुस्कान कभी खत्म नहीं होती थी। 'आत्मा आँखों के भीतर से हँसती है, शरीर होंठों के माध्यम से...।' मेरी यह टिप्पणी सुनकर वह पूछने लगी, 'क्या कहा?' तो मैंने जवाब दिया, 'कुछ भी नहीं कहा।'

'मैं फिर याद दिलाती हूँ कि हम आम सड़क पर चल रहे हैं।'

'मैं जो कह रहा हूँ, उसे मैं सार्वजनिक मंच पर भी कह सकता हूँ।' अब हम मार्केट रोड पर आ गये थे। सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था। बाज़ार खुलने लगा था।

गुज़रते हुए लोग हम पर एक नज़र डालते और आगे बढ़ जाते। कुछ छात्र भी मिले जिन्होंने 'नमस्ते' की।

'मेरे छात्र हैं, बहुत अच्छे हैं...।' वह बोली, 'ज़रूर होंगे...तुम्हें नमस्ते जो करते हैं।'

अब हम बंबई आनंद भवन के सामने थे। यह रेस्तराँ था। 'अंदर चलें?' उसने पूछा। मैं यह सुनकर खुश हुआ। हम भीतर गये। अँधेरे-से हॉल में बहुत से लोग कॉफ़ी पी रहे थे। वातावरण में बर्तनों की आवाज़ और हलका शोर गूँज रहा था। सब लोग घूम-घूमकर हमें देखने लगे; एक औरत, खास तौर पर इस समय, जो अजब-सी बात थी। मुझे कुछ संकोच हो आया, लेकिन वह आगे बढ़कर हॉल के बीच में जाकर खड़ी हो गई,— अब किधर जाना है? एक वेटर हमें देखकर सामने आया। 'अरे मणि,' उसे देखकर मैं बोला। इसे मैं जानता था, मलाबार का एक लड़का, सालों से मुझे कॉफ़ी पिला रहा था— उसे देखकर मुझे गर्व-सा हुआ।

मणि बोला, 'मेरे साथ आइये, ऊपर फैमिली रूम है।' हम उसके पीछे चले। ऊपर एक ही

कमरा था, जिसमें मार्बल से मढ़ी एक लकड़ी की मेज़ और चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। दीवारों पर कई रंग के टाइल लगे थे।

'ये पत्थर बहत खूबसूरत लग रहे हैं,' मेरी पत्नी ने खुश होते हुए उन पर अपनी उंगलियाँ फिराईं, 'कितने चिकने हैं!'

'तुम्हें मालूम है, सभ्य घरों में सिर्फ बाथरूम में इन्हें लगाया जाता है? इन्हें बाथरूम टाइल्स ही कहते हैं।'

'कितने अच्छे हैं ये! हम भी इन्हें अपने बाथरूम में लगायेंगे।'

'तुम्हारा ख्याल है कि वे बाथरूम भी हमारे जैसे ही होते हैं?'

'बाथरूम जैसे भी हों, बाथरूम ही रहेंगे', उसने उत्तर दिया।

'नहीं, उनके बाथरूम हमारे बाथरूमों की तरह, धुएं से भरे, गीले, पानी टपकने वाले नहीं होते।'

'मैं तो अपना बाथरूम बहुत साफ-सुथरा रखती हूँ, फिर भी तुम्हें अच्छा नहीं लगता,' वह बोली।

'मेरा मतलब यह नहीं है।'

'नहीं, यही था तुम्हारा मतलब।' मैं बहस करके यह सुबह खराब करना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने फौरन हथियार डाल दिये और कहा, 'अच्छा बाबा, मुझे माफ़ करो और भूल जाओ।'

'ठीक है।' यह कहकर उसने अपने हाथ पीछे किये और दीवार को छूकर बोली, 'मुझे ये टाइल बहुत अच्छे लग रहे हैं। जब हमारा अपना घर होगा तब तुम भी ऐसे ही दीवारों पर लगवाओगे?'

'ज़रूर लगवाऊँगा, लेकिन हॉल में नहीं, क्योंकि आम तौर पर इन्हें बाथरूम में ही लगाया जाता है।'

'वहाँ भी लगायें तो क्या बुराई है। जो लोग इन्हें बाथरूम में लगाना चाहें, वहाँ लगायें, जो और जगह भी लगाना चाहें, वे वहाँ भी लगायें।'

इसी समय मणि खाने-पीने की प्लेटें लेकर भीतर आया। 'अरे, कितनी जल्दी ले आया!' वह बोली। बंबई आनंद भवन में वह आज पहली बार आई थी। इसकी विशालता देखकर वह दंग रह गई थी। उसकी आँखें बच्चों की तरह चमकने लगी थीं।

वह चम्मच से खाने की कोशिश कर रही थी। उसने चम्मच मुँह से दूर रखकर खाना भीतर डाला तो मैंने कहा, 'अगर इससे खाना मुश्किल होता है तो अलग रख दो।' उसने प्याज़ की बू के लिए मुँह बनाया, 'मुझसे यह बरदाश्त नहीं होती—।' 'मैं जानता हूँ... मैं तो भूल ही गया।' मुझे पता था कि प्याज़ उसे पसंद नहीं है, फिर भी उसकी प्लेट में प्याज़ न जाय, वेटर से यह कहना भूल ही गया था। मैंने उसे बुलाकर कहा, 'यह प्लेट हटा लो। इनके लिए बिना प्याज़ की दूसरी प्लेट ले आओ...।' मैंने इस तरह व्यवहार किया जैसे मैं उसका विशेष ख्याल कर रहा हूँ। उसकी सादगी और बेचारगी मुझे भीतर तक छू गई। 'मैं तुम्हारे लिए बहुत बढ़िया चीज़ मँगवा रहा हूँ,' यह कहकर मैंने वेटर को विस्तार से आदेश दिये। उसने कहा, 'कुछ मीठी, पीने की रंगीन चीज़ भी मँगाना। 'मैंने सोचा, उसका स्वाद भी बच्चों वाला ही है। मैंने उससे इतनी पूछताछ की कि वह कहने लगी, 'अब मुझे खा लेने दो', और इस वक्त भी उसकी आँखें नाच रही थीं। फिर वह बोली, 'बच्ची के लिए भी कुछ ले चलें?' लेकिन मैं उसे होटल की बनी चीज़ें खिलाना नहीं चाहता था, इसलिए कूटनीति से काम लेते हुए कहा, 'उसके लिए बाज़ार से बढ़िया-से बिस्कुट ले लेंगे। उसे बिस्कुट पसंद भी हैं।'

घंटे-भर बाद हम होटल से बाहर निकले।

मैंने कहा कि लॉली एक्सटेंशन के लिए गाड़ी कर लें, तो उसने पैदल चलना ही पसंद किया। बोली कि नदी के किनारे पैदल चलने से फायदा भी होगा। मैंने कहा, 'लेकिन लॉली एक्सटेंशन तो दक्षिण की तरफ है और नदी शहर के उत्तर में है। और हम किसी काम से जा रहे हैं, घूमने नहीं।'

'नहीं, नदी पर भी चलेंगे,' उसने मिन्नत की। 'मैं उसके जल में पैर धोना चाहती हूँ।' मैं उसकी हर इच्छा पूरी करने के मूड में था। इसलिए उसकी बात मान गया, हालांकि इसके लिए दो मील और पैदल चलना होगा।

नदी किनारे चलना बहुत सुहावना था। वह पानी में पैर डालकर बैठी, बरगद के नीचे आराम किया और बालू के ढेर बनाये और बोली, 'बेबी को भी हम लाते तो वह भी इस सबसे कितनी खुश होती।' वह तो बालू में लोटती ही रहती। 'लेकिन हमें सावधान रहना पड़ता, कि पानी से दूर रहे।'

मैं उसकी तरफ देखकर बोला, 'तुम्हें पता है, जब मैं हॉस्टल में था, यहीं सवेरे आकर टहलता था... तब मैं बहुत तड़के उठ जाता था...।'

'तुम अब भी यह कर सकते हो... कहीं तुम यह तो नहीं सोचते कि मेरी वजह से तुम्हारी यह सैर बंद हो गई?' वह बोली। मैं हँसा, 'अब यह इतना ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं लगता— और कोई बात नहीं। जब तक मैं यह सब करता था और अच्छा भी था यह, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि अब भी वह करते रहा जाय।'

जब वापस चलने को हुए तो मैंने कहा, 'कभी हम पूरे देश की यात्रा पर जायेंगे। मैं तुमको साथ ले चलूँगा।'

'वादा करते हो?'

'बिलकुल,' मैं बोला, 'और अगर जो किताबें मैं लिखना चाहता हूँ, उनसे काफी पैसा कमा सका, तो हम इंगलैंड और यूरोप भी घूमने जायेंगे।'

'और बच्ची?'

'वह तब तक बड़ी हो जायेगी', मैंने जवाब दिया।

'उसे दादा-दादी के पास छोड़ जायेंगे। लेकिन तुम्हें सब कुछ दिखाना है।' मैं कल्पना में देखने लगा कि वह ताजमहल के संगमरमर को छूकर कैसी खुश हो रही है, बर्फ से लदे हिमालय को देखकर कितनी अभिभूत है, और यूरोप के शहरों की विशालता और भीड़ से कितनी चकित है।

नदी की सैर के बाद हम गाड़ी पर बैठकर लॉली एक्सटेंशन गये। जब वहाँ उतरे तो वह थकी लग रही थी। उसका चेहरा लाल था। 'यहाँ कुछ पैदल चलना पड़ेगा,' मैंने कहा, तो वह बोली, 'तुम समझते हो मैं चल नहीं सकूँगी,' और यह कहकर आगे चल पड़ी।

लॉली एक्सटेंशन शहर का सबसे दक्षिणी हिस्सा था, जहां योजनापूर्वक बने रिहायशी मकान थे, साफ-सुथरी सड़कें और शानदार चौराहे थे। दरअसल यह शहर का आखिरी हिस्सा था, जहाँ से त्रिची के लिए सड़क निकल जाती थी, जिसके दोनों तरफ घने, छायादार पेड़ लगे थे। एक समय था जब यहाँ ज्यादा आमदनी वाले लोगों के ही घर थे, लेकिन पाँच साल पहले एक नई स्कीम के तहत यह हिस्सा और बड़ा कर दिया गया था, और तब से यह बढ़ता ही जा रहा था। यहाँ के मकानों और प्लाटों की माँग बढ़ती ही जा रही थी, क्योंकि यहाँ खाली मैदानों को पार करके दक्षिणी हवा सीधी चली जाती थी, और सौंदर्य की दृष्टि से भी यह हिस्सा बहुत

अच्छा था, और बढ़ती हुई इमारतों से अनाज के खेत लगातार खत्म होते जा रहे थे। यहाँ से मुझे साइकिल से स्कूल जाना पड़ा करेगा, लेकिन कोई बात नहीं। यहाँ का दृश्य और आबोहवा दोनों बहुत अच्छे हैं, जैसे शहर में कहीं भी नहीं हैं।' मुझे बड़ा उत्साह हो आया। मेरे मित्र, तर्कशास्त्र विभाग के शास्त्री ने, मुझे मकान ढूँढ़ने में सहायता करने को कहा था। वह दरअसल यहाँ की बिल्डिंग सोसाइटी का मंत्री और इलाके के विस्तार का प्रभावी प्रचारक भी था। कोई भी यह नहीं विश्वास कर पाता था कि तर्कशास्त्र जैसे खुश्क विषय का यह अध्यापक व्यापार में इतना कुशल होगा। वह बड़ा विलक्षण व्यक्ति था— एक तरफ तो 'ज्ञान की परिभाषा', 'अवतरित मध्यमान' और 'न्यायवाक्य' जैसे तत्वों का समीक्षक और दूसरी और नयी व्यावहारिक योजनाओं का जनक। न्यू एक्सटेंशन में उसने ही पहली बिल्डिंग बनवाई थी, इसके बाद कुछ लोगों को जोड़कर उसने एक कंपनी बना ली और इस पूरे इलाके के निर्माण में लग गया।

हम शास्त्री के घर जा पहुँचे। काफी बड़े क्षेत्र में यह एक छोटा सा बंगला था। जिसके इर्द-गिर्द ढेर सारे पेड़ लगे थे। शास्त्री-भूरे बालों वाला दुबला-सा आदमी—एक पेड़ के नीचे बैठा उसकी जड़ें खोद रहा था।

'हलो, शास्त्री,' मैं ज़ोर से बोला, 'माफ़ करना, मुझे देर हो गई, लेकिन उसके लिए मेरी देवी जी ज़िम्मेदार हैं। 'हाथों की मिट्टी झाड़ते हुए शास्त्री मेरे पास आया।

'अच्छा हुआ, तुम इन्हें भी साथ ले आये। मुझे शिकायतें मिलती रहती हैं कि तुम इन्हें घर से निकलने नहीं देते', उसने हँसते हुए कहा।

'अरे, घर छोटी बच्ची का इन्तज़ाम करना पड़ता है', मैंने जवाब दिया।

'उसे भी ले आते।'

'यह ज़रा मुश्किल होता है,' यह कहकर मैं उसे साथ लाने की परेशानियों की कल्पना करने लगा—उसकी सुरक्षा, हर वक्त उसी पर ध्यान, वगैरह वगैरह, 'पापा, मुझे गोद में ले चलो।' 'पापा, अब मुझे उतार दो, मैं खुद चलूँगी'। 'अब मैं भूखी हूँ।' 'मैं यह नहीं खाऊँगी'...।

'उसे लाना आसान नहीं होता,' मैंने फिर कहा।

'लेकिन क्यों?' तर्कशास्त्री ने सवाल किया।

'बात यह है,' मैंने कहना शुरु किया, फिर यह सोचकर चुप हो गया कि यह बिना बच्चे वाला आदमी इन उलझनों को कैसे समझ पायेगा। इसलिए मैंने बात का विषय ही बदल दिया, 'अब हमें कोई अच्छा-सा मकान दिखाओ।'

'आओ, बात करते हैं,' यह कहकर वह हमें अंदर ले गया और वरांडे में एक टूटी-सी बेंत की कुर्सी पर ला बिठाया, जो पीछे मेरी पीठ में चुभने लगी। फिर बोला, 'तुम्हें बना-बनाया मकान ही चाहिए? क्यों नहीं ज़मीन खरीद लो और अपनी पंसद का बनवा लो। मैंने तुम्हारे लिए एक बढ़िया जगह देख रखी है।'

'अरे नहीं, मुझे मकान बनाने की कोई जानकारी नहीं है। और इतने दिन ईंट-गारे का खेल देखना भी मेरे लिए संभव नहीं है।'

'वह सब तुम मुझ पर छोड़ देना,' वह बोला। 'मैं बनवा दूँगा।' यह काम उसने बीसियों लोगों के लिए किया था और कई का कहना था कि तर्क पढ़ाने से ज्यादा वह इससे कमाई करता है।

'मैं इन्तज़ार भी नहीं कर सकता। इतना धीरज मुझमें नहीं है।' मैंने कहा, 'मुझे तो जब मैं सोचूँ, तभी मकान मिल जाना चाहिए।'

'तो फिर ठीक है। मैं तुम्हें कुछ मकान दिखाऊँगा। उनमें से कोई पसंद आ जाय तो बताना। न आये तो मेरा पहला सुझाव मान लेना।' उसने नौकर भेजकर ठेकेदार को बुलवाया। एक

काला-सा आदमी, बड़ी-बड़ी मूँछें और लंबे से हाथ। शास्त्री ने पूछा, 'स्वामी, वे मकान आज देखे जा सकते हैं?'

'हाँ, क्यों नहीं! मैं लड़के को भेजता हूँ कि उन्हें खोलकर इन्तज़ार करे।' यह कहकर उसने एक लड़के को भेज दिया।

शास्त्री की पत्नी ने हमें लेमन स्क्वैश पिलाया, जिससे हम तरोताज़ा हो गये। सुशीला में भी चलने की शक्ति आ गई।

शास्त्री ने कहा, 'हमें कुछ दूर पैदल चलना होगा। मेरा ख्याल है, देवी जी चल सकेंगी।'

'हाँ, हाँ, मैं मीलों चल सकती हूँ', सुशीला ने झटपट जवाब दिया।

मैं शास्त्री और ठेकेदार के बीच में चल रहा था। दोनों मकानों की ही बात कर रहे थे। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि सुशीला पीछे रह गई है, वह हमारे साथ नहीं चल पा रही है। मैं रुककर उसके साथ हो लिया। उसके साथ होकर मेरा मन हुआ कि उसे फिर 'चमेली' कहकर बुलाऊँ। मैंने कहा, 'हम अच्छे-अच्छे मकान देखने जा रहे हैं। तुम्हें अच्छा लग रहा है?'

'हाँ, लग रहा है।'

'जो मकान तुम्हें सबसे अच्छा लगे, मुझे बताना...'

'हाँ,' वह बोली। मैंने फुसफुसा कर कहा, 'बच्ची की ज्यादा चिंता मत करो। वह खुश होगी।'

'अगर वह किसी भी बात के लिए रोना शुरु कर देगी तो उसे चुप कराना आसान नहीं होगा। अम्मा उसे सँभाल नहीं पायेगी।'

'अब ये सब बातें मत सोचो।' मैंने कहा। फिर मैंने अपनी आवाज़ एकदम धीमी करके कहा, 'चमेली...!' उसके होंठों पर मुस्कान उभरी, लेकिन उसने उसे रोक लिया और आँखों से मुझे भी चुप रहने की सलाह दी।

हम बहुत छोटे-छोटे घरों की एक कतार के पास जा पहुँचे, जिनके सामने ज़रा-ज़रा से वरांडे और मामूली-सा बगीचा था— करीब आधा दर्जन बिलकुल एक जैसे मकान।

'यह नमूना पसंद है?' शास्त्री ने मुझसे सवाल किया। मैंने पत्नी की तरफ देखा। वह बोली, 'ये सब बिलकुल एक जैसे हैं, इनमें तो बच्ची रास्ता भूल जायेगी कि अपना मकान कौन सा है...। सब बिलकुल एक जैसे क्यों बनाये हैं?' यह कहकर उसने सिर झटक दिया।

शास्त्री बोला, 'दूसरा मकान बिकने के लिए है।'

मैंने कहा, 'ये तो बहुत छोटे हैं। किसी दूसरे ढंग के नहीं हैं...?' एक लड़के ने दरवाज़ा खोला। शास्त्री ने कहा, 'भीतर आकर देख तो लो...देखने में कोई हर्जा नहीं है।' वह मकानों का जानकार था और सभी से यही अपेक्षा करता था। ठेकेदार ने भी कहा, 'हाँ, कई तरह के मकान देखिए और तब फैसला कीजिए कि कौन सा पसंद आया।' मैं सोचने लगा, 'मकान खरीदने के लिए कितनी परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं! आखिरी फैसला करने तक कितनी मुसीबतों से गुज़रना पड़ेगा!' ठेकेदार ने लड़के से पूछा, 'सब मकान खोल दिये हैं?'

'जी, साहब!'

"जी' मत बोलो। खोलकर रखो।'

'जी, साहब!'

'तुम निरे बेवकूफ हो', उसने कहा। 'अगर ठीक से नहीं करोगे तो कान उखाड़ लूँगा' मैं सोचने लगा, 'यह इस लड़के को बिना वजह डाँट रहा है।... लेकिन कुछ लोग बने ही ऐसे होते हैं। अगर इस बात की जाँच की जाय तो हर मिनट दुनिया में दस हज़ार लोग दूसरे दस हज़ार लोगों को इसी तरह बकते रहते होंगे...।' मैं लड़के को और ज्यादा डाँट-फटकार से बचाना

चाहता था, इसलिए ठेकेदार से सवाल किया, 'इस वरांडे की चौड़ाई क्या होगी?'

'चवालीस इंच...'

'कैसा लग रहा है यह...,' शास्त्री ने पूछा।

'नहीं, इतना छोटा मकान नहीं चलेगा,' मैंने जवाब दिया।

'लेकिन कीमत तो देखो!' शास्त्री ने मुस्कराते हुए कहा, 'बारह सौ में ऐसा मकान कहाँ मिलेगा?'

'अरे, शास्त्री,' मैं सोचने लगा, 'तर्कशास्त्र की जगह ये सब बातें तुम्हारे दिमाग में कहाँ से आ गईं?'

कुछ देर घूम-घाम कर हम एक ऐसे मकान पर पहुँचे जो आकर्षक लग रहा था। इसके सामने काफी बड़ा कंपाउंड था, चौड़ी खिड़कियाँ थीं और बनावट के लिहाज़ से भी अच्छा लग रहा था। दरवाज़े तथा दीवारों पर नया रंग-रोगन किया हुआ था। हम सड़क के मोड़ से बढ़कर उसके सामने पहुँचे और सामने लड़के को खड़ा देखा तो सुशीला खुश होकर बोल उठी, 'यह भी हमें देखना है?' इसके फाटक पर दोनों तरफ चमेली की दो बेलें ऊपर फैल रही थीं और फूल खिल रहे थे। फाटक खोलते-बंद करते आवाज़ नहीं होती थी। हम जब इसके भीतर घुसने लगे तो मैंने उसकी बाँहों को हलका सा छूकर चमेली की लताओं की तरफ इशारा किया। फिर ठेकेदार से बोला, 'मैं इस मकान को अंग्रेज़ी में 'जैस्मिन हाउस' कहूँगा। भीतर घुसते ही ये हमारा स्वागत करती हैं।' ठेकेदार यह सुनकर खुश हुआ। बोला, 'आपको भीतर भी पसंद आयेगा।'

सीढ़ियां चढ़कर हम वरांडे में पहुँचे, जो काफी चौड़ा और खुला हुआ था, चारों तरफ हल्की-सी मुंडेर थी। सुशीला मुंडेर पर बैठ गई। मैं भी उसके पास जा बैठा और बोला, 'किसी अच्छी रुचियों वाले आदमी ने इसे बनवाया है।' शास्त्री यह सुनकर बहुत खुश हुआ, कि उसके चुने मकान को इतना पसंद किया जा रहा है। मुख्य द्वार खोला गया और हर एक कमरे का हमने निरीक्षण किया। बड़ा हॉल, चार कमरे, किचेन और सभी दीवारों पर हलका नीला पेन्ट। सुशीला और मैं जैसे चमत्कृत हो उठे। हम दोनों अलग-अलग देर तक कमरों में घूमे और सोचते रहे कि कहाँ क्या-क्या रखेंगे और कैसे इस्तेमाल करेंगे।

'इसकी कीमत?' सुशीला ने पूछा।

'कीमत हमारे लिए ज्यादा नहीं होनी चाहिए, नहीं तो ये लोग हमें इसे दिखाने ही नहीं लाते,' मैंने कहा।

'बच्ची के खेलने के लिए काफी जगह है। वह जहाँ चाहे दौड़ लगा सकती है। वरांडे पर मुंडेरें भी लगी हैं जिससे वह कहीं गिरेगी नहीं।'

'मेहमानों के लिए भी काफी जगह है। दादा-दादी भी आकर मजे से रह सकते हैं। वरांडे के साथ वाला छोटा कमरा मेरा पढ़ने का कमरा बन जायेगा। मेरा ख्याल है कि यहाँ रहकर मैं बहुत सारी कविताएं लिख सकूँगा।'

सुशीला बोली, 'कभी मेरी माँ भी यहाँ आकर हमारे साथ रह जायेगी। वह मुझे हमेशा किराये के मकान में रहने के लिए टोकती रही है। अब वह बहुत खुश होगी।'

'मेरे कमरे के बगल का कमरा तुम पूरी तरह अपने लिए कर लेना। तुम चाहोगी तो उसकी दीवारों पर टाइलें भी लगवा दूँगा।'

वह बोली, 'फिर तुम उसे ही बाथरूम कहने लगोगे, है न?'

फिर हम वरांडे में बैठे दोनों व्यक्तियों के पास जाकर मकान की कीमत इत्यादि की बातें करते रहे।

'यह मकान बनने के बाद सिर्फ तीन महीने ही किसी के पास रहा है।'

'क्यों?' यह सवाल पूछते हुए मैंने यह दिखाने की कोशिश की कि मैं बिज़नेस अच्छी तरह समझता हूँ। शास्त्री ने कुछ गंभीरता से कहा, 'मैंने पता नहीं किया। तुम्हें पता है क्या बात होगी?' ठेकेदार ने जवाब दिया, 'मैंने जिनके लिए इसे बनवाया था, वे मद्रास जाकर बस गये। बड़े आदमी ऐसा ही करते हैं।'

शास्त्री बोला, 'कोई गड़बड़ तो नहीं है?'

'नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं,' ठेकेदार ने फुर्ती से उत्तर दिया। 'दरअसल यह मकान शहर के एकदम आखिर में है...यही वजह है...।' यह बात सच थी। न्यू एक्सटेंशन की आखिरी सड़क का सचमुच यह आखिरी मकान था। इसके बगल से ही धान के खेत शुरू हो जाते थे, और उनसे लगा अगला गाँव था, फिर मेम्पी पर्वत की नीली पहाड़ियाँ दिखाई देने लगती थीं। नज़ारा भी अद्भुत था। मैं सामने देखकर कहने लगा, 'बहुत शानदार दृश्य है। किसी भैंसे को ही नहीं दिखाई देगा।'

फिर मैंने पूछा, 'मच्छर तो नहीं हैं यहाँ?'

'साल के कुछ महीनों में ज़रूर...तब आप मच्छरदानी लगाकर सो सकते हैं।'

शास्त्री कहने लगा, 'मुझे मच्छरदानी पसंद नहीं है। उससे अच्छा यही है मच्छर से कटवा लो।'

ठेकेदार बोला, 'मैं पैंसठ साल का हो गया लेकिन आज तक मच्छरदानी में नहीं सोया।'

'सचमुच?' शास्त्री प्रभावित हो उठा।

'हाँ, सच कह रहा हूँ। चाहो तो मेरी बूढ़ी माँ से पूछ लो', ठेकेदार ने जवाब दिया। 'मेरा ख्याल है कि मच्छरों की बातें एकदम बकवास हैं। क्या हमारे बुज़ुर्गों के दिनों में मच्छर नहीं हुआ करते थे?'

सुशीला को यह बातचीत बोरिंग लग रही थी। वह बोली, 'मैं जाकर ज़रा पीछे का हिस्सा देखती हूँ।' मैं भी खड़ा हो गया। लेकिन सुशीला ने कहा, 'तुम्हें चलने की ज़रूरत नहीं है। मैं ज़रा घूम-फिर कर अभी वापस आती हूँ।' वह चल पड़ी। मैं भी दो-चार कदम उसके पीछे चला। मैंने पूछा, 'तुम क्यों जाना चाहती हो? मैं भी साथ चलता हूँ।'

'ओह, तुम मुझे मिनट-भर भी अकेले नहीं रहने दोगे?' वह तल्ख़ी से बोली। 'मुझे कोई उठा नहीं ले जायेगा। मैं अपनी देखभाल खुद कर सकती हूँ।' वह चली गई और मैं लौटकर बातचीत में फिर शामिल हो गया। मैंने उनसे कह दिया कि लौटते ही मैं पिताजी को लिख दूँगा और जल्द ही कार्यवाही पूरी कर दूँगा। उन्होंने कहा कि अगले बुध को मिलकर बात कर लेंगे। मैं शास्त्री को अलग ले गया और कीमत ठीक-ठाक ही लगवाने को कहा। 'यह अब मुझ पर छोड़ दो। मैं पाँच सौ तो कम करवा ही दूँगा', उसने मुझे विश्वास दिलाया। मेरा दिमाग़ तेज़ी से घूम रहा था—बहुत खुश था मैं इस सौदे से। सोचने लगा, 'हो सके तो महीने-भर में ही हमें यहाँ रहने आ जाना चाहिए।'

आधा घंटा बीत गया। मैंने सोचा, 'सुशीला अब तक क्यों नहीं आई? कहाँ है वह, और कर क्या रही है?' फिर मैं एकदम उठा और यह कहकर चल पड़ा,' मैं अभी आता हूँ।'

पीछे जाते हुए मैं देखता गया कि मैदान काफ़ी बड़ा है और इसमें एक अच्छा-खासा बगीचा बनाया जा सकता है। आसपास के उपजाऊ खेतों का असर इस ज़मीन पर भी पड़ रहा था और इस पर हलकी-सी हरियाली के साथ सुनहरे फूलों की झाड़ियाँ भी फैली हुई थीं। 'यहाँ बगीचा बनाना हो तो इन झाड़ियों को हटाने की ज़रूरत होगी क्योंकि यह अपने-आप प्राकृतिक रूप से ही उग आती थीं—लेकिन मैं इन्हें रहने दूँगा, नष्ट नहीं करूँगा।' यह निश्चय करके मैं रुक गया और एक फूल तोड़कर हाथ में ले लिया। मैं सोचता रहा कि सुशीला इस बगीचे में क्या-

क्या लगायेगी— मैं उसे ही इसकी पूरी ज़िम्मेदारी सौंप दूँगा। मुझे विश्वास है कि वह इस मैदान को कैसे विकसित किया जाय, यही सब देखने आई होगी। इसके बाद मैं एकदम पीछे चला गया, वहाँ नारियल के कुछ नए पेड़ लगे थे जो थोड़ी-थोड़ी छाया ज़मीन पर फेंक रहे थे। लेकिन सुशीला है कहाँ-वह तो कहीं दिखाई नहीं देती? मैंने इधर-उधर देखकर आवाज़ लगाई, 'सुशीला, सुशीला!' कहीं दूर से आती उसकी हलकी-सी आवाज़ सुनाई दी। मैंने फिर आवाज़ दी जिसके जवाब में उसने कहा, 'यह दरवाज़ा खोलो। मैं इसे इधर से नहीं खोल पा रही। मुझे लगा कि वह हरे दरवाज़े वाले पेशाबघर के पीछे से बोल रही है। मैंने दरवाज़े पर ज़ोर से लात मारी तो वह एकदम खुल गया। भीतर से काँपती हुई सुशीला बाहर निकली। मैं उसे देखकर परेशान हो उठा।

'तुम यहाँ क्या कर रही थीं?' मैंने पूछा। वह हाँफ रही थी, अब भी उसका काँपना नहीं रुका था। मैंने उसे एक पत्थर पर बिठाया और पूछा, 'बात क्या है, यह तो बताओ। हुआ क्या?'

'मैं इसमें गई...दरवाज़ा इतना आकर्षक था कि मैंने सोचा, भीतर साफ-सुथरा होगा। लेकिन...' यह कहकर वह फिर काँपने लगी। भीतर जो था, उसकी याद करके वह बोल भी नहीं पा रही थी। 'लेकिन तुम इसमें गई क्यों?' मैंने चीखकर पूछा। वह चुप रही। इतनी खूबसूरत सुबह के बाद अब यह नज़ारा बहुत भयंकर था। फिर मेरी नज़र उसके पैरों पर पड़ी। 'तुम नंगे पैर गई थीं?' उसने 'हाँ' में सिर हिलाया।

'सैंडिल कहाँ गये?'

'मैं घर पर ही भूल आई थी।' मैंने निराश भाव से सिर हिलाया। 'मैंने सैंकड़ों दफा कहा है कि नंगे पैर कहीं मत जाया करो। फिर भी...', वह बिना बोले मेरी तरफ देखती रही। उसके चेहरे पर पसीने की बूँदें झलक आई थीं। गाल सुर्ख पड़ गये थे और अब भी वह काँप रही थी। मैं उसकी यह हालत देखकर पिघल गया। बोला, 'अरे सुशी, तुम इसमें गई ही क्यों थीं...?'

फिर उसने वही जवाब दिया, 'दरवाज़ा इतना आकर्षक था...मैंने सोचा, भीतर भी ऐसा ही होगा...लेकिन भीतर जाते ही दरवाज़ा अपने-आप खट से बंद हो गया। अब मैं बाहर आ ही नहीं सकती थी। मैंने सोचा यह कोई खास बात हुई है...और वहाँ इतनी गंदगी थी, ढेरों मक्खियाँ, ज़बरदस्त बदबू...क्या बताऊँ!' नफरत की एक लहर उसके बदन में दौड़ गई। 'फिर...एक मक्खी मेरे होंठ पर आ बैठी...!' वह होंठ बंद नहीं कर पा रही थी...देर तक उंगली से उसे साफ करती रही।' मैंने कहा 'वहाँ नलका है। पानी से मुँह वगैरह ठीक से धो लो, पैर, भी साफ़ कर लेना। तुम ठीक हो जाओगी। अब इस बारे में ज्यादा मत सोचो।' वह कूदकर नीचे उतरी, नल के पास जाकर देर तक मुँह साफ किया, फिर पत्थर से रगड़-रगड़ कर पैर धोये— तब तक रगड़ती रही जब तक वे लाल नहीं पड़ गये। अब वह रुकने पर ही नहीं आ रही थी। मैंने कहा, 'इस तरह तुम्हें चोट लग जायेगी या ज़ुकाम हो जायेगा। अब खत्म करो, अब तुम ठीक हो गई हो।'

हम वरांडे में वापस लौटे। शास्त्री और ठेकेदार हमारा इन्तज़ार कर रहे थे। मैंने सुशीला को एक साफ-सुथरी जगह पर बिठाया और कहा कि कार्निस से सिर टिका कर आराम कर ले। इन लोगों ने उसका सुर्ख चेहरा देखा तो पूछने लगे, 'क्या बात हुई?' 'यह उस लैवेटरी में चली गई, और वह बहुत गंदा था', मैंने बताया। ठेकेदार बोला, 'अरे, उन्हें मुझे बताना चाहिए था, मैं वहाँ जाने से मना कर देता। यह यहाँ की बहुत बुरी जगह है। मकान से तो काफी दूर है लेकिन फार्मों और गाँव के पास है इसलिए वहाँ के लोग उसका इस्तेमाल करते हैं और बेहद गंदा कर देते हैं। ...उसकी शिकायत तो बहुत दफा आई है।'

'जब घर में लोग रहने लगेंगे तो क्या होगा?' मैंने सवाल किया।

'अरे नहीं, तब यह समस्या नहीं रहेगी। जब तक मकान खाली है तभी तक की की बात है।

हर मकान की देखभाल के लिए आदमी रखना संभव नहीं है, हालांकि एक चपरासी दिन में एक बार ज़रूर चक्कर लगाता है।'

आधा घंटा आराम करके सुशीला उठ बैठी। 'अब मैं बिलकुल ठीक हूँ।'

शास्त्री और ठेकेदार आगे-आगे चले। मैं पीछे पत्नी के साथ था। शास्त्री के घर के पास पहुँचे तो उसने कहा, 'पहले भीतर चलकर एक-एक कप कॉफी पी लो... और आप तो थक गई हैं।' लेकिन सुशीला ने मुस्कराकर इसे अस्वीकार कर दिया।

मैंने भी कहा, 'अरे नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। और अब देर भी काफी हो गई है। अब हम अगले बुध को मिलेंगे।'

हम चौराहा पार करके आगे बढ़े। जब दोनों से काफी दूर निकल आये, मैं उससे गहराई से पूछताछ करने लगा— बार-बार पूछता कि अब वह कैसा महसूस कर रही है। मुख्य सड़क पर आये तो सामने एक नया-सा मंदिर दिखाई दिया। मैं बोला, 'हमारे घर के पास इतना सुंदर मंदिर बना दिया है— कितनी अच्छी बात है!' वह कहने लगी, 'अंदर चलो, भगवान के दर्शन करेंगे।'

'ज़रूर चलो।'

मंदिर के दरवाज़े पर एक बुढ़िया बोरा बिछाये बैठी थी। और नारियल, फूल और प्रसाद वगैरह बेच रही थी। 'देवता पर चढ़ाने के लिए ले जाओ', वह बोली।

'किसका मंदिर है यह?' सुशीला ने पूछा।

'श्रीनिवास का, सबसे बड़े देवता का। यहाँ दर्शन करोगी तो तिरुपति जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। यहीं वे तुम्हारी सारी मनोकामनाएं पूर्ण कर देंगे।' उसने नारियल, कपूर, केले और पान के पत्ते हमें दिये।

'तुम दोनों बिलकुल जवान और तन्दुरुस्त हो। भगवान तुम्हें बहुत-से बच्चे देंगे और सब लड़के होंगे...।'

'चुप रहो,' सुशीला बोली। 'हमारे एक बच्ची है। और उससे ज्यादा हमें नहीं चाहिए।' यह कहकर वह हँसी और मंदिर में घुस गई। उसे हँसते देखकर मेरी चिंता दूर हो गई। हमने मंदिर के मुख्य हॉल में प्रवेश किया, यह खंभों पर खड़ा था और कपूर तथा फूलों की गंध चारों और फैल रही थी। सामने बीच में बने छोटे-से कक्ष में देवता की लंबी मूर्ति स्थापित थी, दोनों ओर काँसे के दो बड़े दीपक जल रहे थे। मूर्ति के पैरों के पास शाल ओढ़े पुजारी बैठा था। वह हमें देखकर उठा और पूजा की थाली हमारे सामने कर दी। हमने नारियल इत्यादि उसमें रख दिये।

'कितनी सुंदर मूर्ति है!' सुशीला ने कहा, आँखें बंद करके हाथ जोड़े और प्रार्थना करने लगी। मैं उसे देखता खड़ा रहा। पुजारी ने नारियल फोड़ा और दूसरी वस्तुओं के साथ देवता के चरणों में रख दिया। फिर उसने कपूर जलाया, और घंटी बजाते हुए मूर्ति के सामने ज्योति को गोलाई में घुमाया। प्रकाश की लौ में मूर्ति की छाया इधर-उधर घूमती सी, मानो आशीर्वाद दे रही हो, प्रतीत होने लगी। मैं पत्नी को देखता रहा। उसने एक क्षण के लिए आँखें खोलीं, कपूर की लौ उन पर पड़ी और वे एक अलौकिक आभा से जगमगा उठीं। उसके गाल चमक रहे थे, और उसकी काया मानो हॉल में चारों ओर से पड़ रही छायाओं में लुप्त होती लगी। उसके होंठ प्रार्थना में धीरे-धीरे हिल रहे थे। मैं भी वातावरण में डूबने-सा लगा और मैंने भी आंखें बंद करके प्रार्थना की, 'भगवान, हमारी बच्ची को आशीर्वाद दो और उसकी रक्षा करो।' सुशीला ने पुजारी से पूजा का जल लेकर उसे अपने होंठों और आँखों से लगाया, माथे पर चंदन का टीका लगवाया और देवता को अर्पित फूलों में से एक उठाकर अपने जूड़े में लगा लिया। फिर हम बाहर निकले। मंदिर की सीढ़ियों से उतरते हुए वह बोली, 'अब मैं बिलकुल ठीक अनुभव कर रही हूँ। हम इस मंदिर में अक्सर आया करेंगे।'

मैंने कहा, 'हम यहाँ रहने लगेंगे तो हर शाम तुम यहाँ आया करना।'

'ठीक है।' उसे अब पहले की तरह हँसते-बोलते देखकर मैं बहुत संतुष्ट महसूस कर रहा था। वापस लौटने के लिए एक गाड़ी रोकी और उसमें एक दूसरे से सटकर बैठ गये। गाड़ी सड़क पर खड़बड़-खड़बड़ करती हुई चली और हमें झपकी आने लगी। हमने कुछ भी बातचीत करना बंद कर दिया और शांति से रास्ता तय करने लगे। मैं उसके अजाने उसका चेहरा देख रहा था। उसका चेहरा एकदम शान्त था। 'ईश्वर ने मुझे इस जैसी पत्नी दी, उसकी बड़ी कृपा है!' गाड़ी के भीतर उससे निकलती चमेली की खुशबू भर रही थी और साड़ी की नीली चमक चारों और फैल रही थी।

जब हम मार्केट रोड से गुज़रे, तो उसने याद दिलाया, 'बेबी के लिए बिस्कुट और खिलौने लेने हैं।' इसलिए नावेल्टी हाउस के सामने हमने गाड़ी रोकी, मैं लपककर दुकान में गया और बिस्कुट का पैकेट, एक गुड़िया और एक खिलौना इंजन लेकर वापस आ गया।

घर के समीप पहुँचे तो देखा, बच्ची आंगन में अम्मा और पड़ोस के एक बच्चे के साथ मज़े से खेल रही है। जब हम अपने घर से दो-तीन घर दूर थे, गाड़ी की खड़खड़ाहट को पार करती उसकी आवाज़ सुनाई दी। गाड़ी जैसे ही रुकी, वह दौड़कर सामने आ गई। सुशीला ने उसे गोद में उठा लिया और बिस्कुट, इंजन और गुड़िया उसे पकड़ा दिये। लीला की सहेली भी वहीं खड़ी थी। लीला उससे बोली, 'अब तुम घर जाओ। मेरी माँ आ गई है।' 'ठीक है', कहकर बच्ची क्षण-भर रुकी और खेल में उन्होंने जो कुछ बनाया था, उसे देखने लगी। वे दोनों घर बनाने का खेल खेल रहे थे और लकड़ी के टुकड़ों से उन्होंने एक छोटा-सा घर बना लिया था, जिसमें बर्तन वगैरह भी रखे हुए थे।

अम्मा ने हमें देखकर कहा, 'आज लीला अच्छे बच्चे की तरह खूब खेली। माँ घर पर होती है तो वह खाने में ज़िद करती है, लेकिन आज बिलकुल नहीं की।'

'इसने पूछा कि हम कहाँ गये हैं?'

'हाँ, पूछती ही रही। हर पाँच मिनट बाद पूछती थी और कहती थी कि मुझे बताये बिना क्यों चली गई। बहुत समझदार है लीला।'

लीला बोली, 'माँ, तुम रात को ही क्यों चली गईं? मैं जगी तो तुम्हारी जगह अम्मा दिखाई दीं।' अम्मा यह सुनकर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगीं। 'कितनी बातें करना सीख गई है बिटिया! इस मामले में यह तुम सबको पीछे छोड़ देगी।'

'और तुम कहाँ गई थीं, माँ?' उसने फिर पूछा। सुशीला कपड़े बदले बिना ज़मीन पर ही लेट गई। 'मैं बहुत थक गई हूँ। अब मैं आधा घंटा आराम किये बिना नहीं उठूँगी, चाहे कुछ हो जाय...।'

अम्मा ने कहा, 'पहले खाना खा लो।'

'उठ बैठो सुशीला,' मैंने भी कहा, लेकिन वह लेटी ही रही।

बच्ची फिर पूछने लगी, 'तुम कहाँ गई थीं, माँ?'

'तुम्हारे लिए घर खरीदने।'

'अच्छा, यह किसका बना है?'

'पत्थर और चूने का।'

'इतना बड़ा है?'— यह कहकर उसने अपना हाथ गज़ भर ऊपर उठाया। 'मुझे छोटा-सा घर चाहिए जिसे मैं अपने बक्स में रख सकूँ।'

'नहीं, इसी घर जैसा बड़ा घर,' माँ ने कहा।

'यह घर हमारा है?' बच्ची ने पूछा।

‘इससे भी अच्छा एक और..., वहाँ तुम पेड़-पौधों से खेल सकोगी।’

‘मैं मिट्टी में कैसे खेलूँगी?’

‘वह बड़ा साफ़ और बढ़िया है...।’

‘मेरी सहेली भी वहाँ चलेगी।’ माँ की गोद में बैठी, एक हाथ में खिलौने पकड़े और एक से बिस्कुट खाते वह सुशीला से बातें करती रही।

मैं आधा घंटा अपने कमरे में काम करता रहा। फिर बाहर आया। सुशीला तब भी ज़मीन पर लेटी हुई थी। ‘इस तरह क्यों लेटी हो? कपड़े बदलो। फिर खाना खायेंगे।’

‘मुझे थोड़ी देर और आराम कर लेने दो,’ उसने कहा। मैंने उसके सिर को हाथ से छुआ और कहा, ‘अगर इस छोटे-से कार्यक्रम में तुम इतना थक गई तो जब हम उत्तर भारत घूमने जायेंगे तो क्या होगा?’

‘तब मैं खूब घूमूँगी।’

‘इस वक्त अगर भरपेट खाना खा लोगी तो तुम्हें आराम मिलेगा।’

‘मुझे मजबूर मत करो। खाने के विचार से ही मुझे चिढ़ हो रही है। तुम खा लो, मेरा इन्तजार मत करो।’ मैं इसके लिए तैयार नहीं हुआ, बोला, ‘बाद में तुम्हारे साथ ही खाऊँगा। मुझे भी कोई खास भूख नहीं है। मेरा ख्याल है, होटल का खाना तुम्हें सूट नहीं किया।’

बच्ची माँ की गोद में चढ़ी उसके गले से लिपटने लगी। मैंने कहा, ‘अपनी माँ को तंग मत करो।’

‘मैं उसे तंग नहीं कर रही। मैं उसका सिर दबाऊँगी’, उसने जवाब दिया।

मैं अपने कमरे में गया और एक क्षण मेज़ की तरफ देखता रहा। पत्नी ने इसकी सफाई करना बंद कर दिया था और यह हॉस्टल के दिनों की तरह फिर उलट-पुलट हो गई थी। एक बार फिर मिल्टन और शेक्सपियर और बच्चे एक-दूसरे से धींगामुश्ती करने लगे थे। मेज़ पर लाइब्रेरी की चार किताबें थीं, जिन्हें वापस करने का समय जाने कब का बीत चुका था, और जिसके लिए कई रिमाइंडर भी आ चुके थे, लेकिन जिन्हें मैंने अब तक खोलकर देखा भी नहीं था। प्लेटो, स्विनवर्न, आधुनिक कविता और दूसरे विषयों की बिलकुल नई किताबें। एक दिन लाइब्रेरियन ने बड़ी उदारता दिखाने के लिए मुझे पढ़ने को पकड़ा दी थीं। मैंने महसूस किया कि जब मैं होस्टल में रहता था और परिवार नहीं था, तब मैं कहीं ज्यादा पढ़ लेता था। अब मेरा वक्त बीवी से बात करने, बच्ची के साथ खेलने और खरीदारी करने में बीत जाता था। मैं जब यह सोचता, मेरी आत्मा मुझे कचोटने लगती।’ अब मैं वक्त बर्बाद नहीं करूँगा और प्लेटो की किताब पढ़ डालूँगा...।’ मैंने किताब उठा ली और आरामकुर्सी पर आकर बैठ गया। ‘प्लेटो का आदर्शवाद...’, मैं पढ़ने लगा। ‘अरे, ये लोग उसे अकेला क्यों नहीं छोड़ देते? हजारवीं बार एक ही बात दोहरा रहे हैं...। बेकार है यह किताब। मैं इसे वापस कर दूँगा।’ यह किताब मैंने रख दी, दूसरी उठाई लेकिन वह भी ऐसी ही लगी।

आधे घंटे तक मैं इन किताबों में उलझा रहा। फिर सब एक तरफ रख दीं। मैं कुर्सी पर लेट-सा गया और सोचता रहा, शायद कोई मुझे बुलाये। लेकिन घर एकदम शांत था, कहीं कोई आवाज़ नहीं हो रही थी। मैं उठकर हॉल की तरफ गया। देखा, माँ-बेटी जहाँ थीं, वहीं एक-दूसरे से लिपटकर सोई हुई हैं। इच्छा हुई कि सुशीला को जगा दूँ। एक क्षण उसकी तरफ देखा। ‘बहुत थकी लग रही है। सोने देता हूँ।... मैं खाना खा लेता हूँ। हो सकता है, वह उठ जाये और मेरे साथ खाने आ जाये।’ मैं किचेन में चला गया और केले का पत्ता लेकर बैठ गया। अम्मा ने खाना परोस दिया। वह अपनी खरखराती आवाज़ में कहने लगी, ‘और सुशीला...।’ मैंने कहा, ‘चुप रहो, इतने ज़ोर से मत बोलो। सोने दो उसे। थोड़ी देर में जग जायेगी।’

खाना खाकर मैं उठा, बाथरूम में जाकर हाथ धोये और सुशीला के पास जाकर उसे देखने लगा। उसके होंठ खुले हुए थे। मैं सोचने लगा, 'इसे अब तक होंठ बंद करने में परेशानी हो रही है।' मैं उसके पास बैठ गया और उंगली से उसकी पलकों को छुआ। उसने आँखें खोलीं और देखा, साथ ही बच्ची भी खिलौने हाथ में पकड़े सोई हुई है। धीरे से अपने को उससे अलग किया और उठकर बैठ गई। मैं बोला, 'मैंने तो खाना खा लिया, भूख लग आई थी। अब तुम भी खा लो।'

मैं उसे बाथरूम में ले गया और चेहरे को पानी से धोया। फिर उसे किचेन में ले गया, बिठाकर सामने पत्ता रख दिया और खुद भी बगल में बैठ गया। वह चुपचाप सब कुछ करती रही। अम्मा कहने लगी, 'खाने में इतनी देर नहीं करनी चाहिए...। पेट खाली रहे तो ज़हर बनने लगता है।' वह सब्ज़ी और दाल भी देने लगी। 'नहीं, यह कुछ नहीं। सिर्फ भात और दही खाऊँगी।' फिर वह पत्ते की तरफ देर तक देखती रही। काफी कहने-सुनने के बाद चावल का एक छोटा-सा ग्रास मुँह में दिया, लेकिन चबाना शुरु नहीं किया। 'अच्छा नहीं लग रहा?' मैंने पूछा, फिर कहा, 'नींबू का अचार ले आओ।...अब अच्छे बच्चे की तरह खाना शुरु करो। चलो, खाओ...।' एक कौर खाकर वह फिर चुप हो रही। फिर काफी कहने के बाद एक और ग्रास मुँह में रखा लेकिन बाहर निकाल दिया...। वह बीमार लगने लगी। उठकर बोली, 'इस वक्त खाया नहीं जा रहा। रात को ही खाऊँगी...।' बाथरूम में जाकर हाथ धोये और हॉल में जाकर लेट गई। मैं भी उसके पास बैठ गया। वह बोली, 'चिंता मत करो। कोई खास बात नहीं है, मैं ठीक हो जाऊँगी।'

'तकलीफ क्या है तुम्हें?'

'क्या बताऊँ?' वह धीरे से बोली। 'तुम नाराज़ मत होना। उस जगह की गंदगी, मक्खियाँ, सब याद आ जाते हैं... और होंठ पर वह मक्खी जैसे चिपकी हुई है...', यह कहकर उसने होंठ की तरफ इशारा किया और जैसे काँपने लगी।

इसके बाद वह एकदम बिस्तर पर जा पड़ी और तीन, चार, पाँच, छह दिन बीतने पर भी उठ नहीं सकी। उसके लिए कुछ भी खाना और दवा भी मुँह से भीतर ले जाना संभव नहीं रहा था। हालांकि वह मक्खी के होंठ पर बैठने का दृश्य भूलने की भरसक कोशिश करती रही। मेरे लिए यह अच्छी बात थी कि इन दिनों कॉलेज में छुट्टियां थीं और मैं बच्ची के साथ अपना समय बिता सकता था—जो माँ के बिना बहुत लाचार महसूस करने लगी थी। सुशीला अपने कमरे में ज़मीन पर बिछे बिस्तर पर पड़ी रहती थी। भूरे रंग की चादर पर लेटी, हरा शाल ओढ़े, दीवार की तरफ मुँह किये पड़ी, दिन-भर में दो घंटे से ज्यादा जागे रहने में असमर्थ—उसकी यह दशा देखकर मैं बहुत परेशान होने लगा। मेरी शांति पूरी तरह भंग हो चुकी थी।

अम्मा भी बहुत परेशान थी। 'डाक्टर को बुलाकर दिखा दो,' उसने कहा। मुझे इसकी ज़रूरत नहीं महसूस हो रही थी, और सुशीला तो डाक्टर को दिखाने के बिलकुल खिलाफ थी। मैंने अम्मा से कहा, 'सुशीला इसके लिए तैयार नहीं होगी।' तब उसने ज़रा सख्ती से कहा, 'यह वक्त इसकी राय मानने का है?' यह सुनकर मेरे मन में डर सा पैदा होने लगा। लेकिन मैंने अकड़ दिखाते हुए कहा, 'वक्त को क्या हुआ है? वक्त ठीक चल रहा है...' उसने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया, बोली, 'पाँच-छह दिन से बिस्तर पर पड़ी है। तुमने क्या किया...?'

'मैंने उसे दवा तो दी है।'

'यह काफी नहीं है। डाक्टर को दिखाना ज़रूरी है।'

'मैं जानता हूँ, मुझे क्या करना चाहिए...', यह कहकर मैं सुशीला के पास जाकर बैठ गया। सवेरे का समय था और वह काफी अच्छी दिख रही थी।

'आज तुम कुछ खाना खाओगी?' मैंने धीरे से पूछा।

'अभी नहीं...थोड़ा सा दूध और भात लूँगी।'

'मैं डाक्टर को बुलाकर लाता हूँ', मैंने कहा।

'नहीं, नहीं, मुझे डाक्टर अच्छे नहीं लगते। वे पेट दबाकर देखते हैं, और इधर-उधर भी दबाते हैं— मुझे दर्द होता है। लीला के पैदा होने से पहले जहाँ दबाया था, वहाँ अभी भी दर्द होता है।'

'बेकार की बातें मत करो। तुम बच्चों जैसी बात करती हो', मैंने कहा। वह मेरी तरफ देखकर चुप रही। उसके होंठ सूख गये थे। 'बेबी कहाँ है?' उसने पूछा। वह पड़ोस के घर में खेल रही थी। 'उसे यहाँ ले आओ। मैं उसके बाल काढूँगी, कपड़े बदलूँगी।'

'अपने पर बोझ मत डालो।'

'नहीं नहीं, मैं कर सकती हूँ। मैं नहीं करूँगी तो कौन करेगा।' मैं पड़ोस के घर में गया। लीला सीढ़ी पर गीली रेत में लकड़ियाँ लगाकर उन पर फूल रख रही थी। 'यह हमारा मंदिर है।' मूर्ति के स्थान पर एक छोटा-सा पत्थर रखा था। इसके बाद उसके सामने हाथ जोड़कर बैठ गई। अपनी सहेली की तरफ देखकर बोली, 'यह पुजारी है।' उसकी सहेली नारियल की जगह एक पत्थर और फूलों के लिए छोटी-छोटी डालों के टुकड़े लेकर आई और प्रसाद के रूप में मुझे दिये। मैंने लीला से कहा, 'माँ तुम्हें बुला रही है।' यह सुनकर वह खिल उठी। 'उसका बुखार उतर गया?' यह पूछकर मेरा हाथ पकड़ा और मंदिर तथा पुजारी दोनों को छोड़कर मेरे साथ दौड़ती चली आई।

सुशीला उसे देखते ही उठकर बैठ गई। उसके बाल बिखरे हुए थे और कई जगह गड्डियां-सी बन गई थीं। होंठ सूख रहे थे। वह वही साड़ी पहने थे जिसे पहनकर मेरे साथ मकान देखने गई थी। फिर भी मुझे खुशी हुई। इतने दिन बाद वह उठकर बैठने लायक हुई थी। 'आज अपने कपड़े भी बदल डालो।' मैंने कहा। उसने बच्ची से कहा कि डायनिंग हॉल में जाकर अलमारी से नारियल के तेल की शीशी और कंघा उठा लाये। बच्ची गई और एक बार में तेल की शीशी गोद में दबाकर ले आई, फिर दूसरी दफा जाकर कंघा ले आई। इसके बाद वह माँ के सामने बैठ गई। सुशीला बोली, 'मेरी बेटी अनाथ की तरह लगने लगी है—कोई ध्यान ही नहीं दे रहा।' उसने उसके बाल सुलझाये, और तेल लगाकर कंघी की, फिर कहा, 'अब जाकर अपनी सिल्क की नीली फ्राक ले आओ।'

'मम्मी, मुझे नीला रंग पसंद नहीं है...'

'यह फ्राक बहुत अच्छी है। बक्से में रखी खराब हो जायेगी।'

'मम्मी...!'

'कौन सी है यह?' मैंने पूछा।

'वो जिसे तुम्हारे भाई ने पिछली दीवाली पर भेजा था,' उसने जवाब दिया। यह सुनकर भाई के लिए मेरे मन में प्यार उमड़ पड़ा। अच्छा है वह— मुझे बचपन के दिनों की याद आने लगी। जब वह गाड़ी में साथ जाते समय हम सब पर हुक्म चलाता; शाम को दूर की हाँकता कि उसने कुएं के पास पत्थर के नीचे रहने वाले एक मेंढ़क को इस तरह ट्रेंड कर लिया है कि उसके बुलाने पर आकर जो वह कहता है करने लगता है। जब उसकी बीवी और माँ मामूली सी बातों पर लड़ती नज़र आतीं और वह चुपचाप टहलता रहता; बीवी का गुलाम, अब बारह बच्चों का बाप, आखिर—इतनी ज़्यादा मुसीबत की ज़िंदगी बिताते हुए भी उसने हमारी बेटी के लिए सिल्क की फ्राक भेजी...। ये सब बातें मेरे दिमाग में घूम गईं और मैंने कहा, 'बेबी, इन मामलों में तुम्हें अपनी माँ की बात माननी चाहिए...।' लीला ने मेरी तरफ एक नज़र डाली और उठ गई। मैंने देखा कि बगल के कमरे में वह बक्स को खोल रही है...। सुशीला ने कहा, 'इतनी सख़्ती की क्या ज़रूरत

थी?' तब वह फ्राक निकाल कर ले गई। मैंने उसे हाथ में लेकर कहा, 'यह तो बड़ी खूबसूरत है!' लीला ने तुरंत जवाब दिया 'बिलकुल खूबसूरत नहीं है!' लेकिन पहनाने के लिए उसे माँ को थमा दिया। माँ ने कहा, 'अब जाकर किसी बर्तन में थोड़ा सा पानी ले आओ। पैरों पर मत गिराना। पहले मैं तुम्हारा मुँह धोऊँगी...'

'नहीं,' मैं ज़ोर से बोला, 'तुम्हें पानी में हाथ नहीं डालना चाहिए... ठंड लग जायेगी।' लीला ज़रा देर रुकी, फिर दौड़कर बाथरूम में जाकर पानी और तौलिया ले आई। सुशीला ने उसके मुँह पर लगी धूल-मिट्टी छुड़ाई, गीले तौलिये से उसे साफ किया, फिर माथे पर बिंदी और गालों पर पाउडर लगाकर कपड़े पहना दिये। लीला बड़ी शानदार लगने लगी। वह मेरे सामने खड़ी होकर पूछने लगी, 'पापा, अब मैं कैसी लग रही हूँ?' मैंने कहा, 'बहुत खूबसूरत!' और उसे गोद में उठा लिया।

सुशीला ने भी कपड़े बदले, अपने बाल काढ़े और थोड़ा सा खाना भी खाया, लेकिन कहा यही, 'कड़वा लगता है।' लेकिन वह ताज़ी लग रही थी। उसने अपना बिस्तर भी ठीक किया। मैं बहुत खुश हो रहा था। पिछले कई दिनों से मुझ पर जो उदासी छा गई थी, वह कम हो गई और मैं एक गाना गुनगुनाता अपने कमरे में चला गया। लेकिन यह सब करके सुशीला थक गई और लेट कर सो गई। शाम को पाँच बजे सोकर उठी तो सिर में दर्द हो रहा था। मैंने उसकी नब्ज़ देखी और थर्मामीटर लगाया तो मालूम हुआ कि बुखार आ गया है। मैंने कहा, 'मैं डाक्टर को लाता हूँ।'

'ठीक है,' इस बार वह मान गई। 'कुछ करो जिससे यह सिर दर्द बंद हो जाय।' मैंने कहा, 'मैं तुम्हें हार्लिक्स देता हूँ, फिर डाक्टर को लाने जाऊँगा।' मैंने गरम पानी लाने को कहा। हॉल में रखी मेज़ पर हार्लिक्स की बोतल, गिलास और चम्मच रखे हुए थे। हार्लिक्स बनाकर मैं उसके पास ले गया। मैंने देखा, वह रो रही थी। यह पहली दफा था जब मैंने उसे रोते हुए देखा। मैं बोला, 'तुम्हें भूख लगी होगी।' मैंने उसे हार्लिक्स पिलाने की कोशिश की लेकिन पानी बहुत गरम था और उसे ठंडा होने में देर लग रही थी। सुशीला दीवार की तरफ मुँह किये लेटी थी और उसकी आँखों से आँसू निकल कर चेहरे पर बह रहे थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ। अम्मा पास खड़ी थी, वह बोली, 'पहले यह पिलाओ इसे, भूख लगी है...और कोई बात नहीं है।'

'लेकिन यह तो ठंडा होने में ही नहीं आता। मन करता है, फेंक दूँ।' बच्ची कमरे में आ गई थी और दीवार के सहारे खड़ी हमें देख रही थी। अम्मा नहीं चाहती थी कि वह यहाँ खड़ी हो, इसलिए बोली, 'बेबी, यहाँ आओ।' मैं एक हाथ से हार्लिक्स ठंडी कर रहा था, दूसरे से सुशीला को सहला रहा था, झुँझलाकर अम्मा से कहा कि लीला को अकेला छोड़ दे। इस बीच सुशीला का सुबकना ज्यादा बढ़ गया। मैं बोला, 'धीरज रखो,' और गिलास उसके मुँह से लगा दिया। 'इसे खत्म कर दो, फिर तुम ठीक हो जाओगी।' उसने धीरे-धीरे पूरा गिलास खत्म किया, फिर मेरी तरफ देखकर मुस्कराई, तो मेरी जान में जान आई। फिर मैं देर तक उसका सिर सहलाता रहा, अंत में बोला, 'अब तुम अच्छा महसूस कर रही हो? मैं डाक्टर को लाने जा रहा हूँ।'

कृष्णा मेडिकल हॉल के डॉ० शंकर का परिचय मुझसे रंगप्पा ने कराया था। वह इन्हें दुनिया का सबसे अच्छा डाक्टर मानता था। इसलिए शहर का सबसे सफल डाक्टर भी वही था। कृष्णा मेडिकल हॉल मार्केट रोड पर था यानी हमारे घर से मील-भर दूर। मैंने खुशी से यह रास्ता तय किया और वहाँ जा पहुँचा। इससे मेरे पिछले दिनों की सारी परेशानी भी दूर हो गई। रास्ते में दो-एक लोग मिले जिनसे मैंने बात की और सिगरेट का एक पैकेट खरीदकर सिगरेट भी पी। ज़िंदगी का पिछला उत्साह और शांति लौट आई।

डॉक्टर क्लिनिक में नहीं था। बीच में रखी मेज़ पर पड़ी उसकी कुर्सी खाली थी। लेकिन चारों तरफ पड़ी बेंचों और कुर्सियों पर बैठे मरीज़ और उनके साथ आये संबंधी बेचैनी से उसके आने का इन्तजार कर रहे थे। प्रवेश द्वार के पास बैठे एक क्लर्क और एक एकाउंटेंट चमड़े की जिल्दों से मढ़े रजिस्टर लिये अपना हिसाब-किताब कर रहे थे।

क्लर्क ने मुझे देखकर कहा, 'तशरीफ़ रखिये। डाक्टर साहब आते ही होंगे।' मैं उसका स्वागत और चेहरे की मुस्कान देखकर खुश हुआ। कुर्सी पर बैठकर मैं इधर-उधर देखने लगा। दीवारों पर शीशे की अलमारियों में दवा-निर्माताओं के बनाये आकर्षक डिब्बों और बोतलों में हर बीमारी दूर करने वाली दवाएं रखी हुई थीं। कड़वी दवाओं का ज़माना अब खत्म हो गया था। अब दवाएं देखने में ही नहीं, स्वाद में भी अच्छी होने लगी थीं। नीली पैकिंग में स्वच्छ रुई के बंडल नीचे से ऊपर तक रखे हुए थे। मैं सोचने लगा कि 'इन लोगों को कैसे पता चलता है कि जो चीज़ उन्हें चाहिए, वह कहाँ रखी हुई है और कब उनका इस्तेमाल करना होता है?' दीवारों पर सुन्दरियों, पशुओं, खोपड़ियों और लाल गाल वाले बच्चों के रंगीन पोस्टर टँगे थे, जिन पर उन लाभदायक औषधियों के चित्र भी बने हुए थे जिनके सेवन से उनको यह स्वास्थ्य और सौंदर्य प्राप्त होता है।

एक बगल के केबिन से औरतों की आवाज़ें और बच्चों का रोना सुनाई दे रहा था। दूसरी तरफ कंपाउडर शीशे के बर्तन खड़खड़ाता दवाएं बना रहा था। फिर वह व्यापारी जैसे अंदाज़ में, सिल्क की पैंट और कमीज़, जिस पर एप्रन पड़ा हुआ था, पहने बाहर निकला, और भूरे कागज़ में लिपटी दवा की शीशी ऊपर उठाकर कहने लगा, 'यह केशव कौन है?'

एक दुबले-पतले आदमी ने, जो शाल ओढ़े था और जिसके कानों पर मफलर लिपटा हुआ था, आगे बढ़कर कहा, 'मैं हूँ।' कंपाउडर ने शीशी उसे पकड़ाई और 'खाने से पहले तीन खुराकें,' कहकर भीतर चला गया। मरीज़ कुछ सवाल पूछना चाहता था और उसने मुँह खोला ही था, कि कंपाउडर वहाँ से जा चुका था। मरीज़ शीशी हाथ में लिये खड़ा रह गया, फिर उसने क्लर्क से ही पूछ लिया, 'मैं छाछ ले सकता हूँ?'

'हाँ,' क्लर्क ने जवाब दिया।

'यह दवा मैं खाने के बाद लूँ या उससे कुछ मिनट पहले?'

'खाने से करीब पाँच मिनट पहले,' क्लर्क ने कहा और बोला, 'छह आने।' मरीज़ ने उदासी से पैसे गिनकर दिये और सोचता रहा कि उसे इनकी पूरी कीमत अभी नहीं मिली है। वह रुका और इधर-उधर देखकर कहने लगा, 'मैं डाक्टर साहब से ही पूछ लूँगा...'

'तीन दिन तक दवा लिये बिना उनसे पूछने की ज़रूरत नहीं है। मैं उन्हें तुम्हारे बारे में बता दूँगा,' क्लर्क ने कहा और मरीज़ यह सुनकर खुश हुआ। बोला, 'उन्हें यह भी बता देना कि बायीं तरफ का दर्द खत्म नहीं हुआ है।'

'हाँ, कह दूँगा,' क्लर्क ने इस तरह कहा जैसे वह खुद आधा डाक्टर है। वह बड़ी उदारता से मरीज़ों को अपने सुझाव बाँट रहा था। वह किसी-किसी का गला भी देख लेता था और सिर दर्द की दवा तजवीज़ कर देता था।

तभी एक कार आकर रुकी और मरीजों में हलचल मच गई। डाक्टर आ पहुँचा था। सब उसका स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए और नमस्ते करने लगे। डाक्टर फिल्म स्टार की तरह लग रहा था जो प्रशंसकों से घिरा हो। उसने हाथ हिलाया, मुस्कान फेंकी और मरीजों को अपनी सीटों पर बैठने के लिए कहा।

सहायक ने डाक्टर के सामने कुछ पर्चियाँ और शीशियाँ रखीं और उसने काम शुरू किया। उसने एक-एक करके पर्चियों पर लिखे नाम पढ़े और बड़ी तेज़ी से किसी का गला देखकर,

किसी के सीने को ठकठकाकर और किसी के दिल की धड़कन सुनकर इलाज की दवाएं लिखकर देना आरंभ कर दिया। किसी के कान में कोई बात कही, किसी को प्राइवेट केबिन में धकेलकर खुद भी घुस गये और थोड़ी ही देर में तौलिये से हाथ पोंछते बाहर निकल आये। वह स्वास्थ्य, सुख और आरोग्य देने वाली मशीन बन गये थे। मैं उनके काम करने के ढंग से बहुत प्रभावित हुआ। मेरी बारी आने पर बोले, 'कहिये प्रोफेसर, आपकी क्या सेवा करूँ?' और मेरी नब्ज़ पकड़ने लगे। वे मुझे हमेशा 'प्रोफेसर' ही कहते थे। मैंने कहा, 'डाक्टर साहब, मैं मरीज़ नहीं हूँ।'

मैंने उन्हें पत्नी की बीमारी के बारे में बताया। उन्होंने ध्यान से सुना, दवा की पर्ची लिखी, और अगले मरीज़ की तरफ बढ़ गये। एक गाँव का आदमी उनके सामने खड़ा था, उसने कहना शुरु किया, 'पिछली रात...', कि तभी वे मेरी तरफ मुड़े और पूछा, 'दवा के लिए शीशी लाये हैं?'

'नहीं, मुझे पता नहीं था...,' मैं बोला।

'कोई बात नहीं,' यह कहकर उन्होंने मेरी पर्ची पर एक निशान बना दिया और दूसरे मरीज़ से फिर बात करने लगे। उसने कहना शुरु किया, 'पिछली रात...' और बड़े विस्तार से अपने दर्द के बारे में बताना शुरु किया जो सिर के पिछले हिस्से से आरंभ होकर नीचे घुटनों तक आता था और फिर ऊपर चढ़ने लगता था। वह मजिस्ट्रेट के सामने खड़े गवाह की तरह बोल रहा था। डाक्टर ने उसकी पीठ ठकठकाई, कानों में झाँका, आँखों की पुतलियाँ ऊपर उठाकर देखीं और घुटनों को नोंचकर उनका जायज़ा लिया। फिर मरीज़ से कुछ मज़ाक की बातें कीं, उसकी पर्ची लिखी और आगे बढ़ गये। पंद्रह मिनट बाद कंपाउंडर उन सब पर्चियों की दवाएं बनाकर शीशियाँ ले आया, जिन्हें वह कुछ देर पहले ले गया था। जब उसने 'मिसेज़ कृष्णा...' नाम पुकारा तो मैंने अपनी शीशी ले ली और डाक्टर की तरफ देखा, जो कुछ लिख रहा था। क्लर्क ने पूछा, 'यह शीशी आपकी है?' और मेरे हाथ से शीशी लेकर उसका लेबिल पढ़ा और बताया, 'खाने से पहले हर चार घंटे बाद एक तिहाई दवा, और उससे पाँच मिनट पहले एक गोली। दो दिन दवा देने के बाद आकर मिलें। खाने के लिए चावल और छाछ।... दस आने।' लेकिन यहाँ के मशीनी ढंग को देखकर मुझे निराशा हुई। मैंने डाक्टर की तरफ निगाह डाली, वह काम में व्यस्त थे। पैसे चुकाकर मैं अपनी सीट पर वापस लौट आया। दस मिनट तक इन्तज़ार करता रहा कि डाक्टर मेरी तरफ नज़र डाले, लेकिन वे काम में लगे रहे।

'डाक्टर साहब,' मैंने हिम्मत की।

'एक सेकिंड...', यह कहकर हाथ की पर्ची पूरी की, फिर पीछे घूमकर मुझसे पूछा, 'आपने दवा ले ली?'

'जी,' अब जब वे मेरी तरफ मुख़ातिब थे, मैं भूल ही गया कि क्या पूछ रहा था। 'यह किस तरह देनी है?' कुछ समझ में नहीं आया तो यही पूछ लिया और अपराध-भाव से क्लर्क की तरफ देखा।

'उसने बताया नहीं आपको?' उन्होंने क्लर्क की तरफ इशारा किया और पूछा। मैंने जल्दी से कहा, 'हाँ, हाँ, बताया है।' अब मैं समझा कि यह व्यवस्था यहाँ क्यों की गई है— क्योंकि हर आदमी एक ही जैसे सवाल पूछना चाहता था।

'लेकिन मैं यह जानना चाहता था...कि आप मरीज़ को देखना नहीं चाहेंगे?'

'अरे नहीं। मलेरिया है यह। इस वक्त मेरे पास ऐसे पचास मरीज़ हैं, देखने की ज़रुरत नहीं है। ज़रूरत होगी तो बताऊँगा। वैसे अगर आप चाहें तो उन्हें यहाँ लाकर दिखा दें।

'लेकिन वह बहुत कमज़ोर हो गई है। चल-फिर बिलकुल नहीं सकती...।'

'गाड़ी में बिठाकर ले आइये, उसे कुछ नहीं होगा...' उस कमरे में देखिये, ऐसे कितने मरीज़

पड़े हुए हैं। घर के बजाय यहीं देखना मेरे लिए ज्यादा आसान होता है।' मैं सोचने लगा कि ऐसे महत्वपूर्ण आदमी को इस तरह घर बुलाकर दिखाना सचमुच ठीक नहीं होगा।

'ठीक है, मैं समझता हूँ', मैंने कहा।

'और कोई ज़रूरत भी नहीं है। दो दिन में एकदम ठीक हो जायेंगी।... बिलकुल ठीक। चिंता की कोई बात नहीं है,' उन्होंने मुस्कराकर कहा जिससे मुझे ढाढ़स मिल सके।

'खाना? मैं खाने को क्या दूँ?'

'छाछ, और चावल जो खिलायें, बस, खाना हलका होना चाहिए।' दवा लेकर मैं बाहर निकल आया।

दरवाज़े पर लीला खड़ी थी। मुझे देखते ही बोली, माँ मुझसे बहुत गुस्सा है। मेरी तरफ देखती ही नहीं, सिर पर हाथ रखे लेटी हैं...।'

'मैं उनके लिए दवा ले आया हूँ इसे खाकर एकदम ठीक हो जायेंगी।' पत्नी मुझे देखते ही बोली, 'इतनी ज्यादा देर लगा दी!' सिरदर्द उसे अब भी परेशान कर रहा था। अम्मा खाना बना रही थीं और बच्ची को देखने वाला कोई नहीं था।

मेरी आवाज़ सुनकर अम्मा किचेन से बाहर आ गई। दवा देखकर वह बहुत खुश हुई। बोली, 'मैं भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि यह दवा खाकर यह एकदम ठीक हो जाय। मैं इन्हें चलते-फिरते देखना चाहती हूँ। खाने के लिए क्या बताया है?'

'भात और छाछ।' यह सुनकर उसने डर के मारे हाथ ऊपर कर दिये, 'बुखार में छाछ देना तो मैंने कभी नहीं सुना।'

'कोई बात नहीं। डाक्टर ज्यादा जानता है। अब वे दिन गये जब छाछ को खतरनाक माना जाता था,' मैंने अकड़कर कहा।

दूसरे दिन मैं डाक्टर के यहाँ गया, और उसे मरीज़ की हालत बताकर दवा और गोलियाँ ले आया, फिर दूसरे दिन गया और इसके बाद भी ले आया। सुशीला के लिए गोलियाँ निगलना भी मुश्किल हो गया था। उसका हमेशा दम घुटता रहता, पसीना आता रहता और बेहोश-सी पड़ी रहती। एक रात उसे इतना पसीना निकला कि बात करना भी मुश्किल हो गया और इशारों से ही वह अपनी ज़रूरत बता पाती थी। मैंने उसे कुछ गर्म-गर्म पीने को दिया और उसके पास बैठा उसकी देखभाल करता रहा, लेकिन उसकी इस दशा से मैं डर गया। रात के दो बजे थे। उसके पैर ठंडे हो रहे थे।

दूसरे दिन डाक्टर से मिलने पर मैंने उसे ये सब बातें बताईं। उसने सनक जाने के बारे में कुछ कहा और अंत में बोला, 'लेकिन अब हम यह गोली बंद नहीं कर सकते। मलेरिया की यह सबसे नई दवा है, इसका असर ज़रूर होगा। इससे शुरू में दिल पर थोड़ा असर ज़रूर पड़ता है, लेकिन चिंता की कोई बात नहीं है। पत्नी ठीक हो जायेगी। दवा बंद करना ठीक नहीं है।'

सुशीला हफ्ते-भर तक दवा लेती रही लेकिन उसका बुखार नहीं उतरा।

मैं डाक्टर के घर जाकर उससे मिला और सुशीला को घर चलकर देखने की प्रार्थना की? उसने कपड़े पहने और चल पड़ा। 'आम तौर पर इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती। इसके सब केस ऐसे ही होते हैं। लेकिन प्रोफेसर आप कहते हैं तो चलता हूँ...।' कार पर मुझे बिठाकर आ गया। उसका व्यवहार बहुत खुला और मित्रतापूर्ण था— डिस्पेंसरी से बाहर वह एकदम बदल गया था। वह हमारी बच्ची के साथ खेलता रहा, उसे कंधे पर चढ़ाकर चक्कर लगाया, मेज़ पर रखी मेरी सब किताबें देखीं, मुझे लगा कि वह किताबों का सचमुच प्रेमी है और दर्शन में भी उसकी रुचि है, और उसे भी अच्छा लगा कि हम दोनों की रुचियां एक सी हैं। जब उसे पता लगा कि मैं लिखता भी हूँ, तब तो वह गद्गद हो उठा। कहने लगा कि लेखकों के लिए मेरे मन में बड़ी श्रद्धा

है। दीवार पर लगे चित्रों में से एक-दो उसे बहुत पंसद आये। इस सबसे हम दोनों के बीच ऐसा तारतम्य उत्पन्न हो गया कि जब उसने मेरी पत्नी का मुआयना किया, तब लग रहा था कि मेरा कोई पुराना मित्र उसे देख रहा है, कृष्णा डिस्पेंसरी का साफ बात करने वाला डाक्टर नहीं।

उसने करीब आधे घंटे तक सुशीला का परीक्षण किया और अंत में घोषणा की, 'चिंता की कोई बात नहीं है...।'

पत्नी ने उससे पूछा, 'मैं चलने-फिरने कब लगूँगी?'

'बहुत जल्द। लेकिन सारी ज़िंदगी आप घर में चलती-फिरती सारे काम करती रही हैं, तो अब कुछ दिन आराम करने में क्या फर्क पड़ता है। बहुत से लोग इस तरह छुट्टी ही मना लेते हैं...।' फिर उसने अपना एक अनुभव बताया जिसमें एक घर की बहू-उसने नाम नहीं बताया-दो हफ्ते बिस्तर पर पड़ी रही, और ठीक हुई तो वह मोटी हो गई थी। उसका पति मेरे पास आकर चुपचाप कहने लगा कि आप इसे दो हफ्ते और बिस्तर पर भेज दो। इससे उसे अपनी सास की झिक-झिक से छुट्टी मिल जायेगी।' यह कहानी सुनकर सुशीला को इतनी हँसी आई कि वह देर तक हँसती रही और उसका मुँह लाल हो उठा। उसने सुशीला की नब्ज़ देखी और बोला, 'बुखार कम होने लगा है...। यह अच्छी बात है। अब अगर ये उस बहू की तरह पड़े रहना नहीं चाहेंगी तो दो-तीन दिन में बिलकुल ठीक हो जायेंगी,' यह कहकर उसने मुझे देखकर आँख मारी। फिर यह कहकर कि 'मैडम, दवा खाइये और ठीक हो जाइये,' वह चला गया। वह बहुत खुश और तन्दुरुस्त दिख रहा था। हमको भी उसके आकर देख जाने से विश्वास पैदा हुआ। बच्ची भी जब पड़ोस से खेलकर आई तो कहने लगी, 'माँ अब ठीक हो जायेगी।'

डाक्टर के घर आने का हमें इतना लाभ हुआ कि मैंने उससे कहा कि रोज़ देख जाया करें तो अच्छा होगा। उसने भी बात मान ली। उसकी कार की आवाज़ सुनते ही हम प्रसन्न हो जाते। हम उसे कॉफी पिलाते और वह आधा घंटा हमारे यहाँ रहता। वह बहुत-से विषयों पर बात करता। शाम को मैं दवाखाने जाकर दवा ले आता। इस तरह एक और हफ्ता बीत गया लेकिन सुशीला का बुखार कम नहीं हुआ। उसे अब तक बहुत सी दवाएं दी गई थीं लेकिन किसी का भी असर नहीं पड़ा।

एक शाम डाक्टर घर आया, कोट उतार कर अपना बैग खोला, और उसमें से सिरिंज तथा रक्त लेने की दूसरी चीजें निकालकर बोला, 'मैं आपका ज़रा-सा खून ले सकता हूँ?' इस तरह का डाक्टरी व्यवहार वह पहली दफा कर रहा था। यह सुनकर मेरी पत्नी डर गई और रोने लगी। मैंने उसे शांत किया। डाक्टर ने कहा, 'दर्द बिलकुल नहीं होगा इससे। मेरा विश्वास कीजिए।... मैं जरा सा रक्त निकालकर उसकी जाँच करूँगा और देखूँगा कि कौन सा कीड़ा उसमें घुसा आपको परेशान कर रहा है। फिर मैं उसे निकाल बाहर करूँगा...।'

उसने धीरे से सुशीला की बाँह से रक्त निकाला और उसे ट्यूब में बंद करके कहा, 'बस, इतना काफी है। अब हमें पता चल जायेगा कि कौन परेशान कर रहा है।'

दूसरे दिन सवेरे मुझे डिस्पेंसरी आकर मिलने के लिए कहकर डाक्टर चला गया। मैं रात-भर जागता रहा। अपने से पूछता रहा कि खून की जाँच करके डाक्टर क्या पता लगायेगा। पत्नी ने भी पूछा, 'ये खून क्यों ले गये हैं? कोई गंभीर बात है?'

'यह मलेरिया ही है लेकिन वह यह जाँचना चाहता है कि किस किस्म का मलेरिया है। जो हो, फिक्र की क्या बात है? यह डाक्टर बहुत अच्छा है और किसी न किसी ढंग से तुम्हें ठीक कर देगा।'

दूसरे दिन मैं डाक्टर से मिलने डिस्पेंसरी गया। उसने मुझे एक भूरे रंग का कागज़ पकड़ाया जिस पर गवर्नमेंट हास्पिटल की मुहर लगी थी। 'मैंने इसे जाँच के लिए वहाँ भेजा

था। यह उसकी रिपोर्ट है।' मैंने पर्ची को पढ़ा, उस पर लिखा था, 'विडोल टेस्ट पाज़िटिव—टाइफायड...।' यह पढ़ते ही मेरा गला सूखने लगा। 'डाक्टर, डाक्टर—,' मैं ज़ोर से बोला, लेकिन इस समय वह अपनी सीट पर था, इसलिए उसका व्यवहार बदल गया था। उसने संक्षेप में कहा, 'फिक्र मत करो। हलका अटैक है। ग्लुकोस, बारले और लिन्टोल की एक-एक बोतल ले जाओ — सफाई के लिए ज़रूरी है। शाम को मैं घर जाते हुए आऊँगा।' मैं सवाल पर सवाल पूछने लगा। उसने कहा, 'ज्यादा परेशान मत हो। मैं रोज़ टाइफायड के एक दर्जन केस देखता हूँ, चिंता की बात नहीं है।' इसके बाद वह कंपाउडर से बात करने लगा।

मैं घर लौटा तो ग्लूकोस, बारले और लिन्टोल की बोतल ले आया। फिर यह खबर सुनाई और आवाज़ में हलकापन लाकर यह भी कहा, 'बहुत हलका अटैक है, पैरा-टाइफायड हो सकता है। ऐसी बात है तो दो दिन में तुम ठीक हो जाओगी।' वह बोली, 'बच्ची को मुझसे दूर रखना। पिताजी को खबर कर दो। अपने को भी बचाकर रखना...।'

डाक्टर दोपहर के वक्त आया। वह भी टाइफाइड की बात को हलके ढंग से ले रहा था। हंसी-मज़ाक करते हुए बोला, 'मुझे टाइफाइड बहुत पसंद है। यही अकेली बीमारी है जो अपने नियम-कायदों से चलती है। इसका टाइमटेबिल निश्चित होता है और जो उसे समझकर चलते हैं, उन्हें यह परेशान नहीं करता। मैडम, ज्यादा परेशान मत होइए और अच्छी बहू की तरह कुछ हफ्ते आराम से लेटी रहिए...।' जब से सुशीला ने टाइफायड की बात सुनी थी, वह एकदम चुप हो गई थी। उसे इस हालत में देखकर बहुत परेशानी हो रही थी। मैंने उसमें हिम्मत भरने के लिए कुछ बात करने की कोशिश की लेकिन कामयाब नहीं हुआ। वह चुप रहकर मेरी बातें सुनती रहती थी। एक दिन उसने डाक्टर से कहा, 'आप तो मलेरिया बता रहे थे?' डाक्टर बोला, 'हाँ, मलेरिया ही लगता था। क्योंकि यह बीमारी कई तरह के रंग दिखाती है। इस पर यकीन नहीं किया जा सकता। लेकिन टाइफायड तो बीमारियों का बादशाह है, जिसने अपने नियम निश्चित कर दिये हैं। मामूली हरे साँप के सामने मैं कोबरा साँप पर ज्यादा विश्वास करूँगा, क्योंकि अगर आप उसकी आदत और मूड को समझ लें तो वह चुपचाप लौट जाता है...।'

मेरी पत्नी का कमरा अब अस्पताल के कमरे में बदल गया था। इसमें रखी मेज-कुर्सी और दूसरा सामान हटाकर हॉल में एक तरफ इकट्ठा रख दिया गया, और इसे अच्छी तरह साफ कर दिया गया। मैं पीछे से एक लकड़ी की खाट खींच कर लाया, उसे यहाँ पर बिछाया और उस पर कई मोटे गद्दे डालकर उसके ऊपर चादर और पैरों के स्थान पर शाल तह करके रख दी। फिर अपने कमरे से छोटी मेज लाकर कोने में लगाई—इस पर मैं लिखने का काम करता था—उस पर एक सफेद कपड़ा बिछाया और उस पर दवाएं, बोतलें और डिब्बे करीने से रख दिये—ग्लूकोज़ के डिब्बे पर पीला लेबिल था, बारले का हरा था और लिन्टोल का नीला—इनको मैंने कलात्मक ढंग से सजाकर रख दिया। फिर चारों तरफ संतोष की नजर डाली। डाक्टर ने भी इसे पसंद किया। फिर मैं एक स्टूल लाया और उस पर एक बर्तन में पानी रखकर एक बूँद लिन्टोल की डाल दी। पानी का रंग हलका सफेद हो गया और कमरे में अस्पताल की विशेष बू तैरने लगी। डाक्टर ने कहा, 'जब कभी मरीज़ को या उसके कपड़ों को छुओ तो इसमें हाथ डुबोकर धो लो, सबसे अच्छा कीटनाशक है यह...।' पत्नी को 'मरीज़' की संज्ञा दी जाने से मेरे मन में हलकी सी चुभन हुई। अब उसे पत्नी, बीवी या सुशीला न कहकर 'मरीज़' ही कहा जायेगा। उसे छूने से परहेज़—क्या वह अछूत हो गई थी? यह सोचकर मुझे दुख होता था लेकिन वैज्ञानिक तर्कों से मैं अपने मन को समझा लेता था।

मैंने सुशीला को धीरे से उठाया और उसे नए बिस्तर पर ले गया। कहा, 'देखो, कितना गुलगुला है! तुम इससे एकदम स्वस्थ होकर उठोगी...तुम्हारी सब बीमारियाँ दूर हो जायेंगी।

तुम्हारी कमर का दर्द भी, जो काफी पुराना है, खत्म हो जायेगा...।' डाक्टर भी इस इंतज़ाम को देखकर बहुत खुश हुए। 'मरीज़ के लिए इतना खूबसूरत कमरा मैंने आज तक नहीं देखा। यह आराम तुम्हें अस्पताल के स्पेशल वार्ड में भी नहीं मिलेगा...?' मैं एक कुर्सी लाया, उसे बिस्तर के बगल में रखा और बोला, 'और मैं यहाँ जमकर बैठूँगा।'

'ढेर सारा ग्लूकोज़, बारले वाटर और दवा-और मैडम अब आप नीबू का अचार नहीं माँगेंगी — हर चार घंटे बाद टेंपरेचर लिया जायेगा और कागज़ पर नोट किया जाएगा—अच्छा हो अगर दीवार पर एक चार्ट लगा दिया जाय—आपने इसे एकदम स्पेशल वार्ड ही बना दिया है...,' डाक्टर कहता रहा। मुझे यह सुझाव बहुत अच्छा लगा और एक बड़ा-सा कागज़ लाकर मैंने दीवार पर लगा दिया। इस पर मैंने तारीख और पत्नी का नाम भी लिख दिया। यह सब करने में मुझे मज़ा आने लगा था—हम सुशीला की शाही बीमारी के इलाज की तैयारी कर रहे थे जिससे वह एकदम स्वस्थ और तरोताज़ा होकर निकलने वाली थी...

जाने से पहले डाक्टर ने कहा, 'मेरे हिसाब से यह बीमारी का दूसरा हफ्ता चल रहा है, इसलिए अब ठीक होने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।' यह घोषणा हमें बहुत अच्छी लगी, और मैं अपना दिमाग पीछे दौड़ाकर फिर से गिनने लगा कि कहीं इससे भी ज्यादा दिन तो नहीं हो गये हैं...

'हमें उस दिन से गिनना चाहिए जब मैंने इन्हें पहली बार देखा था। उस हिसाब से ग्यारह या बारह दिन और लगना चाहिए...,' डाक्टर ने कहा।

'नहीं, डाक्टर साहब, इतने दिन नहीं होने चाहिए...,' मैंने कहा। मैं चाहता था कि मेरी गिनती ही सही निकले। लेकिन डाक्टर ने मेरी बात की उपेक्षा करते हुए कहा, 'मैं कोशिश करूँगा कि ग्यारह दिन में इनका बुखार उतर जाये, और यह देखना आपका काम है कि यह दुबारा न चढ़े...।'

'हम पूरी देखभाल करेंगे। आप हम पर निर्भर कर सकते हैं।'

इसके बाद हमारी दिनचर्या एकदम बदल गई। मैं रात को बहुत कम सोता। छह बजे सुबह जग जाता और उसका टेंपरेचर लेता। छह बजे से शुरु करके रात के दस बजे तक हर चार घंटे बाद टेंपरेचर लेना होता था। सवेरे 102 डिग्री टेंपरेचर होता। जैसे-जैसे दिन चढ़ता, यह बढ़ता जाता और 104 डिगरी तक पहुँच जाता। मैं धड़कते दिल से थर्मामीटर में पारे का निशान चढ़ते देखता...। जब मैं चमकते हुए केस से थर्मामीटर निकालता तो उम्मीद करता कि बुखार कम निकलेगा। फिर जब उसे सुशीला की ज़बान के नीचे रखता तो प्रार्थना करते हुए सोचता जाता कि कम निकले-यह इन्तज़ार कोर्ट के फैसले की तरह लगता था। फिर रोशनी के सामने थर्मामीटर को लेकर 102 और 104 डिगरी के बीच उसकी गति को देखना मेरे लिए यह बहुत डरावना काम हो गया था—मुझे अब थर्मामीटर से नफ़रत होने लगी थी, वह न्यायालय के जज की तरह लगने लगा था। मैं अपने से कहता, 'हो सकता है, यह थर्मामीटर ही खराब हो। इसे तोड़कर नया ले आना चाहिए।' पत्नी पूछती कि 'कितना है?' तो मैं उसे एक या दो डिगरी कम करके ही बताता। फिर चार्ट में नोट कर देता। जब मुझे करने को कुछ न होता, तब मैं 102 और 104 के बीच चढ़ते-उतरते चार्ट को ही देखता रहता। अब स्वर्ग की कल्पना मैं ऐसी जगह के लिए करने लगा जहाँ मनुष्य का तापमान सामान्य और 100 डिगरी के बीच ही बना रहता हो।

मरीज़ का यह कमरा अपनी अलग ही दुनिया थी। यहाँ की इच्छाएं बाहर रहने वालों की इच्छाओं से भिन्न थीं। यहाँ एक ही इच्छा होती थी, कि चार्ट की रेखा नीचे उतर आये। सबसे बड़ा संतोष यह होता कि शरीर के सब भाग ठीक से काम करते रहें, जिसके बारे में सामान्यतया कोई नहीं सोचता। 'मरीज़ को भूख लगी है।' कितनी अच्छी बात है!' 'मरीज़ को खाना अच्छा

लग रहा है। अरे वाह...।' 'मरीज़ ठीक से बात कर रहा है। बड़ी खुशी की बात है। वगैरह-वगैरह।' तकलीफ की इन्तिहा तब मानी जाती जब इन मानकों से कुछ अलग होता। डाक्टर दिन में दो बार आता और हँसी-खुशी की बातें करता। कहता: 'बिलकुल ठीक चल रहा है। कोई गड़बड़ नहीं है। टाइफायड ऐसे ही ठीक होता है...।' हर बार इसी तरह बात करके डाक्टर चला जाता। मैं कुर्सी पर बैठा सुशीला को सोते देखता रहता, उसे हर घंटे दवा या ग्लूकोज़ या बारले वाटर पिलाता, मुँह खोलकर उसमें डाल देता। मैं रात को नौ बजे तक यहीं बैठता, जब तक उसके माता-पिता, जो कुछ दिन पहले यहाँ आ गये थे, रात के समय उसके पास बैठने की ड्यूटी नहीं संभाल लेते। लेन्टाल से अपना आचमन करके मैं अपने कमरे में आता, नहाकर कपड़े बदलता, फिर खाना खाकर बच्ची को साथ लेता—जो साथ सोने के लिए मेरा इन्तज़ार करती रहती थी। उसे लेकर मैं हॉल के एक कोने में सो जाता था।

बच्ची का व्यवहार इन दिनों बहुत आदर्श था। वह दो-तीन दफा दिन में माँ के कमरे के सामने आती और उसे देखती रहती। उसे देखकर सुशीला की आँखें चमक उठती थीं। वह पूछती कि खाना खा लिया है या नहीं, फिर अपनी कमज़ोर आवाज़ में उससे कई सवाल करती, लेकिन वह कोई जवाब नहीं देती थी। उसमें एक संकोच समा गया था। वह माँ के सामने अजनबी की तरह व्यवहार करती थी। कभी एक कदम कमरे के भीतर रखती और बहुत खुशी महसूस करती थी। वह बोलती नहीं थी लेकिन वहाँ देर तक खड़ी रहती थी। जब वह लौटती तो माँ उसके कदमों की आवाज़ें सुनती रहती। वह दिन-भर अपने नाना-नानी के साथ रहती या पड़ोस के घर की अपनी सहेली के साथ खेलती रहती थी। नाना उसे बाज़ार ले जाते और खिलौने और मिठाई उसके लिए लाते। रात को वह मेरा इन्तज़ार करती कि कब मैं वहाँ से निकलकर उसके पास आऊँ। मैं जैसे ही नहा-धोकर साफ-सुथरा होता, वह मुझसे लिपट जाती और खाना खाते हुए मेरी गोद में बैठी रहती और दिन-भर की अपनी बातें बताती जाती। रात को मैं जहाँ सोता, उस कोने से पत्नी के कमरे की ओर देखता रहता, उसमें हो रही मद्धिम रोशनी, बातचीत की धीमी आवाज़ें सुनता, और जब भी उसमें कोई हलचल होती, चौंककर उठ बैठता था। एकाध दफा जब खर्राटे जैसी कोई आवाज़ होती, मैं दौड़कर उसके कमरे में पहुँच जाता, लेकिन देखता कि वह आराम से सो रही है और उसकी माँ या पिता कुर्सी पर बैठे हैं।

मेरे माता-पिता नहीं आ सके थे। पिताजी हर साल पड़ने वाले दमे के हमले से परेशान थे, इसलिए माँ उन्हें अकेला नहीं छोड़ सकती थी। वे हर रोज़ हमें पत्र लिखते थे जिसका उसी दिन जवाब देना जरूरी था। अपने अन्य संबंधियों को भी नियमित रूप से लिखना पड़ता था। हैदराबाद में भाई था, वेल्लोर में बहन थी, दूसरी बहन दिल्ली में थी, वे सब हमें उत्साह बढ़ाने वाले पत्र लिखते थे और चाहते थे कि उन्हें रोज़ जवाब दिया जाये। वे लिखते, 'टायफाइड खतरनाक बीमारी नहीं है। इसमें मरीज़ की देखभाल सही ढंग से होनी चाहिए।' जो मिलता यही बात फार्मूले की तरह हमें बताता, अंत में बिना इसका अर्थ समझे मैंने इसे सुन लेना शुरू कर दिया। मेरे मित्र और कॉलेज के साथी, बहुत से लोग रोज़ घर आते, उनमें से कुछ तो इस प्रकार बचकर खड़े होते कि छूत न लग जाय, और कुछ इसकी परवाह किये बिना मिलते-जुलते थे।

मैं कलेन्डर देखना ही भूल गया। उसी जगह वे ही काम रोज़-रोज़ करते रहने से दिनों की गिनती भी याद नहीं रही। समय तेज़ी से निकलता जा रहा था। हर तीन घंटे बाद दवा की खुराक, दो-दो घंटे बाद खाना, लेकिन ये तीन और दो घंटे एक-के-बाद एक इस तेज़ी से बीत रहे थे कि दो खुराकों के बीच कोई भी अंतर प्रतीत नहीं होता था।

लेकिन ये काम मुझे अच्छे लगने लगे थे। इनके कारण मैं पत्नी के इतने समीप रहने लगा

था कि उससे मुझे बहुत संतोष महसूस होता था। मैं नर्स की तरह उसकी सेवा कर रहा था। इस बीमारी के कारण हम दोनों एक-दूसरे के बहुत करीब आ गये थे। मैं कुर्सी पर बैठा उसे अखबार की मनोरंजक घटनाएं बताता रहता था। वह बहुत धीरे-धीरे फुसफुसाकर बात करती थी। एक दिन बोली, 'पिताजी कह रहे थे कि ठीक हो जाओगी तो तुम्हें पाँच सौ रुपये दूँगा।'

'अरे वाह, फिर तो फटाफट ठीक होकर अपना इनाम वसूल करो।'

'उसके बिना भी मैं जल्दी ठीक होना चाहती हूँ।' घर में गहरी शांति बनी रहती थी, सिवा बच्ची की बातचीत के जो वह नाना-नानी से करती, या कभी-कभी वह अपने-आप गाना गाने लगती थी।

इस बीच एक घटना हुई। ठेकेदार और शास्त्री एक दिन घर आये। 'अरे, आओ, आओ,' मैंने उन्हें देखते ही कहा, और उन्हें अपने कमरे में ले गया, लेकिन अब वहाँ न मेज़ थी, न कुर्सी। मैंने कहा, 'मेज़ और कुर्सियाँ सब पत्नी के कमरे में हैं। उसे टाइफायड हो गया है।' शास्त्री फौरन बोला, 'हम ज़मीन पर बैठ जाते हैं।' और वे ज़मीन पर ही बैठ गये।

दूसरी बातों के बाद शास्त्री ने कहा, 'उस मकान का क्या करना है? वे लोग अभी तक उसे रोके हुए हैं। एक और खरीदार लेना चाहता है—' मुझे याद आया, मकान को देखे काफी दिन हो गये थे। मैं बोला, 'इस बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिला।... अच्छा एक मिनट ठहरो।' यह कहकर मैं पत्नी के पास गया और कहा, 'सुशीला, उस मकान के बारे में क्या जवाब दूँ?' उसे बात समझने में वक्त लगा। फिर बोली, 'तुम्हें पसंद है वह?'

'हाँ, घर तो अच्छा है— अगर खरीदना हो तो...।'

'जब मैं ठीक हो जाऊँ, तब इसका फैसला करें...,' वह बोली।

'ठीक है।' मैं उसकी बात से सहमत था। उनके पास वापस लौट कर बोला, 'इस वक्त मकान के बारे में फैसला करना संभव नहीं है। अगर मेरा इन्तज़ार करने में आपको नुकसान हुआ हो तो...', मैं कहने लगा, और अब मुझे मकान बुरा लगने लगा। मुझे याद आया कि उसकी लैवेटरी में सुशीला की क्या हालत हुई थी। वे वापस चले गये। चलने से पहले उन्होंने भी यही कहा, 'इस रोग में देखभाल ही सबसे ज़रूरी होती है।'

'हाँ, जानता हूँ।'

ठेकेदार कहने लगा, 'गलत न समझें तो एक बात कहूँ?'

'हाँ, हाँ, ज़रूर कहो।'

'इन अंग्रेज़ी डाक्टरों का भरोसा नहीं करना चाहिए। मेरे बेटे को टाइफाइड हुआ था, डाक्टरों ने तरह-तरह की दवाएं दीं और खाना एकदम बंद कर दिया। वह बीस दिन बिस्तर पर पड़ा रहा लेकिन ठीक नहीं हुआ। फिर किसी ने उसे एक घरेलू दवा दी और मैंने उसे सब कुछ खिलाना शुरू कर दिया, और दो दिन में वह ठीक हो गया। इन डाक्टरों को तो फटकने नहीं देना चाहिए। ये तो हमेशा खाना-पीना एकदम बंद कर देते हैं और मरीज़ को भूखा ही मार डालते हैं। मरीज़ को जो वह चाहे खाने को दो और कोई भी बुखार हो, उतर जायेगा। मेरा तो यही उसूल है।'

सुशीला के माता-पिता भी बड़े परेशान थे। दोनों को बेटी से बहुत लगाव था। मेरी सास ऐसे समाज में पली थीं जिसमें दामाद को बहुत इज्ज़त दी जाती थी, इसलिए वे मेरे सामने निकलती भी नहीं थीं और न मुझसे बात करती थीं। मेरे ससुर बहुत मिलनसार थे। उनकी गाँव में काफी ज़मीन थी, इसके अलावा वे मद्रास की अनेक फर्मों के डायरेक्टर भी थे। हमेशा इधर-उधर घूमते और तरह-तरह के लोगों से मिलते रहते थे, जिसके कारण उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था। इसलिए अपनी उम्र के बावजूद—अब वे साठ पार कर चुके थे—सुशीला उनकी आखिरी संतान

थी—वे अपनी बातचीत और आदतों में बहुत खुले हुए थे। वे हमेशा मुझे बड़ा परिवार न बनाने की ताकीद किया करते थे—'तुमसे एक नातिन हमारे लिए काफी है। हम इसी से संतुष्ट हैं।' अपनी उम्र के लिहाज़ से वे बड़े हँसमुख भी थे। लेकिन इन दिनों वे बहुत परेशान थे। बेटी के रोग ने उन्हें बेहद उदास कर दिया था, लेकिन हलकी-फुलकी बातों में इसे छिपाये रखने की कोशिश करते थे, जिससे कहीं मैं अपना धीरज न खो दूँ। रात-भर बेटी के सिरहाने बैठे कोई किताब पढ़ते रहते और उससे भी बहुत प्यार लेकिन भावुकता दिखाये बिना बात करते थे। कहते, 'सुशीला, मुझे ज्यादा तंग मत करो। दुनिया वैसे ही कोई बड़ी अच्छी जगह नहीं है, जो तुम भी दवा न पीकर इसे और बढ़ाओ...।' मुझसे उन्होंने कहा, 'मेरी पत्नी निश्चित रूप से मानती है कि अगर तुम इसे उस लैवेटरी में न जाने देते तो यह बीमार न पड़ती।'

वे सारा दिन अपनी नातिन के साथ बिताते, उसे पढ़ाते, कहानी सुनाते, बाजार घुमाने ले जाते। उन्होंने उसे बिगाड़ भी दिया था, कहते थे, 'मैं बच्चों को बिगाड़ने में विश्वास करता हूँ, बच्चों को नहीं तो और किसको बिगाड़ा जायेगा?' हमने तीन साल में लीला को जो-जो सभ्य व्यवहार सिखाने की कोशिश की थी, वह सब उन्होंने इन दो-तीन हफ्तों में खत्म कर दिया था। अब वह बाल-सिपाही की तरह बातचीत करती थी—खिलौना सिपाही अगर बातें कर सकता, तो उसकी तरह—और हमेशा नाना के कंधों पर सवार होकर चलने की ज़िद करती या नानी की गोद में चढ़ी रहती। हम उसे बड़े ध्यान से और काफी कम खिलाते थे लेकिन नानी हर वक्त खिलाती ही रहती थीं। और हम उनसे कुछ कह भी नहीं सकते थे।

उनका विश्वास था कि उनकी बेटी पर ज़रूर किसी की बुरी नज़र पड़ी है और उस मकान में ज़रूर भूत रहता है जिसने उस परा हमला किया है। उन्होंने मुझसे कहा, 'किसी नए मकान में इस तरह जाना नहीं चाहिए। कुछ कहा नहीं जा सकता...तुम्हें क्या पता कि उसमें पहले जो लोग रहे उनके साथ क्या बीती, और वे उसे क्यों छोड़ गये? शाम को वे बाहर गईं और समीप के एक मंदिर में बेटी की रोग-मुक्ति के लिए देवता से प्रार्थना कर आईं। फिर वह रोज़ वहाँ जातीं और भभूत लाकर बेटी के मुँह पर लगातीं, सिंदूर भी माथे पर लगातीं। वे घर चलाने में हमारी मदद करतीं, अम्मा भी उनकी बहुत इज्ज़त करती थी। दिन-भर किचेन से दोनों की आवाज़ें आती रहतीं, वे अपनी ज़िंदगी की कहानियाँ एक-दूसरे को सुनातीं और दूसरी बातों की चर्चा करतीं। मेरी सास ने अम्मा की सहायता से एक ओझा को घर पर बुलाया। एक शाम एक आदमी ने घर आकर दरवाज़ा खटखटाया। मेरी बेटी ने सबसे पहले उसे देखा। ससुरजी अपने कमरे में झपकी ले रहे थे और सास किचेन में थीं। बेटी सामने के बरांडे में अपनी गुड़िया से खेल रही थी, उसने एक आदमी को फाटक से भीतर आते देखा। उसे देखते ही बच्ची ने चीख मारी और दौड़कर भीतर अपनी माँ के कमरे के दरवाज़े पर खड़ी हो गई। वह काफी डरी-सी लग रही थी। मैं मरीज़ का सिर सहला रहा था क्योंकि यही समय था जब उसका बुखार तेज़ होता और सिर में दर्द होने लगता था।

'क्या बात है, लीला?' मैंने पूछा।

'एक खराब आदमी आया है। उसे देखकर डर लगता है।' उसने बाहर इशारा करते हुए कहा।

मैं उसके साथ बाहर गया। देखा, एक बड़ा सा आदमी जिसके माथे पर भभूत लगी है, गले में मोटी-सी माला लटक रही है और बाल उलझे हुए हैं, सामने खड़ा है। मैंने उसे भिखारी समझकर कहा, 'आगे जाओ।'

'मैं भिखारी नहीं हूँ। मुझे यहाँ बुलाया गया है,' वह बोला।

तब तक मेरी सास बाहर निकल आई थीं और उसे देखकर बड़ी इज़्ज़त से उसे भीतर ले गईं।

'ये सुशीला को देखने आये हैं', यह कहकर वे उसे सुशीला क कमरे में ले आईं। वह बिस्तर के पास रखी कुर्सी पर बैठ गया। सुशीला भी उसे देखकर डरने लगी। उसकी माँ ने कहा, 'स्वामीजी तुम्हें देखने आये हैं।' मैं दरवाज़े पर खड़ा देर से यह तमाशा देख रहा था लेकिन सास के सामने कुछ कह भी नहीं सकता था, और यह भी नहीं जानता था कि स्वामीजी मुझे किस तरह लेंगे।

उन्होंने सुशीला की नब्ज़ देखी और आँखें बंद कर कुछ मंत्र पढ़े। फिर थोड़ी-सी भभूत हाथ में लेकर उसके माथे पर लगाई और पीले धागे में लगा एक तावीज़ उसकी कलाई पर बाँध दिया। इसके बाद जब वे कमरे से बाहर निकले तो सास ने उन्हें आसन पर बिठाया, एक गिलास दूध पीने को दिया, थाली में नारियल और सिंदूर के साथ एक रुपया उन्हें भेंट किया। इसी समय डाक्टर की कार घर के सामने रुकी और उसके कदमों की आवाज़ सुनाई दी। मुझे शर्म आई और मैं सोचने लगा कि स्वामी किसी तरह वहाँ से चला जाय। डाक्टर भी उसे देखकर मुस्कराया। स्वामी डाक्टर को देख रहा था। लेकिन कोई भाव व्यक्त नहीं कर रहा था। मैं धीरे से बोला, 'मेरी सास का इलाज है...।' उसने कहा, 'नहीं, इन लोगों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए। इन लोगों में भी कुछ ज़रूर होता है जिसे हम नहीं जानते। जब हम उसे समझ लेंगे तब हम डाक्टर लोग पूरा इलाज कर सकेंगे। यह कहकर उसने मुझे देखकर आँख मारी। मेरी सास यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और डाक्टर से बोलीं, 'आपको हम पुराने ज़माने के लोगों को भी कभी-कभी अपने ढंग से कुछ करने देना चाहिए।' मैं डाक्टर को लेकर सुशीला के कमरे में चला गया और स्वामीजी भी यह कहकर कि 'परमात्मा आप सबकी चिंताएं दूर करें,' विदा हुए।

डॉक्टर मरीज़ के सिरहाने आ गये। उन्होंने उसकी बाँह हाथ में ली। उस पर बँधा तावीज़ देखा और पूछा, 'अब कैसा लग रहा है आपको?' सुशीला ने उसकी तरफ देखकर मुस्कराने की कोशिश की। फिर पेट की तरफ इशारा करके बताया, 'यहाँ बहुत दर्द होता है।' डाक्टर ने वहाँ उंगलियों से दबाकर देखा। फिर चार्ट की जाँच की और कहा, 'चार बजे का टैंपरेचर अभी नहीं लिया?'

'नहीं।' यह सुनकर उसने थर्मामीटर उठाया और उसे साफ करके टैंपरेचर लिया। मेरे ससुर ने, जो बाहर दरवाज़े पर खड़े थे, पूछा, 'कितना है?' 'सामान्य है,' उसने जवाब दिया। ससुरजी ने मरीज़ के बारे में दो-तीन सवाल पूछे, फिर चले गये। डाक्टर ने सुशीला का देर तक मुआयना किया, फिर बाहर निकले। मैं भी उनके साथ-साथ आया। कार में बैठने से पहले उन्होंने पूछा, 'आइसबैग है?'

'नहीं।'

'मैं भेज दूँगा। जब भी 102 से ज्यादा टैंपरेचर हो तो उसमें बर्फ रखकर सिर पर रखना।'

'टैंपरेचर कितना था?'

'कुछ ज्यादा ही है। लेकिन डरना मत, 105 है लेकिन इस बुखार में कभी-कभी हो जाता है। बर्फ रखना।' यह कहकर वे चले गये।

मैं दिन-भर उसके पास बैठा माथे पर बर्फ रखता रहा। बंबई आनंद भवन, जहाँ उस दिन सवेरे हमने नाश्ता किया था, और जहाँ से ही शायद उसे यह टाइफायड भी लगा था, वहाँ रेफ्रिजेटर था और बर्फ भी मिलती थी। मैंने दस पौंड का एक टुकड़ा खरीदा, उस पर बुरादा लगा था और वह जूट के बोरे में लिपटी थी। बोरे को खोलकर मैंने बर्फ पर लगा लकड़ी का बुरादा साफ किया और हथौड़े से उसके छोटे-छोटे टुकड़े किये, जो आइसबैग में भरे जा सकते थे। मुझे इस बात का गर्व था कि मैं हथौड़ा इतनी सफाई से बर्फ में मारता था कि उसके टुकड़े न बहुत ज्यादा बड़े होते थे और न बहुत छोटे, वे ठीक उसी आकार के होते थे जिन्हें आराम से आइसबैग के मुँह में डाला जा सकता था।... बर्फ भीतर जाने पर बैग जिस तरह फूलता जाता था, उसे

देखना भी मुझे बहुत अच्छा लगता था, मैं उसे हाथ में उठाकर देखता कि सही वज़न हुआ है या नहीं। इसे तैयार करके मैं भीतर ले गया और तौलिये से पकड़कर सावधानी से उसके माथे पर रखा। एक हाथ से मैं उसे उसके माथे पर दबाता, दूसरे में तौलिया पकड़कर बहने वाली पानी की बूँदें पोंछता जाता। कुछ देर बाद मेरी हथेली ठंडी होकर सुन्न पड़ने लगी और उसका माथा सर्दी की सुबह संगमरमर की तरह चिकना हो गया फिर बैग के भीतर की बर्फ जब धीरे-धीरे पिघलती तो उसमें गर्र-गर्र की आवाज़ होती, और अनुभव के बाद मैं जान गया कि कितनी बर्फ पिघल चुकी है। और कितनी अभी बाकी है। मरीज़ के इस कमरे में होने वाली हर बात मुझे गहरे महत्व की और तकनीकी नियमों के अनुसार की जाने वाली प्रतीत होने लगी। ये बारीकियाँ देख-समझकर मुझे बहुत सुख और संतोष होता था, इतना कि एक दिन मैंने इस अनुभव पर एक कविता ही लिख डाली। मैं अपने बायें हाथ से उसके सिर पर बर्फ रख रहा था। वह सो रही थी और सोते में ही कुछ-कुछ कहती भी जाती थी। मैं उसे देख रहा था कि एक रंगीन तितली कहीं से आई और उसके ऊपर स्थिर हो गई। मैंने बैग माथे पर सँभालकर रख दिया और दौड़कर कमरे में से कापी और पेंसिल उठा लाया। कापी घुटनों पर रखी और उसे बोलते देखते हुए कविता लिखने लगा:

कैलास पर्वत बर्फ का अंबार है विशाल
जहाँ शिव और पार्वती करते हैं लीला,
गिरती हैं उस पर अलौकिक किरणें,
शानदार इन्द्रधनुष, यहाँ भी हमारे लिए
ईश्वर ने भेजा है उस बर्फ का एक टुकड़ा
पारे की रेखा को नीचे गिराने के लिए...

यहाँ बुरादे में से उड़ता है ठंडा धुआँ
जिसमें पर्वत का प्रकाश प्रतिबिंबित
नहीं होता, मेरा चेहरा झलकता है...

यहाँ एक युद्ध हो रहा है भयंकर,
रुकता नहीं है यह, जारी रहता है
लाल थैले के दोनों पार निरंतर,
लेकिन ताप अभी तक ठंडा नहीं हुआ,
बर्फ ही पिघलती चली जाती है,

और यह तथ्य था, बर्फ बड़ी तेज़ी से पिघलती चली जा रही थी। मुझे हर बीस मिनट बाद बर्फ के नए टुकड़े तोड़ने पड़ते थे।

रात के समय माथे पर बर्फ रखना ज़रूरी नहीं था लेकिन दो दिन बाद ज़रूरी हो गया। आधी रात के बाद ही सुशीला का टैंपरेचर कुछ कम होता था। अब उसका बोलना ज्यादा अस्पष्ट हो चला था, और समझने में भी उसे ज्यादा देर लगने लगी थी। अब वह अपने हाथ ऊपर-नीचे करने लगी और मैंने पूछा कि यह क्यों कर रही हो, तो कहने लगी कि उसमें ऊपर-नीचे कुछ होता है। फिर बोली, 'अब मैं यहाँ नहीं सो सकती, मेरा बिस्तर बदल दो।'

काफी मुश्किल से मैंने, सास और ससुर और अम्मा की सहायता से उसे बायें करवट लिटाया और बिस्तर को बदला। इस सब काम में पूरा घंटा लग गया। चादर बदलने में भी काफी समय लगता था लेकिन अब ऊपर से नीचे तक सब कुछ हटाकर नया बिस्तर बनाने में काफी मेहनत लगी। लेकिन इसका परिणाम अच्छा ही हुआ, अब वह आराम से लेट गई। पर घंटे भर बाद फिर

हाथ-पैर उठाने और गिराने शुरू कर दिये। मैंने समझाया, 'ऐसा नहीं करते। इससे बुखार बढ़ जायेगा।' लेकिन उसने घूरकर मुझे देखा और बोली, 'मुझे यह सब मत बताओ। मैं खुद अपनी देखभाल कर सकती हूँ!' मैं बैठ गया और फिर उसके माथे पर बर्फ रखने लगा। उसने थैला पकड़ कर उसे हटा देना चाहा। 'मुझे यह नहीं चाहिए। मैं इससे थक चुकी हूँ।' मैं किसी तरह समझा-बुझाकर बर्फ रखता रहा। वह कुछ कहती ही रही, चुप नहीं हुई। मैंने उसे शांत करने की कोशिश की, लेकिन वह नहीं मानी तो मैंने उसके पिता को बुलाया।

जब वे बाहर दरवाज़े पर आकर खड़े हुए तो बोली, 'आप सोचते हैं कि मैं बच्ची हूँ, जो डर जाऊँगी।'

'भीतर आ जाइये', मैंने पिताजी से कहा। वे भीतर आये और उसके बिस्तर के पास खड़े हो गए। वह उनसे कहने लगी, 'पिताजी, ये मुझे बहुत थकाये दे रहे हैं। मैं आइसबैग नहीं चाहती।'

'नहीं बेटा, इससे तुम्हें फायदा होगा। अच्छा, अब मैं रखता हूँ, ये नहीं रखेंगे।' यह कहकर वे कुर्सी पर बैठ गये और थैला मेरे हाथ से लेकर मुझसे बोले, 'अब तुम कमरे में जाकर थोड़ी देर आराम कर लो। सवेरे छह बजे से बैठे हो। अब मैं इसके पास बैठता हूँ।'

'आपको इससे परेशानी होगी। रात को तो आपको ही बैठना है। इस वक्त मैं ही देखता हूँ।'

'नहीं, कोई बात नहीं। एक दिन ओवर टाइम से मुझे फर्क नहीं पड़ेगा।' मैंने लिन्टाल में हाथ धोये और बाहर निकल आया।

मुझे कमरे से जल्दी बाहर आते देखकर बच्ची खुश हो उठी। वह ताली बजाते हुए मेरी तरफ दौड़ी। 'अभी नहीं, अभी मुझे मत छुओ। अभी तुम मुझसे दूर से ही बात करो। अभी मैं नहाया नहीं हूँ। रात को ही नहाऊँगा।' वह गुस्सा हो गई और बोली, 'तो मैं नाना के पास जाती हूँ।'

'वे माँ के पास हैं।'

यह सुनकर वह और जल-भुन गई। 'सब माँ के पास ही रहते हैं। मेरे पास कौन रहेगा?'

'तुम जाकर अपनी सहेली के साथ खेलो।'

'मुझे वह अच्छी नहीं लगती। मुझे वह मारती है।' यह बात सुनकर मैं मुस्कराया। मैं जानता था कि एक सेकिंड पहले वे गहरी दोस्त थीं और एक सेकिंड बाद लड़ने लगती थीं। फिर खेलने लगती थीं। इसलिए मैंने कहा, 'ठीक है। मेरे साथ चलो, और तस्वीरों वाली किताब देखो। बस, मेरे बिस्तर पर मत बैठना, उससे थोड़ी दूर बैठना।'

वह यह शर्त मानने को तैयार हो गई और मेरे कमरे में आ गई। मेरा कमरा अब ससुरजी के लिए मेहमान वाला कमरा बन गया था। एक कोने में उनका होल्डॉल और बक्स रखा हुआ था और खूँटी पर उनके कपड़े टँगे थे। मेरी मेज़ पर धूल जमा हो गई थी और किताबें बेतरतीब पड़ी थीं, उन्हें छुए बहुत दिन हो गये थे। दिन का मेरा सारा समय सुशीला के पास बीत जाता था और मैं यहाँ आ ही नहीं पाता था। 'मेरे अच्छे दिनों में यह मेज़ बेतरतीब रहती थी, और अब तकलीफ के दिनों में भी इसकी वही हालत थी। शायद मेज़ को ऐसा ही होना चाहिए। इसलिए इस बारे में सोचने की ज़रूरत ही नहीं है...।' मैं सोचता रहा कि सालों से मैं इसका टॉप बदलना चाहता हूँ लेकिन अब तक नहीं बदल सका। मैंने ज़मीन पर चटाई बिछाई और उस पर लुढ़क गया— जब तक वक्त है, आराम कर लूँ। बाप और बेटी समस्या को सुलझा लेंगे। जब तक बुलाया नहीं जाता, मैं नहीं जाऊँगा। बेटी, जो दरवाज़े पर खड़ी थी, पूछने लगी, 'पापा, मैं आ जाऊँ?'

'हाँ, हाँ, आ जाओ। यह मरीज़ का कमरा नहीं है।' मैं भूल गया कि अभी मैंने उससे क्या कहा था।

वह चटाई के कोने पर बैठ गई और पूछने लगी, 'इतनी दूरी ठीक है?'

'हाँ, बस, जब तक मैं नहा न लूँ, मुझे छूना मत।'

'क्या माँ का बुखार तुम्हारे हाथों से चढ़कर तुम पर बैठ गया है?'

'हाँ।'

'अब यह तुम्हारे भीतर घुस जायेगा?'

'नहीं।'

'लेकिन क्यों?'

'क्योंकि मैं बड़ा हूँ।' यह कहते हुए मुझे गर्व-सा महसूस हुआ। वह धीरे-धीरे सरक कर मेरे पास आती जा रही थी और हमारे बीच सिर्फ एक इंच जगह रह गई थी। मैंने कहा, 'इतने पास मत आओ। ज़रा और दूर रहो।'

'मैं तुम्हें छू नहीं रही,' उसने तर्क किया। मैं बहुत थक गया था और बोलना नहीं चाहता था, इसलिए करवट लेकर आँखें बंद कर लीं, और बोला, 'बेबी, तुम अच्छी बच्ची हो। मैं ज़रा सो लूँ। मुझे तंग मत करना।' उसने मेरी बात मान ली। लेकिन जैसे ही मैंने आँखें बंद कीं, उसने पैर फैलाकर मेरी पीठ में अँगूठा छुआया।

'अब यह क्यों कर रही हो?'

'मुझसे पलटकर मत सोओ। मुझे अकेले डर लगता है।' मैंने उसकी तरफ मुँह कर लिया और सोने की कोशिश करने लगा। उसने कहा, 'पापा!'

'अब मुझे तंग मत करो।'

'तुमने कहा था कि तस्वीरों की किताब दोगे। 'मैंने झुँझलाकर कहा, 'वहाँ रखी है, उठा लो। मुझे सोने दो।' वह उठकर मेज़ के पास गई, लेकिन मेज़ तक उसका हाथ नहीं पहुँचता था। 'पापा, मेज़ बहुत ऊँची है।' मैंने उठकर मेज़ पर रखी किताबों को देखा, लेकिन सब बड़ी-बड़ी, भारी और बड़ों के पढ़ने के लिए थीं और किसी में कोई तस्वीर नहीं थी। लेकिन इनके नीचे एक बड़ा सूचीपत्र था जिसमें तस्वीरें भी बनी हुई थीं। यह मैंने उसे दे दिया और इसे लेकर वह खुश हो गई। सूचीपत्र में घर के उपयोग की वस्तुओं की तस्वीरें थीं। वह बैठकर इसे देखने लगी। मैं थोड़ी देर के लिए सो लिया हालांकि वह बार-बार पूछती थी कि यह तस्वीर किस चीज़ की है और वह तस्वीर क्या है।

जब मैं सोकर उठा, शाम के पाँच बजे थे। सूचीपत्र ज़मीन पर खुला पड़ा था। लीला वहाँ से गायब थी। किचेन से उसकी आवाज़ आ रही थी। मैं भी वहाँ जा पहुँचा और कॉफी की माँग की। लीला नानी की गोद में जमी नया गाना सीख रही थी। मुझे देखते ही उठी और पास आकर बोली, 'अब मैं तुमको छू सकती हूँ?'

'अभी नहीं।'

'तुम्हें पता ही नहीं चला कि मैं कब वहाँ से चली आई,' उसने आवाज़ में विजय का भाव भरकर कहा—जैसे मैंने उसे कैद कर लिया हो और वह निकलकर भाग आई हो।

'हाँ, मुझे पता ही नहीं चला। तुम सचमुच बहुत होशियार हो।' यह सुनकर वह बहुत खुश हुई।

मरीज़ सो रही थी। उसके पिता मुझे देखकर उठे, बर्तन में हाथ धोये और मेरे पास आकर धीरे से बोले, 'अब तुम बैठ जाओ।'

'ठीक है।'

'वह थोड़ी देर बाद सो गई। अब चुपचाप सोने दो। आज ज्यादा बेचैन है...', यह कहकर वे चले गये।

मैं कुर्सी पर बैठ गया और आइस बैग हाथ में ले लिया। वह जाग गई और मेरी तरफ देखकर

बोली, 'तुम आ गये?' और कसकर मेरे हाथ पकड़ लिये।

'मैं तुम्हारे पास ही हूँ। फिक्र मत करो।'

'हाँ, ठीक है। पता है उस आदमी ने क्या किया?'

'किसने?'

'जो तुम्हारे बाद यहाँ बैठा था।'

'तुम्हारे पिता ने?' मैंने पूछा।

'उसने क्या किया, पता है? उसने मेरा नेकलेस उतारने की कोशिश की।' यह कहकर उसने अपना नेकलेस मुझे दिखाया। 'लेकिन मैंने नेकलेस उसके हाथ से खींच लिया। तब उसने मेरा हाथ मरोड़ा। बुरा आदमी था। अब मुझे छोड़कर मत जाना।'

मैंने उसकी बात मान ली। उसकी उंगलियाँ चादर पर घूमीं, जैसे कुछ ढूँढ़ रही हो, और किनारे पर पहुँचकर रुक गईं। उसने कंबल हटाने की कोशिश की। मैंने उसे रोका तो गुस्से से कहने लगी, 'रोक क्यों रहे हो? मैं जाना चाहती हूँ।'

फिर हाथ उठाकर बोली, 'बेबी कहाँ है?'

'किचेन में है।'

'उसे वहाँ कौन ले गया?'

'तुम्हारी माँ।'

'ठीक है। लेकिन ध्यान से रहें। बिना मुझे बताये बेबी को न ले जायें। कहीं गिरा न दें।' मैं उसका मतलब समझ गया। वह समझ रही है कि प्रसूति शय्या पर लेटी है। उसे पुरानी बातें याद आ रही थीं। बच्ची को लेने के लिए उसने हाथ ऊपर उठाये। मैंने धीरे से उन्हें नीचे कर दिया। फिर उसने गाना शुरू किया। उसकी कमज़ोर आवाज़ थी और शब्द ठीक से निकल नहीं रहे थे। क्या गा रही है, यह समझ में नहीं आता था। मैंने कहा, 'अब चुप हो जाओ। गाओगी तो जल्दी ठीक नहीं होगी।' लेकिन उसने गाना बंद नहीं किया। बोली, 'मैं तो गाऊँगी। मैं गाना चाहती हूँ। इससे तुम्हें परेशानी क्यों होती है?'

अब रात को भी उसका सोना बंद हो गया। वह रात-भर बातें करती या गाती रहती। अब डाक्टर हर रोज़ उसे ज्यादा ध्यान से देखता था। उसके हृदय की जाँच करके बोला, 'इन्हें सोने की ज़रूरत है। हमेशा टैंपरेचर बने रहना ठीक नहीं है। इन्हें आराम ज़रूर करना चाहिए। मैं एकाध दिन देखने के बाद इन्हें हल्की हिप्टोनिक दूँगा।'

बर्फ पिघलती रहती थी, हम सब सेवा करते थकते जा रहे थे, लेकिन उसका बुखार उतर नहीं रहा था।

सवेरे यह 103 से कम नहीं होता था और इसके बाद सारा दिन 105 के आसपास बना रहता। डाक्टर कहता, 'ये हमेशा बेचैन रहती हैं इसलिए टैंपरेचर बना रहता है। अगर छह घंटे भी सो लें तो एकदम फर्क पड़ जाय।'

डाक्टर का हँसमुखपन खत्म होता जा रहा था और वह ग़मगीन और बेबस दिखाई पड़ने लगा था। दूसरे दिन सवेरे वह अपने साथ एक और डाक्टर को लेकर आया जो मद्रास के मशहूर चिकित्सक थे। हम तो सपने में भी इतने बड़े डाक्टर को लाने की बात नहीं सोच सकते थे। सारे प्रदेश में उनकी ख्याति थी और उनकी मासिक आमदनी दस हजार रुपये बताई जाती थी। डाक्टर ने उनसे ज़रा पहले भीतर आकर कहा, 'यह भाग्य की ही बात है कि ये डाक्टर साहब किसी और केस के लिए यहाँ आये थे। यह भी भाग्य की बात है कि यहाँ आने के लिए तैयार हो गये। अब तुम उन्हें इज्ज़त से ले आओ। बहुत भले आदमी हैं।' मैं और मेरे ससुर साहब तेज़ी से बाहर निकले और बड़े आदर से उनका स्वागत किया, कार का दरवाज़ा खोला और उन्हें भीतर ले

आये। डॉ० शंकर उनकी उपस्थिति में बहुत असहज लग रहे थे।

इन महापुरुष ने घंटे भर तक मरीज़ का मुआयना किया। पहले पेट पर ठक-ठक की, उसे एक चाभी से खरोचकर देखा, बाँह उठाई, आँखों की पुतलियाँ खोलकर टार्च से रोशनी में देखीं, और टैंपरेचर चार्ट धीरे-धीरे पढ़ा। 'मिक्सचर दिखाओ', और बिना घूमे ही उसके लिए हाथ बढ़ा दिया। डॉ० शंकर ने उछलकर दवा की शीशी उठाई और उन्हें थमा दी। उन्होंने शीशी की दवा हिलाई और उसे देखा। फिर कहा: 'अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो इसे बंद कर देता, और हर दो घंटे बाद ग्लूकोज़ और ब्रांडी और संभव होता तो पाँच एम० एम० सोलोमाइन भी देता। इस समय मेरे ख्याल से यही सबसे अच्छी दवा है।'

'सर, आपको मरीज़ कैसा लग रहा है?' मैंने पूछा।

'...जीवन-शक्ति बहुत कम हो चुकी है, लेकिन कोई खराबी पैदा नहीं हुई है,' उन्होंने धीरे-धीरे कहा।

'तो अब क्या करना है?... क्या करना है?' ससुरजी ने परेशानी से कहा। दरवाज़े के बाहर मेरी सास खड़ी थीं और उनके पीछे खड़ी बच्ची आश्चर्य से यह सब देख रही थी। बड़े डाक्टर ने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन ससुरजी की चिंता उन्हें बोलने को विवश कर रही थी। हमारी तरफ से क्या कोई कमी हुई है? क्या इसे अस्पताल ले जायँ?'

'नहीं, नहीं। यहाँ आपका इन्तज़ाम बहुत अच्छा है।' डाक्टर की प्रशंसा सुनकर हम सब पुलकित हो उठे। 'अब हमें कुछ विशेष करने की जरूरत है?'

'मैं आपके डाक्टर को बताऊँगा', यह कहकर वे चुप हो गये।

वे कार की तरफ चले तो हमने कृतज्ञ भाव से पूछा, 'आप एक कप कॉफी ले लें?'

'धन्यवाद, मैं कॉफी नहीं पीता', उन्होंने जवाब दिया।

हमारे डाक्टर ने कहा, 'मैं आपसे मिलूँगा,' और उनको लेकर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे मैं बहुत खुश था। पहली दफ़ा सुशीला का टैंपरेचर 101 हुआ था। हफ्तों तक यह 102 से कम नहीं हुआ था। आज एक डिगरी कम हुआ। यह कितनी प्रसन्नता की बात थी! जैसे अँधेरे में रोशनी की एक किरण फूटी हो! जैसे ही डाक्टर की कार की आवाज़ सुनाई दी, हम सब उसे बताने दौड़े, 'आज टैंपरेचर कम हुआ है।'

'वाह, वाह! मैंने कहा था न कि...'

'और मरीज़ आराम से सो गया,' मैंने कहा, 'दरअसल वह अभी तक सो रही है।'

डॉक्टर ने उसकी जाँच की, लेकिन उसकी नींद नहीं खुली। 'यही दवा पिलाते रहो और खाना भी वही दो। आइसबैग बंद कर दो...। इसकी जगह गरम पानी की बोतल तैयार रखो। मैं फिर आऊँगा,' यह कहकर वह चला गया। इन हफ्तों में पहली दफ़ा मेरे हाथों में आइस बैग नहीं था। यह स्टूल पर अनछुआ पड़ा था। यह दृश्य मुझे अच्छा लगा। लेकिन बोरे में अभी भी पाँच पौंड बर्फ थी। मैंने ससुरजी से कहा, 'अब आप चाहें तो इसकी आइसक्रीम बना लें।' वातावरण एकदम हलका हो गया था। मरीज़ गहरी नींद सो रहा था। मुझे वहाँ करने के लिए कोई काम नहीं रहा था। मैं दोपहर तक वहाँ बैठा। फिर कीटाणुनाशक से हाथ धोये और ससुरजी से वहाँ बैठने को कहकर नहाने चला गया। नहाकर मैंने कपड़े बदले और बच्ची को उठाकर कंधे पर बिठा लिया। वह ताज्जुब से बोली, 'माँ बिलकुल ठीक हो गईं? अब मैं अंदर जा सकती हूँ?'

'हाँ, जा सकती हो, लेकिन अभी ज़रा इन्तज़ार करो... मैं पहले तुम्हें घुमाने ले जाऊँगा।' यह सुनकर वह खिल उठी। उसने अपना हरा कोट पहना, मेरा हाथ पकड़ा और बाहर आ गई। मैं उसके साथ सड़क पर आ गया। उसकी सहेली अपने दरवाज़े पर खड़ी थी। लीला बोली, 'पापा, इसे भी साथ ले चलो। वह बड़ी गरीब है।'

'गरीब का क्या मतलब...?' मैंने पूछा।

'कोई उसे पिपरमिंट खरीदकर नहीं देता', उसने बात साफ़ की।

'यह तुम्हें किसने बताया?'

'नानी ने,' उसने फुर्ती से जवाब दिया। उसकी सहेली हमारे साथ चल पड़ी। हम धीरे-धीरे आगे बढ़े। वे आपस में ज्यादा बात नहीं कर रही थीं, लेकिन ज़रा-ज़रा देर बाद खिलखिला पड़ती थीं। सड़क के अंत में मैं उन्हें एक दुकान पर ले गया और कहा कि जो चाहो खरीद लो। उन्होंने कुछ टॉफियाँ और हरे कागज़ में लिपटी दो सीटियाँ खरीदीं। जब हम लौटे तो दोनों लगातार सीटियाँ बजाने में जुटी थीं। इस सब में करीब एक घंटा लग गया था और मैं बड़ी शांति अनुभव कर रहा था। घर पहुँचा तो देखा कि बाहर डाक्टर की कार खड़ी है। 'ज़रा जल्दी चलो', यह कहकर मैं तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ा और वे भी भागकर आईं। दरवाज़े पर पहुँचकर लीला ने कहा, 'मैं अपनी सहेली के घर में खेलने जा रही हूँ', और उसके साथ चली गई। मैं भीतर गया। डाक्टर ससुरजी के साथ बात कर रहा था, पत्नी सो रही थी लेकिन उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी।

ससुरजी ने मुझे देखते ही घबराहट से कहा, 'बच्ची...बच्ची...।' कहाँ है वह?'

मैं समझ नहीं पाया। फिर बोला, 'वह पड़ोस में खेल रही है।'

'ठीक है, ठीक है, 'वे बोले। नज़र रखना उस पर... मैं इधर देख रहा हूँ।'

मैंने मरीज़ को देखा। वह ज़रा सफेद-सी लग रही थी, और साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। माथे पर पसीने की बूँदें उभर आई थीं। मैंने माथा छुआ तो वह ठंडा लगा।

'डाक्टर, टैंपरेचर घट रहा है।'

'हाँ हाँ, जानता हूँ', यह कहकर वह नाखून कुतरने लगा। मुझे लगा कि कुछ गलत हो रहा है। 'डाक्टर...बताना...', मैं पूछने को हुआ।

'ईश्वर के लिए सवाल मत पूछो,' उसने उतावली से कहा। फिर नब्ज़ देखी, कंबल हटाया और पेट पर हाथ फेरकर देखने लगा, पेट काफी पिचक गया था। उसने पेट पर ठक-ठक की और बोला, 'दौड़कर जाओ और कार में से दूसरा बैग उठा लाओ। पीछे की सीट पर रखा है...'

मैं लेकर आया तो वह बोला, 'गर्म पानी...जल्दी लाओ।' उबलते पानी में उसने तारपीन डाली और पेट पर पानी के फाहे लगाने लगा। फिर सिरिंज निकाली, उसकी सुई गरम की और बाँह में लगाई। सुई लगने से सुशीला हिली। 'शायद दर्द हो रहा है,' मैंने कहा। उसने जवाब नहीं दिया और फाहे लगाता रहा।

एक घंटे बाद उसने कंबल उढ़ा दिया और बैग बंद कर दिया। मैं चुपचाप खड़ा यह देख रहा था। इस बीच वह एक शब्द भी नहीं बोला था। मैं मूर्ति बना खड़ा था। दिखाई यही दे रहा था कि मरीज़ की छाती ऊपर-नीचे हो रही है। सारा घर चुप था। डाक्टर ने बैग उठाया, मेरे कंधे थपथपाये और होंठों पर जीभ फेरी। मेरा गला सूख गया था। लड़खड़ाती आवाज़ से बोला,' आप यहाँ और नहीं रहेंगे?' उसने गर्दन हिलाई और कहा, 'अब कुछ नहीं किया जा सकता। जो किया जा सकता था...।' वह कुछ क्षण खड़ा फर्श की तरफ़ देखता रहा, एक आह भरी, मेरा कंधा एक बार फिर थपथपाया और चलते हुए बोला, 'दो-ढाई घंटे में कुछ फ़र्क दिखाई दे सकता है।'

मैं पत्थर की तरह खड़ा उसके जूतों की आवाज़ सुनता रहा, फिर कार स्टार्ट होने की आवाज़ आई। कार के जाने के बाद घर-भर में शांति छा गई, बस, बीच-बीच में धड़-धड़ करती सांस की आवाज़, जो लग रहा था कि आत्मा की पुकार पर जेल का दरवाज़ा तोड़कर स्वतंत्र होने जा रही है।

इसके बाद डायरी से कुछ पृष्ठ:

बच्ची पड़ोस के घर में सोने के लिए बहलाकर भेज दी गई है। अम्मा उसके साथ रहेगी। आधी रात के बाद दो घंटे बीत चुके हैं। हम सब थककर चूर हो चुके हैं, इसलिए घर पर एक निस्तब्धता छा गई है—इसलिए भी कि हम दूसरे घर में सो रही बच्ची को ज्यादा डराना नहीं चाहते, और अपने ऊपर नियंत्रण रख रहे हैं। सुशीला का शरीर खिड़की के पास ज़मीन पर रखा है। कारण यह कि नियम है कि मृत व्यक्ति का शरीर, भले ही वह राजा का क्यों न हो, धरती माता के ऊपर ही रखा जाना चाहिए।

हम सब ज़मीन पर ही उसके चारों ओर बैठे हैं: उसकी माँ, पिता और मैं। हम आपस में बातें करते हैं, थोड़ी-थोड़ी देर बाद दुख से रोने लगते हैं, लेकिन थकान से हमारे शरीर बेहाल हैं। हम उसके निश्चेष्ट शरीर पर नज़र डालते हैं तो ठंड की कँपकपी से हमारे दाँत बज उठते हैं। धीरे-धीरे अपने अजाने हम दीवार से टिककर सो जाते हैं। सवेरा होता है तो हम सब ज़मीन पर लुढ़के नज़र आते हैं।

अब सबसे पहले क्रिया-कर्म करने के लिए पंडित और टिकटी उठाने के लिए कुछ लोगों को बुलाया जाता है। तभी पड़ोस के घर से बच्ची की आवाज़ सुनाई देती है। उसे वहीं दूध पिलाकर कपड़े बदल दिये गये हैं और एक लड़के के सुपुर्द कर दिया गया है जो कम से कम चार घंटे तक उसे बहलाये रहेगा। उसे ताज्जुब हो रहा है, कि सब लोग आज उसे घर से बाहर क्यों रखना चाहते हैं! जब वह घर के सामने होकर, अपना हरा रेशमी कोट पहने, जिसकी चमक चारों ओर फैल रही है, बाहर जाने के लिए निकलती है, तब मेरी नज़र उस पर पड़ती है।

पड़ोसी, संबंधी और मित्र आते हैं, और संवेदना व्यक्त करते हैं, एक के बाद दूसरे, और इसी तरह बार-बार संवेदना की नदी बहती रहती है। पंडित घर में इधर-उधर घूमते हुए कभी इस और कभी उस चीज़ की माँग करता है...। लाश उठाने वाले, जो देखने में मनुष्य नहीं लगते, बाँस और मूँज की रस्सी लेकर आ जाते हैं। सीढ़ियों के सामने घास-फूस जमा करके थोड़ी-सी आग जलाते हैं—यह आग हमारे साथ श्मशान घाट तक जायेगी।

घर के सामने बाँसों को बाँधकर एक टिकटी तैयार कर ली गई है। कुछ मित्र लाल आँखें लिये इधर-उधर खड़े हैं। मैं अंधा और गूँगा हो चुका हूँ, दिमाग़ सुन्न पड़ गया है।

विदा का क्षण आ गया है। उठाने वाले कुछ आवश्यक विधियाँ करके आगे बढ़ते हैं और चुपचाप सुशीला का शरीर उठा लेते हैं, जैसे वह खाली बोरा या बक्सा हो और बाँस से बनी टिकटी पर रखकर रस्सियों से बाँध देते हैं। उसका चेहरा आसमान की ओर देख रहा है, उस पर भगवा रंग चमक रहा है माथे पर सिंदूर लगा है और सिर के पास चमेली के फूलों की एक लड़ी झूल रही है।

उसके होंठ कुछ इस तरह नीचे की ओर मुड़े हुए हैं मानो धीरे से मुस्करा रही हो।... वहाँ इकट्ठा सब लोग हाथों में चावल के दाने उठा लेते हैं और एक-एक करके उसके मुख पर डाल देते हैं— हमारी ओर से उसके लिए यह अंतिम देय है।

उसे कंधों पर उठा लिया जाता है। मुझे एक बर्तन दिया जाता है जिसमें अग्नि है, और हम सामने की सड़क एलामन स्ट्रीट पर आगे बढ़ने लगते हैं। वहाँ होकर गुज़रने वाले एक क्षण रुककर हमारी ओर देखते हैं—मुझे उनके चेहरे हवा में तैरते दिखाई दे रहे हैं। सूरज की जलती किरणें हमारे ऊपर पड़ रही हैं। हम नदी—किनारे की बालू पार करके नल्लप्पा की झाड़ी के पास नदी पार करते हैं और उसके दूसरे किनारे पर बने श्मशान घाट में, एक छोटे-से द्वार से होकर, प्रवेश करते हैं।

चारों तरफ बेहद गर्मी है लेकिन मुझे महसूस नहीं हो रही। मैं कुछ भी महसूस नहीं कर पा रहा, न कुछ देख ही पा रहा हूँ। मेरी सब अनुभूतियाँ अस्पष्ट हैं, या नष्ट हो चुकी हैं।

रास्ते में वे दो बार टिकटी को सड़क के किनारे ज़मीन पर रखते हैं। सुशीला के चेहरे पर चार-छह मक्खियाँ बैठ गई हैं। वहाँ से गुज़रने वाले उसका मुस्कराता चेहरा देखकर दुख व्यक्त करते हैं। एक पागल-सा आदमी, जो एलामन स्ट्रीट पर रहता है, उसकी ओर देखकर रोने लगता है, और हमारे साथ-साथ चलना शुरू कर देता है, साथ ही मनुष्य के दुर्दम भाग्य को गालियाँ भी देता चलता है।

टिकटी ज़मीन पर रख दी गई है। वहाँ इमली और आम के घने पेड़ लगे हैं और छाया है जहाँ शांति छाई हुई है। गहन शांति...। दो-तीन स्थानों पर लाशें जल रही है, जिनके इधर-उधर बाँस और रस्सियाँ बिखरी पड़ी हैं, और थोड़ी दूर पर एक और दल लाश जलाने की तैयारी कर रहा है। हम बैठकर प्रतीक्षा करते हैं और मैं सोचने लगता हूँ—' यह जैसे कपड़े उतारने की जगह है जहाँ हम अपने शरीर छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं।' एक आदमी हाथ में रजिस्टर लिये आता है, मृतका का नाम, आयु और रोग दर्ज करता है, फीस वसूल कर उसकी रसीद देता है और आगे बढ़ जाता है।

सुशीला के चेहरे पर वे आधा दर्जन मक्खियाँ अब तक बैठी हैं। कई हफ्ते बाद मैं उसका चेहरा दिन की रोशनी में देख रहा हूँ और उस पर लंबे रोग का प्रभाव देख पा रहा हूँ—निरंतर के तेज़ बुखार ने उसे जलाकर बिलकुल पीला कर दिया है। जो नीली साड़ी मैं कभी उसके लिए लाया था, आज उसके शरीर पर है,जो उसी के साथ जलकर राख हो जायेगी।

पंडित और उठाने वाले बराबर कुछ न कुछ माँग रहे हैं और गोबर के कंडों की एक के बाद एक टोकरियाँ वहाँ लाकर डाली जा रही हैं।... उनकी कीमतों और अच्छी हैं या बुरी वगैरह पर आपस में बातचीत हो रही है। व्यापार यहाँ भी हमारे ऊपर हावी है। पेड़ के नीचे एक लंबे बालों वाला आदमी बैठा है जो भिक्षा माँग रहा है। मैं कुछ करने में समर्थ नहीं हूँ, इसलिए चुप देखता रहता हूँ...मैं अपने को कुछ भी करने लायक नहीं पा रहा, न किसी सवाल का जवाब दे पा रहा हूँ। बस, पंडितजी जो कहते हैं, उसे करता जा रहा हूँ। इसके बाद मैं नदी में जाकर स्नान करता हूँ, और वापस आकर पंडित जी जो भी करने या बोलने को कहते हैं, करता-कहता चला जाता हूँ।

सामने चिता बनाई गई है, उस पर सुशीला का शरीर रख दिया गया है और उसे ईंधन से ढक दिया गया है... सिर्फ चेहरा और छाती का कुछ भाग खुला है। मैं उस पर घी डालता हूँ और आग जला देता हूँ।

हम वापस घर लौट रहे हैं, सब एकदम चुप हैं। जब हम नल्लप्पा की झाड़ी से गुजरते हैं, तो एक बार फिर मुड़कर देखने से अपने को रोक नहीं पाता। दीवार के पीछे लपटें उठ रही हैं... उन्हें देखकर मन में एक अजाना दर्द उभर आता है। अब जीवन में कोई आश्चर्य और दुख नहीं आने हैं...इसलिए मैं निस्पृह होकर अग्नि को देखता रहता हूँ। मेरे जीवन का सबसे बड़ा सत्य मेरे सामने है...। इसके बाद और कुछ मुझे दुखी नहीं करेगा, न किसी में मुझे रुचि होगी।

4

दिन गुज़र रहे थे लेकिन उनमें एक विशेष खालीपन भर गया था। बेटी ही मेरी एक राहत थी जो साफ-सुथरे कपड़े पहने, जैसे हम सब बड़ों को चिढ़ाती, इधर-उधर घूमती-फिरती थी। मैं सोच नहीं पाता था कि यदि यह न होती तो मेरा क्या होता। नाना-नानी उसे अपने साथ ले जाने का आग्रह करते रहे लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया। वे ताज्जुब करते रहे कि मैं उसकी देखभाल कैसे करूँगा, परंतु प्रकृति आश्चर्यजनक ढंग से मनुष्य को बदलकर उसे परिस्थितियों के अनुरूप बना देती है। तीन-चार महीने में ही मैं उसे सही ढंग से नहलाने-धुलाने लगा और कामचलाऊ बाल भी काढ़ना सीख गया। मैं उसके कपड़े भी धोने और सुखा कर इस्तिरी करने लगा और उसकी फ्राकों और स्कर्टों की सही-सही गिनती करके रखने लगा। मैं अपने इस दोहरे रोल में बहुत अच्छी तरह फिट हो गया। एकसाथ पिता और माँ दोनों के कर्तव्य निभाना मुझे कठिन नहीं लगा। अब मेरी ज़िंदगी का यही एक उद्देश्य रह गया था कि लीला माँ की कमी महसूस न करे। मैंने अपना सारा अस्तित्व इसी की पूर्ति में लगा दिया। सवेरे से शाम तक मैं इसी में व्यस्त रहता था। मुझे उसे खुश रखना होता था और इसके लिए खुद भी खुश रहना ज़रूरी हो गया था— नहीं तो वह खुश नहीं रह सकती थी।

मेरी माँ कभी-कभी दो-तीन हफ्ते मेरे पास आकर रह जाती, और जब भी वह यहाँ मेरे पास होती, मैं गाँव में पिताजी की स्थिति को समझ सकता था, क्योंकि उनके लिए माँ के बिना एक दिन के लिए भी रह पाना संभव नहीं था। कुछ दिनों से वे बिलकुल निस्सहाय हो उठे थे, कुछ खाते भी नहीं थे, और माँ के बिना घंटा-भर भी रह नहीं पाते थे। उन्हें पता नहीं होता था कि उनके कपड़े कहाँ रखे हैं, कब खाने के लिए जाना चाहिए और क्या खाना चाहिए। मेरे पास हफ्ते-दो हफ्ते रह लेने के बाद लौटने पर उनकी सेहत सँभालने में महीनों लग जाते थे। माँ मेरे लिए बहुत अच्छी थीं और बिना शिकायत किये सब करती रहती थीं। लेकिन मैं उन्हें अपने पास हमेशा नहीं रख सकता था, मैं सोचता था कि 'ईश्वर ने मेरे लिए जीवन में विशेष परिस्थितियाँ दी हैं और मैं अकेला ही इनका सामना करूँगा, और अपने लिए किसी से सहायता नहीं लूँगा...।' यह निश्चय करके मुझमें एक अनोखा विश्वास उत्पन्न हो जाता था। इसके बाद फिर जब माँ गाँव जाने को तैयार हुई तो मैंने उससे हमेशा की तरह कुछ भी नहीं कहा। उसने कहा, 'किट्टू, बच्ची को मेरे साथ जाने दो। तुम इतने ज़िद्दी क्यों हो?' मैं सचमुच इस मामले में ज़िद्दी था। जब मैं उसे बस पर बिठाने गया, वह बहुत नाराज़ थी। वह बस में बैठ गई। मैं और बेटी बस के चलने का इन्तज़ार कर रहे थे। मैं जहाँ भी जाता, बेटी को हमेशा साथ रखता था, कालेज को छोड़कर। माँ ने फिर कहा, 'तुम व्यावहारिक बिलकुल नहीं हो, ज़िद्दी तो हो ही।...इसकी देखभाल कैसे करोगे तुम?' 'क्या यह कोई मुश्किल बात है', मैंने बहादुरी दिखाते हुए कहा 'ईश्वर चाहता कि मैं ये सब बातें सीख लूँ और मैं सीख भी गया हूँ। यह मेरी ज़िम्मेदारी है। मैं इससे मुक्त नहीं हो सकता।...' यह सुनकर माँ की आँखों में आँसू आ गये। 'मैं नहीं जानती थी कि इस ज़िंदगी में मुझे यह भी देखना पड़ेगा—हमारे परिवार में ऐसी घटना पहले कभी नहीं हुई है।' मैंने उसे रो लेने दिया। इस तरह की बातों का मुझे अभ्यास पड़ गया था और इन्हें मैं व्यापारी जैसी उपेक्षा से देखने लगा था। संवदेनाएं, हिम्मत बढ़ाने की बातें, शोक-प्रदर्शन और आश्वासन सब मेरे लिए एक समान थे। मैं

ऐसा पात्र बन गया था जिसमे संवेदनाएं और सहानुभूति लगातार उंड़ेली जाती रहती हैं—पिछले महीनों में मुझे ये इतनी ज्यादा मात्रा में प्रदान की गई थीं कि अब वह मुझे प्रभावित ही नहीं करती थीं, न मेरी समझ में उनका अर्थ ही आता था। मृत्यु और उसके सहयोगी साथियों ने आरंभ में मुझे झकझोर डाला था लेकिन अब उनका प्रभाव समाप्त हो गया था...

माँ ने अपना चेहरा फेर लिया, कि बच्ची उसकी आँखों में आँसू न देख सके। उसने पूछा, 'दादी, अब कब आओगी?' उसने आवाज़ को सँभालकर कुछ जवाब दे दिया। मैं नहीं चाहता था कि बच्ची जीवन के बारे में किसी भ्रम में रहे और सच्चाइयाँ न जाने। अब मैं उसे इसी प्रकार बड़ा करना चाहता था। इसलिए मैंने उसे बताया, 'अब माँ बहुत दिन तक नहीं आयेंगी। उन्हें गाँव में बूढ़े बाबा को देखना पड़ता है...।' इस तरह मैं मनुष्य-जीवन को भ्रमों से मुक्त रखना चाहता था। अगर हम जीवन की सच्चाइयों को जानें और उससे ज्यादा अपेक्षा न करें, तो भाग्य के उलट-फेर हमें ज्यादा परेशान नहीं करेंगे। बच्ची ने मेरी बात ध्यान से सुन ली। बोली, 'दादी अब कितने दिन बाद आएंगी?' इसका मेरे पास स्पष्ट जवाब नहीं था, लेकिन माँ यह सुनकर द्रवित हो उठीं और बोलीं, 'मैं जितनी जल्दी हो सका, आ जाऊँगी। बस, तुम्हारे बाबा ठीक रहने चाहिए।'

बस चालक ने सीटी बजाई। ड्राइवर सीट पर जाकर बैठ गया। एक औरत, जो माँ के पास गोद में एक टोकरी लिये बैठी थी, पूछने लगी, 'कहाँ जाओगी तुम?'

'कमलापुरम', माँ ने जवाब दिया, 'मेरा बेटा यहाँ नौकरी करता है...यह उसकी बच्ची है,' फिर फुसफुसाकर उससे बोली, 'इसकी माँ नहीं रही है...इसलिए मुझे अक्सर आना पड़ता है।' इसे सुनकर उसने हाथ उठाया और शोक जताया, 'हाय, बेचारी बिटिया, बेचारी...।' फिर आग्रह किया कि ऊपर उठाकर उसे देख लेने दें। उसने बच्ची के गाल छुए और उसकी कनपटी पर उंगलियाँ रखकर चटकाईं जिससे उसे किसी की नज़र न लगे। फिर वह बोली, 'कितनी प्यारी है! और लड़की है...।' फिर एक गहरी आह भरी, जिसे सुनकर माँ को फिर रोना आ गया। मैं चाहने लगा कि बस किसी तरह वहाँ से चल पड़े, लेकिन ड्राइवर उसे चला ही नहीं रहा था—वह किसी यात्री से बहस में उलझ रहा था— यह यात्री पूरा किराया नहीं दे रहा था और इसमें कुछ कटौती चाहता था... वह औरत अब पूछने लगी, 'तुम्हारा बेटा दूसरी शादी कब करेगा?' यह सुनकर मैं दंग रह गया और जवाब देते हुए माँ भी सकपकाईं। वह जानती थीं कि यह बात मुझे कितनी दुखी करती है...। वह नहीं चाहती थीं कि यह बात मेरे कानों में पड़े, लेकिन औरत सीधे मेरी तरफ देखकर कहने लगी, 'तुम्हें शादी ज़रूर करनी चाहिए, अभी तुम बहुत छोटे हो।' माँ यह सुनकर परेशान हो उठीं और उसे चुप कराने के लिए बोलीं, 'अभी ये सब बातें मत करो...।' लेकिन बुढ़िया को रोकना आसान नहीं था। वह फिर बोली, 'क्यों न करूँ? लड़के की अभी उम्र ही क्या है! फिर यह बच्ची को कैसे सँभालेगा?'

माँ ने इस बात की ताईद की, 'मैं भी तो यही कहती हूँ...।'

बुढ़िया ने बात आगे बढ़ाई, 'घर पर बीवी न हो तो मर्द बिगड़ जाते हैं।' मैंने निराश भाव से कंडक्टर को देखा, लेकिन उसे चलने की जल्दी नहीं थी। मैंने कहा, 'कंडक्टर, बस को देर हो रही है।'

'हाँ, साब, लेकिन यह आदमी मानता ही नहीं है...।'

और उस आदमी ने भी कहना शुरू किया, 'इन्हें ज़रा-सी दूर के चार आने चाहिए...।'

बुढ़िया कहे जा रही थी, 'हर मर्द को बीवी के मरने के बाद पंद्रह दिन के भीतर शादी कर लेनी चाहिए। नहीं तो वह बर्बाद हो जाता है। मैं अपने पति की चौथी बीवी हूँ और वह हमेशा तीन हफ्ते के भीतर शादी कर लेता था। चौदह बच्चे हैं और सब खुश हैं। इसमें क्या बुराई है?' वह इस तरह बोल रही थी, जैसे लड़ रही हो।

आखिरकार बस का भोंपू बजा और झटका लेकर उसने आगे बढ़ना शुरु किया। लीला मेरी गोद में चढ़ी बड़े ध्यान से यह तमाशा देख रही थी। बस चली तो माँ ने कहा, 'इसे हर शुक्रवार को तेल लगाकर नहलाना मत भूलना। नहीं तो इसके सारे बाल गिर जायेंगे।'

मैं ज़िंदगी में कभी गहरी नींद में सोने वाला नहीं रहा, लेकिन अब नींद और भी कम आने लगी थी। और मैं सारी रात बिस्तर पर उलट-पलटकर ही काटता था। मेरा दिमाग़ यादों और विचारों से भरा रहता। रात के अँधेरे में मुझे सुशीला की आवाज़ या उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती, और कभी-कभी उसकी कराह या बीमारी के वक्त सरसाम की अवस्था में कही गई उसकी बातें सुनाई देती थीं। बच्ची मेरी बगल में लेटी आराम से सोती रहती थी। हम दोनों सामने के वरांडे के बगल के अपने छोटे-से कमरे में सोते थे। जिस कमरे में पत्नी का देहांत हुआ था, वह हमेशा बंद रहता था। हफ्ते में एक बार वह खुलता और सफाई के बाद फिर बंद कर दिया जाता था। महीनों से यह इसी तरह किया जाता रहा। पहले हम सोचते थे कि अब इस घर को छोड़कर हम दूसरे घर में रहने चले जायँ, और तब यह करना ही स्वाभाविक और सही लगता था। लेकिन शुरु के मानसिक दबाव खत्म हो जाने के बाद यह करना अनावश्यक लगने लगा और अब यह असंभव ही जान पड़ता था। पहले तो मैंने अपने से यह कहा कि मकान बदलना और चीज़ें इधर से उधर रखना मेरा स्वभाव नहीं है। पहले वह कुर्सी हटानी होगी, फिर किताबों से लदी-फँदी मेज़, फिर कुछ और, कुछ और...। घर में हमने अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग जगहें तय कर ली थीं और उनसे हमारा लगाव भी हो गया था...इसलिए नए घर में जाकर ये सब नए सिरे से जमाना संभव नहीं था। मेरी बेटी सामने के वरांडे की कगार पर उस समय से खेल रही है जब वह सात महीने की बच्ची के रूप में इस घर में आई थी। हाँ, पहले तो मैं यही सोचता था कि यह सब करना बहुत मुश्किल होगा, लेकिन अब मेरा मन कहने लगा था कि यहाँ की हर एक चीज़ मेरे लिए इतनी बहुमूल्य हो गई है कि उसे छोड़ने का विचार करना ही सही नहीं है। यहाँ भूत काल में बिताये गए जीवन से जुड़ी कड़ियाँ थीं...नहीं, सिर्फ कड़ियाँ ही नहीं, ये हमारे रक्त की वाहिकाएं ही थीं जो स्मृतियों को जन्म देती हैं... अब मैं दुर्घटनाओं की स्मृतियों को भी महत्त्वपूर्ण मानने लगा था, क्योंकि कठिनाइयों से भरे दृश्यों और असहाय क्षणों की स्मृतियों से मुझे शांति मिलती थी, एक नया दृष्टिकोण मिलता था— कि जीवन में हर प्रकार की घटना का स्थान है।

जो कमरा हमेशा बंद रहता था, उसके लिए बेटी के मन में गहरा आकर्षण था। दरवाज़े पर पड़े ताले को वह बड़ी उलझन से देखती थी। जिस समय हम श्मशान घाट से यहाँ वापस लौटे थे, बेटी भी उसी समय घर में घुसी थी और उसने मुझे देखते ही पूछा था, 'पापा, यह दरवाज़ा बंद क्यों है?' यह सुनकर हम सब परेशान हो उठे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या उत्तर दें। घर उस समय मेहमानों से भरा था, सभी बड़ी उम्र के थे और मृत्यु के कारण शोक से ग्रस्त थे। मृत्यु हमेशा से एक पहेली रही है, लेकिन इस प्रश्न की उलझनों ने हमें पागल-सा कर दिया था। हम सब एक-दूसरे की तरफ देखने लगे और चुप खड़े रहे। लेकिन बेटी उत्तर चाहती थी। 'यह कमरा बंद क्यों कर दिया गया है?' मेरे ससुरजी यह प्रश्न सुनकर भीतर तक काँप गये। उन्होंने लीला का मन बदलने के लिए कहा, 'तुम्हें एक सुंदर-सी गुड़िया दें?'

'कहाँ है गुड़िया?' उसने पूछा।

'दुकान में है। चलो, वहाँ से खरीद लाते हैं।' उसने फौरन अपना हरा कोट, जिसे उसने अभी-अभी उतारा था, फिर पहन लिया और बोली, 'चलो नाना!' यह दिन बहुत कठिन दिन रहा था हम सबके लिए, बड़ी देर से सब ने थोड़ा-बहुत खाना खाया था और अब आराम करना चाहते थे। ससुरजी बहुत निराश लग रहे थे। 'चलो नाना!' उसने फिर कहा और उन्होंने दयनीय दृष्टि से

मेरी ओर देखा। मैं बोला, 'तुम बहुत समझदार लड़की हो लीला, नानाजी इस वक्त बहुत थके हुए हैं। उन्हें थोड़ी देर आराम कर लेने दो, फिर तुम्हें गुड़िया दिलाने ले जायेंगे...।' उसने पूछा, 'लेकिन इतनी देर में खाना क्यों खाया?' एक और मुश्किल सवाल, इसका क्या जवाब दिया जाय। हम सभी थक भी इतने गये थे कि उसे बहलाने के लिए नए-नए उत्तर ढूँढ़ने की ताकत भी शेष नहीं रही थी। लीला एक मिनट चुप रही, इसके बाद फिर कहने लगी, 'नानाजी, गुड़िया...।' लेकिन अब तक वह आधे सो चुके थे। मैंने कहा, 'बेबी, तुम तो अच्छी बच्ची हो। नानाजी को सो लेने दो। वे तुम्हें एक नहीं, दो गुड़ियाँ ले देंगे।' यह सुनकर वह नाराज़ हो गई और अपना कोट उतार कर फेंक दिया। पहले मैं इसके लिए उसे डाँट देता लेकिन इस बार कुछ नहीं कह सका। वह मुझे देखकर बोली, 'यह दरवाज़ा बंद क्यों है?' यह सवाल सुनकर सब लोग फिर परेशान हो उठे, और समझ न पाये कि क्या जवाब दें। लेकिन वह जवाब का इन्तज़ार कर रही थी। मैंने कहा, 'तुम्हारी माँ को नहलाया जा रहा है, इसलिए...।' यह जवाब उसने मान लिया और ऊपर जाकर अपने लकड़ी के बक्से को खोला जिसमें उसके खिलौने रखे थे। उसमें से एक कहानियों की किताब निकाली और मेरे पास, जहाँ मैं आरामकुर्सी पर आराम करने लेट गया था, आ पहुँची। किताब मेरी नाक पर रख दी और बोली, 'कहानी पढ़कर सुनाओ।' मैं उसे यह कहानी दो सौ दफ़ा सुना चुका था। किताब भी बहुत जर्जर हो चुकी थी। लेकिन इसे वह बक्स में बहुत सँभालकर रखती थी। इसमें रंगीन बड़ी-बड़ी तस्वीरें थी और हर तस्वीर के नीचे दो-दो लाइनें लिखी थीं। दरअसल यह कहानियाँ नहीं बल्कि शेर, चीता, सेब, आदमी वगैरह की तस्वीरे थीं जिनका आपस में कोई संबंध भी नहीं था। लेकिन लीला इन सबको कहानी ही मानती थी। 'साम ने सेब खा लिया—और शेर-चीता भी उसमें हिस्सा चाहते थे।' वगैरह। इस तरह जो भी उसे बताया जाता था, उसे वह सच मान लेती थी। लेकिन हर बार मैं उसे कोई नई बात बता देता था, जिसे सुनकर वह ताज्जुब करने लगती थीं। 'नहीं पापा, सेब आदमी ने नहीं खाया, शेर ने खाया था।' इस दफा जब फिर यही कहानी सुनाने की ज़रूरत पड़ी तो मेरा गला सूखने लगा...। 'एक दफा की बात है....,' इस तरह जो भी मन में आया, कहानी सुनानी शुरु कर दी। 'नहीं, नहीं पापा। तुम गलत कहानी सुना रहे हो। यह नहीं चीता...?'

शाम को वह फिर मेरे पास आई। 'दरवाज़ा अभी भी बंद है, पापा! माँ अभी तक नहा रही हैं?'

'...दरवाज़ा खोला जायेगा तो उसे ठंड लग जायेगी।'

'तुम माँ के पास नहीं जाओगे?'

'नहीं...।'

'वह अकेली है?'

'नहीं, एक नर्स उसके पास है।'

'नर्स क्या होती है?'

'जो बीमार की सेवा करती है।'

'अब तुम माँ के पास कभी नहीं जाओगे?'

'नहीं, अब मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा...।' यह सुनकर वह खुश हो गई और मुझसे लिपट गई।

चार दिन बाद एक शाम वह चुपचाप मेरे कमरे में आई और फुसफुसाकर बोली, 'पापा, जानते हैं, मैंने क्या किया?'

'क्या?'

'वहाँ कोई नहीं था और ताला भी खुला था, इसलिए मैंने दरवाज़ा खोला और भीतर चली

गई। माँ तो वहाँ नहीं है।’ यह कहकर वह मुझे देखने लगी।

मैंने प्रार्थना की, ‘ईश्वर, मुझे बच्चे को बताने के लिए कोई अच्छा-सा जवाब बताओ।’

‘अरे हाँ,’ मैंने लापरवाही दिखाते हुए कहा, ‘नर्स उसे अस्पताल ले गई होगी।’

‘अच्छा, वहाँ से फिर आयेगी?’

‘जैसे ही ठीक हो जायेगी, आ जायेगी,’ मैंने जवाब दिया।

सवेरे मैं लीला की आवाज़ सुनकर जागा, ‘पापा!’ उसके ठंडे हाथ मेरे माथे पर थे। कभी-कभी जब मैं जागता, देखता कि वह अपने हाथों पर मुँह टिकाये मेरी तरफ देख रही है—मैं सोता तो वह मेरे मुँह की तरफ देखती रहती। पता नहीं, उसे यहाँ क्या नज़र आता था—उसकी काली-काली आँखें स्वतंत्र तितलियों की तरह मेरे ऊपर नाचती रहती थीं।

‘पापा जग गये,’ यह कहकर वह खुश हो उठी। मैंने कुछ संदेह से उसे देखकर पूछा, ‘तुम मेरे मुँह के इतने पास क्या कर रही हो?’

‘कुछ नहीं, मैं सिर्फ देख रही थी। मैंने तुम्हें जगाया नहीं है।’

‘क्या देख रही थी?’

‘मैं यही देख रही थी कि कोई चींटी या मक्खी तुम्हारी नाक में न घुस जाय...और कुछ नहीं।’

‘अच्छा, कोई घुसी?’

‘नहीं, कैसे घुसती...मैं देख रही थी न।’ यह उसने ऐसे संतरी की तरह कहा जो किसी खतरनाक दुश्मन से मेरी रक्षा कर रहा है।

‘पापा, जब तुम सो जाते हो, तो क्या करते हो?’ यह ऐसा सवाल था जिसका जवाब कोई मेरे जैसा बड़ा आदमी नहीं दे सकता था, कोई बच्चा ही दे सकता था। ‘मैं तुमसे कुछ कह रही थी, लेकिन तुमने जवाब नहीं दिया।’

‘क्या कहा था तुमने?’

‘मैंने कहा, मेरे पास पिपरमिंट है...मुँह खोलो तो डाल दूँ।’

इस गपशप के बाद हम बिस्तर से उठे। मैंने उसे गद्दे पर इधर-उधर लुढ़काया तो वह खड़ी हो गई। और मेज़ से एक किताब उठाकर कहने लगी, ‘यह कहानी सुनाओ।’ मेरी मेज़ पर कहानी की कोई किताब नहीं थी। वह बड़ी से बड़ी किताब उठाकर लाती और उसमें से कहानी सुनाने को कहती। फिर वह उसे वापस रख देती और तस्वीरों वाला सूचीपत्र उठा लाती और उसमें से कहानी सुनाने को कहती। हर दिन सवेरे यह नाटक होता था। मैं उससे कहता, ‘अभी कहानी नहीं... पहले हम हाथ-मुँह धो लें...।’

‘क्यों?’

‘क्योंकि यही ठीक बात है।’

‘नहीं, पहले कहानी पढ़ना ठीक होता है।’

‘नहीं, पहले सफाई, फिर कहानी...’

‘क्यों?’

‘क्योंकि यह देवी होती है, सरस्वती देवी, जिसे हाथ धोकर ही हमें छूना चाहिए।’

‘बिना हाथ धोये छू लेंगे तो क्या होगा?’

‘देवी नाराज़ हो जायेगी। वह विद्या की देवी है, और साफ-सुथरे होकर छूने से ही वह खुश होती है। खुश होगी तो तुम्हें बड़ा विद्वान बना देगी।’

‘विद्वान बनने से क्या होता है?’

‘फिर तुम ये सब कहानियाँ अपने-आप पढ़ने लगोगी।’

‘लेकिन फिर तुम क्या करोगे?’ यह उसने इस तरह कहा कि मुझ पर दया कर रही है, क्योंकि इसके बाद मैं बेकार हो जाऊँगा।

लेकिन सचाई यही है कि अब यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा काम हो गया था। अब मैं किसी और बात की चिंता नहीं करता था। मुझे यह सोचकर गर्व होता था कि मुझे अपनी बेटी की देखभाल करनी है। अपनी बड़ी हो रही बेटी की पूरी ज़िम्मेदारी सँभालना मुझे बहुत संतोष देता था।

5

आज का दिन बहुत व्यस्त रहा था। दोपहर बाद तीन बजे तक मैं क्लास लेता रहा था। तीन बजे जब मैं घड़ी देखते हुए सोच रहा था कि अब किताबें रखकर घर जाऊँगा, गजपति का संदेश आया कि मुझे फोर्थ का ऑनर्स क्लास लेना है, क्योंकि भाषा का शिक्षक जॉर्ज आज गैरहाज़िर है। इस हफ्ते कई शिक्षक गैरहाज़िर थे क्योंकि वे अपनी शेष रही छुट्टियों का इस्तेमाल कर लेना चाहते थे। इसलिए उपस्थित शिक्षकों को उनके क्लास लेने पड़ते थे। मैंने गजपति से आग्रह किया कि मुझे इससे मुक्त कर दे क्योंकि विद्यार्थी काल से भाषा विषय बहुत कठिन विषय लगता रहा है और इसे पढ़ाना मेरे लिए संभव नहीं है। लेकिन गजपति ने कहा कि 'लड़कों का वक्त गुज़ारना है। प्रिंसिपल का कहना है कि शिक्षक की अनुपस्थिति में लड़कों को छुट्टी देना ठीक नहीं है। अंग्रेज़ी विभाग के हर शिक्षक को हर विषय पढ़ाने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं इससे सहमत हूँ।' इसलिए मुझे फोर्थ ऑनर्स का भाषा क्लास लेना पड़ा और मैंने एक घंटा पूरा भी कर दिया। हमारे विभागाध्यक्ष का मानना था कि लड़कों को सुपठित होना चाहिए, और जब भी समय खाली हो, उन्हें लाइब्रेरी जाकर कोई महत्त्वपूर्ण किताब लेकर पढ़ना चाहिए। मैंने एक लड़के को लाइब्रेरी भेजा कि अंग्रेज़ी के खंड से जो भी किताब अच्छी लगे, ले आये। वह उन्नीसवीं शताब्दी के निबंधों की एक पुस्तक ले आया और मैं उसमें से एक निबंध पढ़कर मशीन की तरह सुनाने लगा। लड़के अपनी बातचीत में लगे रहे और मैं भी अपना काम करता रहा। सामने बैठे कुछ लड़के सुनना भी चाहते थे लेकिन शोर की वजह से सुन नहीं पा रहे थे। वे बोले, 'सर, सुनाई नहीं देता।

'अपने दोस्तों से कहो कि बातें न करें तो सुन सकोगे,' मैंने कहा। लड़कों ने पीछे मुड़कर देखा, लेकिन कुछ कह नहीं सके। क्लास में लड़के कम थे इसलिए मैं चाहता तो सबको शांत कर सकता था, लेकिन मैं भी काफी थक चुका था और दबाव डालना मेरे बस की बात नहीं थी। इन दिनों में एक ज़बरदस्त उदासी और जड़ता के दौर से गुज़र रहा था और लड़के मुझे सुनते हैं या नहीं सुनते, जो सुनते हैं उसे समझते भी हैं या नहीं समझते, इस सबकी मुझे परवाह नहीं रही थी। मेरा काम था कुर्सी पर बैठना और ज़बान चलाते रहना—जो मैं करता रहता था। खुद मेरा दिमाग़ भी, मैं क्या पढ़ रहा हूँ, इस पर ध्यान नहीं दे पाता था...। मैं पढ़ रहा था, 'शताब्दी के बाद के वर्षों में यह प्रभाव इतना गहरा हो गया कि लेखक इसे गंभीरता से ग्रहण करने लगे। कलम के कारीगरों के लिए यह एक नए खज़ाने की तरह था, उपयोग के लिए एक नया हथियार था, इसे यह कहें...।' मेरे शब्द मेरे कानों में पड़ रहे थे लेकिन उनका अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। मैं अपने भीतर इसी तरह सोचता रहा, 'ये क्या कह रहे हैं? किस प्रभाव की बात कर रहे हैं? प्रभाव किस पर? लेखकजी, अपनी बात साफ करके क्यों नहीं कहते?'

इस शोर-शराबे के बीच सबसे अच्छी आवाज़ सुनाई दी—घंटी की आवाज़। घंटा खत्म हो गया था और मैं घर जा सकता हूँ। मैं स्कूली बच्चे की तरह खुश होकर सोचने लगा कि अब मैं घर जा सकता हूँ, जहाँ मेरी बच्ची मेरा इन्तज़ार कर रही है—वह मेरे साथ अब घूमने जायेगी और बहुत-से सवाल करेगी...

मैं कॉमन रूम की तरफ चला कि अपने लॉकर में किताबें रख दूँ, छाता उठाऊं और घर को

चलूं। जब मैं दरवाज़ा बंद कर रहा था, नौकर आया और बोला, 'साब, कोई आपसे मिलने आया है।' मैंने बाहर देखा। पंद्रह साल का एक लड़का था, जिसे मैं नहीं जानता था। यह वरांडे के नीचे खड़ा था। दुबला-पतला सा, सिर पर लंबी चोटी, उसके ऊपर छोटी-सी टोपी। मुझे ग़रीब-सा लगा जो, मैंने सोचा, कुछ काम से आया है, स्कूल की फीस, या पिताजी बीमार हैं उनके इलाज के लिए कुछ पैसे, या ऐसा ही कोई और बहाना। इन दिनों ऐसी बातें बहुत बढ़ गई थीं।... पहले मैं ऐसी कोई माँग होने पर पता लगाता और गलत होने पर उपदेश देता, लेकिन अब यह सब करने की इच्छा नहीं होती थी और मैं कुछ-न-कुछ दे ही देता था। उसने जेब में हाथ डालकर एक लिफाफा निकाला और मैंने पैसे निकालने के लिए अपनी जेब में हाथ डाला। मैंने सोचा इस कागज़ में मदद की ही प्रार्थना की गई होगी।

'क्या है यह?'

'आप अंग्रेज़ी विभाग के कृष्ण हैं न?'

'हाँ।'

'आपके लिए एक खत है।'

'किसने दिया है?'

'मेरे पिताजी ने।'

'तुम्हारे पिताजी कौन है?'

'यह सब इसमें लिखा है,' उसने जवाब दिया। लिफाफा काफी बड़ा था। मैंने उसे खोला। इसमें एक लंबा कागज़ रखा था जिसके कोने में एक पर्ची में लिखा था:

'श्रीमान,

कल शाम जब मैं कुछ लिख रहा था, मुझे यह संदेश मिला। मैं इसका अर्थ समझ नहीं पाया। लेकिन इसमें दिया गया नाम, पता और उसका रास्ता स्पष्ट है, इसलिए मैं अपने बेटे को भेज रहा हूँ कि यह सही हो तो आपको इसे दे आये। यदि यह आप तक पहुँच जाय—यानी यदि आप ही वह आदमी हैं— तो आप इसे पढ़ें और यदि इसकी बातें ठीक लगें तो इसे रख लें, नहीं तो, फाड़कर फेंक दें और इस घटना को भूल जायँ।'

उसने अपना नाम और पता भी दिया था। अब मैंने बड़ा कागज़ पढ़ना शुरु किया। यह किसी दूसरे की लिखावट लगती थी। इसमें लिखा था: यह संदेश कृष्ण के लिए है, जो सुशीला के, जिसकी पिछले दिनों मृत्यु हो गई है, पति हैं।...वह कई महीनों से अपने पति को कुछ बताने की कोशिश कर रही है, और आज यह मौका आया है—आज उसे ऐसा व्यक्ति मिला है जो उसके संदेश का माध्यम बन सकता है। इनके द्वारा वह अपनी बात बता सकती है। वह अपने पति को यह बताना चाहती है कि अब वह एक दूसरे लोक में है और खुश है। वह चाहती है कि पति अपने मन का दुख भूल जायें। हम एक-दूसरे के बहुत पास हैं, दूर नहीं हैं। मैं उन्हें और बेटी को देखती रहती हूँ...।'

मैं यह पढ़कर चकित रह गया। यह क्या है, समझ में नहीं आ रहा था। मैंने लड़के से पूछा, 'यह क्या है।' 'मुझे नहीं पता सर! मेरे पिता एक हफ्ते से इसे भेजने की कोशिश कर रहे थे, और आज ही यह हो सका है। मैं जगह-जगह पता करता रहा, और अपनी क्लास से छुट्टी भी नहीं मिलती थी...।'

'लेकिन तुम्हारे पिताजी ने मुझे क्यों भेजा है यह?'

'पता नहीं, सर!' मैं वहीं खड़ा बार-बार उस कागज़ को पढ़ता रहा। फिर जब दिमाग़ कुछ शांत हुआ, मैं एक नई चेतना से भर उठा।

मैंने ज़ोर से कहा, 'मुझे अपने घर ले चलो।'

'मेरा घर बहुत दूर है, सर। तायुर गाँव में...।' यह गाँव नदी के पार-करीब दो मील दूर था।

'कोई बात नहीं, मैं चलूँगा। पिताजी क्या करते हैं तुम्हारे?'

'सर, वे गाँव में अपनी ज़मीन, बाग-बगीचे वगैरह की देखभाल करते हैं। मैं यहाँ बोर्ड हाईस्कूल में पढ़ता हूँ। आज आखिरी घंटा खाली था। इसलिए मैं खत आपको देने आ गया।

'तुम बहुत अच्छे लड़के हो। मुझे अपने पिता के पास ले चलो।' और मैं उसके साथ चल दिया। लेकिन बच्ची मेरा इन्तज़ार कर रही होगी। मैं बोला, 'एक मिनट...तुम मेरे घर चलोगे... मैं तुम्हें कॉफी पिलाऊँगा और मिठाई खिलाऊँगा। उसके बाद तुम्हारे घर चलेंगे...।'

'नहीं, सर, नहीं, मुझे एकदम वापस जाना है। कुछ काम करना है...।' मैंने उसे समझाने की भरसक कोशिश की लेकिन वह तैयार नहीं हुआ। मैं भी उसे छोड़ना नहीं चाहता था। आखिर एक समझौता हुआ—उसने मुझे अपने गाँव का रास्ता बताया, वह मुझसे पहले पहुँच जायेगा और चौराहे पर मेरा इन्तज़ार करेगा—जहाँ, से वह मुझे अपने घर ले जायेगा।

लेकिन जब वह नदी की तरफ चलने लगा, मुझे अचानक डर लगा, कहीं यह वहाँ मुझे न मिले तो? यह सोचकर मैं घबरा उठा। मैंने उससे पूछा, 'तुम मुझे ज़रूर मिलोगे न?'

'हाँ, हाँ मैं ट्रंक रोड पर खड़ा रहूँगा।'

'तुम बस एक मिनट यहाँ खड़े रहो, मैं घर होकर अभी आता हूँ...,' मैं बोला। बच्ची के अलावा कोई और बात होती तो मैं उसके साथ चल पड़ता। लड़के ने कहा, 'मैं ट्रंक रोड पर आपका इन्तज़ार करता रहूँगा... आपको बहुत देर हो जाय तो भी...।'

'तुम बहुत अच्छे लड़के हो,' यह कहकर मैं तेज़ी से चल पड़ा। बच्ची साफ-सुथरे कपड़े पहने बाहर मेरा इन्तज़ार कर रही थी।

उसे लेकर मैं हॉल में आया और कहा, 'आज मेरी बिटिया अम्मा के साथ घूमने जायेगी... क्योंकि पापा को आज ज़रूरी काम है।'

वह कुछ सोचकर कहने लगी, 'क्या ज़रूरी काम है? कॉलेज फिर जाना है?'

'नहीं, किसी से मिलने जाना है, उससे बहुत ज़रूरी बात करनी है।'

'फिर वापस कब आओगे?'

'देर हो जाये और तुम्हें नींद आने लगे तो तुम सो जाना।'

'नहीं, मैं नहीं सोऊँगी,' उसने जवाब दिया। 'मैं अम्मा के साथ जाऊँगी और उसने मुझे एक गुड़िया का घर दिखाने का वादा किया है, जिसमें बत्ती भी जलती है। यह घर मुझे ले दोगे?'

'हाँ, पहले देख लो, फिर ले लेना।'

'मुझे इतना छोटा-सा घर खरीद देना', उसने अपना अँगूठा दिखाते हुए कहा, 'जिसमें इतनी छोटी-सी गुड़िया हो।'

'यह कहाँ मिलेगा?'

जवाब अम्मा ने दिया, 'यह बिकने के लिए नहीं है...दवाओं की दुकान पर सजावट के लिए रखा है।' मुझे याद आया कि बाज़ार में दवाओं की दुकान में ऐसा खिलौना रखा है। इस दुकान पर घर में बनाई हुई दवाएं मिलती थी, सभी तरह की दवाएं और इस दुकान पर हमेशा भीड़ लगी रहती थी। दुकान के बीचोंबीच लकड़ी का बना एक घर रखा है जिसमें बिजली लगी है...इसका वहाँ क्या मतलब था, यह समझ में नहीं आता था। शायद यही मतलब हो कि लीला जैसे बच्चे इसे देखकर खुश हों...

मैं कमीज़ पहनकर बाहर निकल गया...

एलामन स्ट्रीट और नदी किनारे होते हुए नल्लप्पा की झाड़ी को पार किया और वहाँ से गुज़रते हुए काफी दूर श्मशान घाट की दीवार पर नज़र डाले बिना न रह सका। दीवार के पीछे

धुआँ उठ रहा था। सड़क पर घंटियाँ टुनटुनाती बैलगाड़ियाँ, शहर से गाँव लौटते हुए बातचीत करते गाँव वाले और तरह-तरह के दूसरे लोग धूल से भरे रास्ते से चले जा रहे थे—यहीं से तायुर के लिए सड़क निकलती थी। सूरज डूब रहा था। अगर मैं अँधेरा होने से पहले ट्रंक रोड के चौराहे पर नहीं पहुँच जाता तो लड़के को ढूँढ़ नहीं पाऊँगा। यह सोचकर मैं सड़क पर दौड़ने लगा और चौराहे पर पहुँच गया। लड़के ने यहीं मिलने को कहा था। सूरज क्षितिज से नीचे उतर रहा था। अँधेरा होने जा रहा था। लेकिन लड़के का कहीं पता नहीं था। 'लड़के, ओ लड़के!' मैं पुकारने लगा—मैंने उसका नाम भी नहीं पूछा था। चिड़िया पेड़ों के भीतर चहचहा रही थीं, लोग चले जा रहे थे, और मैं पुकार रहा था, 'लड़के ओ लड़के!' कितना बेवकूफ था मैं कि न नाम पूछा था और न घर का पूरा रास्ता!

'लड़के, ओ लड़के!' मैं पागल की तरह चिल्ला रहा था। और लोग मुझे घूर-घूर कर देख रहे थे। मैं इधर-उधर ढूँढ़ रहा था कि तभी वह एक खेत पार करके आता दिखाई दिया। पहुँचकर बोला, 'ज़रा देर हो गई, सर, माफ करना।'

'तुम बहुत अच्छे लड़के हो,' मैं बोला, 'मैं तुम्हारा शुक्रगुज़ार हूँ।' लड़का मुझे बहुत प्रिय लगने लगा। और मैंने तय किया कि अगली बार जब मिलेगा, तो मैं इसके लिए कुछ-न-कुछ ज़रूर करूँगा। जब कॉलेज पढ़ने आयेगा, तब मैं इसे खूब ज्यादा नंबर दूँगा। उसके साथ जाते हुए मैं उससे उसके स्कूल, कक्षा और पढ़ाई की बातें पूछता रहा।

'हमारा घर वो है,' उसने घने पेड़ों के बीच दूर पर चमकते टाइलों वाले एक मकान की तरफ़ इशारा किया। तभी एक कुत्ता भूँकता हुआ आया और उससे लिपटने लगा। 'चुप रहो, टाइगर, जा के पिताजी को बताओ कि एक साहब उनसे मिलने आ रहे हैं।' टाइगर सिर टेढ़ा करके सुनता रहा और पिताजी का नाम आते ही तेज़ी से झाड़-झंखड़ को पार करते हुए घर की तरफ दौड़ पड़ा। जब हम फाटक पर पहुँचे वह भीतर से खुल चुका था और एक हँसमुख काफी मोटे सज्जन ने हाथ जोड़कर हमारा स्वागत किया। उनका चेहरा इतनी खुशी बिखेर रहा था कि उससे हमारी इस अनोखी स्थिति का प्रभाव समाप्त हो गया। फिर उन्होंने मेरा हाथ थामकर कहा, 'इस परेशानी के लिए मुझे माफ करना, आप सोचते होंगे कि किस पागलखाने से खबर आई है!' यह कहकर वह बड़े ज़ोर से हँसे। मैं बेवकूफों की तरह कहने लगा, 'नहीं, नहीं... बिलकुल नहीं।' लेकिन मैं सचमुच बहुत असमंजस की स्थिति में था। मेरी भावनाएं गड़बड़ाने लगी थीं, सोच नहीं पा रहा था कि मैं खुश हूँ या नहीं हूँ। मैं काफी उत्तेजित हो उठा था।

वे बोले, 'देखिए, मैं खुद आपकी तलाश करता, लेकिन यह काम काफी मुश्किल था, और मैंने यह भी सोचा कि कोई मुझे बेवकूफ न बना रहा हो। और जब मुझे पता चला कि उस नाम का कोई सचमुच है, तो मुझे ताज्जुब भी बहुत हुआ। अभी भी मुझे यकीन नहीं हो रहा कि आप...।'

'नहीं, मैं सचमुच वही आदमी हूँ, नाम, पता और बाकी सब बातें एकदम सही हैं...आप क्या पहले से मेरा नाम जानते थे...?'

'अरे, बिलकुल नहीं। मुझे कुछ पता नहीं था। मैंने तो सचाई जानने की गरज़ से लड़के को भेजा था। मैंने तो संदेश और पता जैसा भी मुझे मिला, वैसा ही भेज दिया था... लड़के के हाथ... और जब उसने आकर बताया कि सही आदमी को खत दे आया है तो मैं तो किसी के फूँक मारते ही हवा में उड़ने लायक हो गया, इस मोटापे के बावजूद...। पहले तो मैंने सोचा कि बेटा मज़ाक कर रहा है, लेकिन उसने कहा कि आप मिलने भी आ रहे हैं... अब भी, सच बतायें कि आप वही आदमी हैं?' यह कहकर वह गहरी लेकिन धीमी हँसी हँसने लगा। दरअसल यह कहना भी ग़लत होगा कि वह हँसा...उसकी हँसी में कोई आवाज़ नहीं निकलती थी, न कोई शोर होता था; वह

उसकी सब बातचीत और हाव-भाव की भूमिका की तरह हर वक्त उसके चेहरे से बिखरती रहती थी, जैसे वीणा का मूल राग हो जिससे संगीत निकलता भी है और जिसमें वह डूब भी जाता है।

'आइए, आइए, हमें बहुत सी बातें करनी हैं,' कहते हुए वह मुझे छोटे से फाटक से भीतर ले गया। कुत्ता हमारे पीछे आया। उसने उसे थपथपाया और बोला, 'अच्छा है न? मुझे यह बहुत प्रिय है। हालांकि जो कुत्ता प्रेमी यह कहते हैं कि आदमी से तो कुत्ता ही अच्छा होता है, वे बकवास करते हैं, लेकिन साथी के रूप में कुत्ता बहुत अच्छा प्राणी है। जानदार होते हुए भी कभी अगर आप उससे कुछ समय अलग रहना चाहें तो वह आपकी आज्ञा चुपचाप मान लेगा और अलग हो जाएगा। वह कभी आपको उलट कर जवाब नहीं देगा।'

मैंने चारों ओर नज़र डाली। जैसे हरियाली का स्वर्ग हो—दूर-दूर तक फैले बगीचे, पेड़, झाड़ियाँ, और पेड़ों पर सरसराते पत्तों की आवाज़। उसने कहा, 'इन पेड़ों के आगे, आप यकीन नहीं करेंगे, एक कमल के फूलों का तालाब है जिसके किनारे एक मंदिर है—ऐसा खूबसूरत खंडहर मैंने कभी नहीं देखा; इसे देखते ही मैंने यह ज़मीन खरीदने का फैसला कर लिया था।'

'मैं भी मंदिर देखना चाहूँगा। किसका है मंदिर यह?'

'देवी का। कहा जाता है कि शंकर जी जब यहाँ से निकले तो गाँव वालों ने उनसे यह बात कही और उन्होंने रात-भर में यह मंदिर यहाँ खड़ा कर दिया। देवी को वाक्माता कहते हैं, जो शब्द से प्रकट हुईं। आप दर्शन करेंगे? लेकिन पहले विश्राम और भोजन, बाद में जीवन की और बातें। यहीं बैठें?'

हम एक बड़े-से आम के पेड़ के नीचे रखे पत्थर पर बैठ गये। फिर घर की ओर इशारा करके वे बोले, 'वह मेरा घर है छोटा-सा, उसे भी देखियेगा। एक लाइब्रेरी भी है मेरी।...और यह रही मेरी पत्नी...।' उसने अपनी पत्नी से मेरा परिचय कराया और बताया कि ये वही हैं जिनको वह पत्र भेजा गया था। उसने मेरी तरफ देखा और बोली, 'हमें यकीन ही नहीं था कि आप सचमुच होंगे। मैंने सोचा कि यह भी मेरे पति का एक नया मज़ाक है... अच्छा, मैं आपके लिए कॉफ़ी और फल लेकर आती हूँ।'

वह भीतर जाकर खाने की बहुत-सी चीज़ें ले आई। मेरे मेज़बान खाने-पीने में भी तेज़ थे। खाने के साथ ही बातें भी करते जाते थे। उन्होंने मुझे अपने और फार्म के बारे में बहुत-सी बातें बताईं—कि कैसे उन्होंने आठ साल पहले इसे खरीदा था और फिर रात-दिन मेहनत करके इसे इतना बढ़ाया। उन्हें तालाब, मंदिर और पेड़-पौधे बहुत पसंद थे; वे शहर से दूर रहना चाहते थे लेकिन इतनी ज्यादा दूर भी नहीं कि उससे एकदम कट जायें। 'मेरा हमेशा यह विचार रहा है कि घर शांत वातावरण में होना चाहिए। लेकिन बरांडे से रेल की लाइन भी नज़र आनी चाहिए, रेल न हो तो सड़क ही हो। यहाँ ये दोनों बातें हैं। अगर आप कुछ देर यहाँ बैठे तो उस टीले के बगल से मद्रास मेल जाती दिखाई देगी। मैं, शहर के इतना नज़दीक रहने लगा लेकिन, आप ताज्जुब करेंगे कि मैं यहाँ से शायद ही कभी निकला होऊँ। मैं जहाँ हूँ वहीं बहुत खुश हूँ। और आपको बताऊँ कि मैं, मेरी पत्नी यह सोचती है कि अगर मैं ज्यादा बाहर निकलूँ, तो मैं घर में कम जगह घेरूँगा... जैसे शहर आना-जाना दुबला होने की कसरत हो।' लेकिन यह सब बातें मैं बहुत कम रुचि लेकर सुन रहा था—मैं तो अपने संदेश और उससे जुड़ी बातें करना चाहता था।

'चलिए, ज़रा घूम-फिर कर देखें?' यह कहकर वे आम के पेड़ की टहनी से बनी दो छड़ियां ले आये और एक मुझे देते हुए बोले, 'जब कभी मुझे कोई अटपटी-सी डाल मिल जाती है तो मैं उसे काट-पीट कर छड़ी बना लेता हूँ। पेड़ की डालें इस तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं, जैसे मज़ाक कर रही हों। उनसे मज़ेदार छड़ियाँ बनाई जा सकती हैं। मेरा ख्याल है कि यह प्रकृति का मज़ाक करने का ढंग है, अगर हम इस बात को इस रूप में लें, तो...।' यह कहकर उन्होंने मुझे ऐसी

पचासों छड़ियाँ दिखाईं—टेढ़ी, नुकीली, पतली, कांटेदार अजीब-अजीब प्रकार की। 'यहाँ छड़ी लेकर ही घूमना चाहिए, क्योंकि साँप बहुत हैं यहाँ। वैसे मैंने आज तक एक भी साँप खुद नहीं मारा। जब कोई दिखाई देता है तो मैं आवाज़ देकर किसी को बुला लेता हूँ।'

हम बाग़ में घूमते रहे। वे लगातार बातें करते और ज़ोर-ज़ोर से हँसते रहे और बाग़ के बारे में बताते रहे, लेकिन मेरा दिमाग़ सारा समय कहीं और था—तनाव से भरा,एक ही बात में उलझा। खत, सिर्फ खत के बारे में जानने को उत्सुक। मेरा ख्याल था कि वे खुद ही यह विषय उठायेंगे, लेकिन इसके अलावा दूसरे सब विषयों पर वह कहकहे लगाते बात करते रहे। एक-दो दफा मैंने खुद यह चर्चा शुरु करने की कोशिश की लेकिन फिर कुछ सोचकर चुप रह गया। सच बात यह भी है कि मुझे यह बात छेड़ते शर्म भी महसूस होती—जैसे कोई नवविवाहित अपनी बीवी का नाम लेते शर्माये।

जब हम बगीचे के उत्तरी सिरे पर पहुँचे तब काफी अँधेरा हो चुका था। तालाब बहुत ही सुंदर था, उस पर नीले कमल खिले हुए थे, जल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। किनारे पर ऊँचे, लंबे पेड़ खड़े थे जिनकी पत्तियाँ हवा में सरसरा रही थीं। इसी के पास एक छोटा-सा मंदिर था जिसकी पुरानी दीवारें हरी हो गई थीं। एक छोटा-सा गुंबद था जो चटकने लगा था, देवता की कोठरी के सामने एक झंडा फहरा रहा था।

मंदिर के सामने एक प्लेटफार्म था। उसका ताला बंद था। हम हाथ-पैर धोकर वहाँ बैठ गये। चारों ओर घनी शांति छाई थी। 'मंदिर का ताला खुलवाऊँ?' उन्होंने पूछा।

'इस वक्त ज़रूरत नहीं है,' मैंने उत्तर दिया।

'मंदिर का एक बूढ़ा पुजारी भी है जो महीने में एकाध बार यहाँ आता है।...बहुत भला आदमी है, उससे बातें करना अच्छा लगता है, बड़ा विद्वान है, मुझे उससे डर-सा लगता है। शहर में कुछ दान की संस्था चलाता है, यहाँ श्रद्धावश ही आता है...उसे देवी की पूजा का अवसर मिल जाता है...।' मैं चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था। मेरा मन दरअसल इस वक्त अपनी ही बात की उत्सुकता से भरा था...। अचानक उसने मुस्कराते हुए पूछा, 'मैं आपको बोर तो नहीं कर रहा?'

'अरे नहीं।'

'मैं जानता हूँ कि आप उस खत के बारे में जानना चाहते हैं...'

'हाँ, हाँ, यह बात भी ठीक हैं,' मैंने कहा और कुछ बेवकूफी से बोला, 'बहुत वक्त हो गया उसे...,' लेकिन क्या कहकर वाक्य पूरा करूँ, यह समझ में नहीं आया।

'अच्छा सुनिए,' वह कहने लगा, 'पिछले कुछ दिनों से मैं अपनी शामें यहाँ बिलकुल अकेले बिताने लगा हूँ। यह पेड़, डूबता हुआ सूरज और नदी की कलकल यहाँ एक विशेष प्रकार की बहुत ही अद्‌भुत शांति उत्पन्न करते हैं—जिसका मैं आदी होता चला जा रहा हूँ। यहाँ मैं घंटों अकेले बिता देता हूँ। और चाहता हूँ कि कोई इस शांति को भंग न करे। मुझे लगता है कि यह शांति और यह स्थान अनंत से ही जुड़ा हुआ है, जिसे न समय छू सकता है, न कोई रोग लग सकता है। एक दिन जब यहाँ आने को तैयार हुआ तब मुझे प्रेरणा हुई कि अपने साथ लिखने के लिए कागज़ और कलम भी ले चलूँ। उस दिन सवेरे से ही यह बात मेरे मन में घूम रही थी। मैंने सोचा कि कॉलेज से पहले के दिनों की मेरी कविता लिखने की बीमारी फिर ज़ोर मार रही है, लेकिन यह कोई बुरी बात भी नहीं लगी। तो शाम को जब मैं चलने को तैयार हुआ मैंने कागज़-पेंसिल भी जेब में रख लिये। यहाँ मैं इसी टीले पर बैठ गया और पेंसिल हाथ में पकड़ ली। पहले तो बड़ी देर तक कुछ लिखा ही नहीं गया और हज़ारों विचार दिमाग़ में चक्कर काटते रहे। आसमान बहुत सुंदर लग रहा था। तो सोचा, इसी पर कुछ लाइनें लिख डालूँ। लेकिन पहले

मैं आपको विश्वास दिला दूँ कि मैं कविहृदय व्यक्ति बिलकुल नहीं हूँ, मैं बहुत गंभीर किस्म का किसान ही हूँ—लेकिन मेरे भीतर कोई चीज़ मुझे हिलाने-सी लगी... जैसे वहाँ कोई परिवर्तन होने जा रहा हो।

'झुटपुटा हो रहा था और मैं कागज़-पेंसिल हाथ में लिये बैठा था। सोच रहा था कि अँधेरा होने से पहले मैं कविता या ड्रामा या जो भी हो लिख डालूँ। यह मुझे परेशान कर रही है, उसे लिख डालूँ।

'पेंसिल मैंने कागज़ पर रख ली, फिर वह चलने लगी। मुझे ताज्जुब हुआ कि वह अपने-आप ही चलती जा रही है...। मुझे इससे खुशी भी हुई क्योंकि मुझे कुछ करना नहीं पड़ रहा था। लिखना शुरू हुआ: 'धन्यवाद' पहला शब्द था। 'हम कुछ आत्माएं हैं जो जीवन और मृत्यु के बाद की खाई के बीच पुल बनाने की कोशिश कर रही हैं। हम ऐसे किसी व्यक्ति की तलाश कर रही हैं जो माध्यम बनकर हमारी बात अपनी दुनिया में पहुँचा सके। हमें अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला है जो हमारे प्रयत्न को सफल बना सके। अब हमें खुशी है कि आप यह काम करने में समर्थ हैं...कृपया हमारी सहायता कीजिए, अपना हाथ हमें दीजिए, बाकी सब हम स्वयं कर लेंगे। 'मैंने उत्तर में कहा, 'यह तो मेरे लिए सम्मान की बात होगी, मैं आपके लिए जो भी कर सकूँगा, करूँगा।'

उत्तर आया, 'आपको सिर्फ यह करना है कि सप्ताह में यहाँ एक-दो दिन शाम के समय आयें, कागज़-पेंसिल लेकर इसी तरह यहाँ बैठें और विश्राम की मुद्रा में आकर हमारा ध्यान करें।' मैंने कहा, 'मैं बड़ी प्रसन्नता से यह करूँगा।' इसके बाद मेरी पेंसिल ने लिखना शुरू किया, 'यह सुशीला है कृष्ण की पत्नी, लेकिन अभी तक यह संदेश भेजने में सफल नहीं हो सकी है। धीरे-धीरे यह इस काम में अभ्यस्त हो जायेगी। क्या अब यह जो संदेश देगी, उसे आप इसके पति को पहुँचाने की कृपा करेंगे?' 'मेरे 'हाँ' कहने पर उन्होंने संदेश लिखवाया और आपका नाम तथा पता भी दिया।'

इसके एक सप्ताह बाद हम दूसरी दफ़ा मिले। बुधवार का दिन था। वे अपने साथ कागज़ का पैड और दो पेंसिलें भी लाये—और पेंसिल तराशने को एक शार्पनर भी लाये। बोले, 'टूटी पेंसिल से लिखने का खतरा मैं नहीं लेना चाहता। मेरी तरफ से शिकायत की कोई बात नहीं होनी चाहिए।'

तालाब के किनारे के पेड़ ज्यादा हरे लग रहे थे। नीले कमल जल के ऊपर तैर रहे थे। लहरें किनारे से टकरा रही थीं। मंदिर के सामने पड़े पत्थर पर हम बैठ गये। मेरे नए मित्र ने आँखें बंद करके प्रार्थना की: 'महान आत्माओ, हम यहाँ आ गये हैं। आपने हमें पारस्परिक शांति और सद्भाव का वचन दिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम आपके अनुसार कार्य करने के लिए तैयार हैं।' उनकी आँखें बंद थीं और अपार शांति छाई थी। पत्तों की सरसराहट जारी थी, जल की लहरें उठ-गिर रही थीं। आसमान में एक सितारा चमक उठा। प्रतीक्षा में मेरी साँस बहुत धीमी हो गई थी। शांति इतनी गहरी थी कि मैं सोचने लगा कि कोई विशेष बात न हो तो भी यह अनुभव अपने आप में महत्वपूर्ण है—यह अनंत का अनुभव है। हम बिना एक शब्द बोले चुप बैठे थे। मुझे लगने लगा कि इस तरह हम आजीवन बैठे रह सकते हैं। वह कागज़ पर पेंसिल रखकर प्रतीक्षा कर रहा था। अचानक पेंसिल चलने लगी। कागज़ पर अक्षर लिखे जाने लगे। पेंसिल जैसे जीवन से भर उठी थी। वह बहुत तेज़ी से लिखती चली जा रही थी, मेरा मित्र उसकी गति कम करने में समर्थ नहीं हो पा रहा था। वह कागज़ को खुरचती और आवाज़ करती ऊपर-नीचे लाइनें बना रही थी। यह आवाज़ वातावरण की दूसरी आवाज़ों से ऊपर थी। इसमें जैसे अपार

शक्ति उत्पन्न हो गई थी। मित्र ने मुस्कराकर कहा, 'लगता है, मेरी कलाई ही टूट जायेगी, अगर मैं सावधान न रहा तो...।' इस तरह एक-के-बाद दूसरा करके बहुत से कागज़ लिखे जाते चले गये, लेकिन इनका एक भी शब्द स्पष्ट और पढ़ा जाने लायक नहीं दिख रहा था। लगता था, कोई बहुत छोटा बच्चा पेंसिल से कागज़ पर खेल कर रहा है। लालटेन की रोशनी में इसे देखकर मित्र बोला, 'इसे पढ़ना तो संभव ही नहीं है। इसे यहाँ छोड़ दें तो भविष्य के इतिहासकार इससे चकित रह जायेंगे।' वह इन कागज़ों को बार-बार देखकर ज़ोर-ज़ोर से हँसता रहा। बोला, 'मुझे याद है, पहले स्कूल में इसी तरह से लिखने पर टीचर ने मेरी पिटाई कर दी थी।'

उसने लिखना बंद कर दिया। कुछ मिनट बाद फिर कागज़ पर पेंसिल रखी। लिखा गया: 'हम आ गये हैं और अपनी बात लिखना चाहते हैं। लेकिन अफसोस है कि आप हमारी गति को बरदाश्त नहीं कर पा रहे। क्षमा कीजिएगा और अब अपने को स्थिर करके धीरे-धीरे लिखने का प्रयत्न कीजिएगा। हमें आशा है कि अब परिणाम अच्छा आयेगा।

'मुझे लग रहा है कि मैं तूफान में कौए की तरह उड़ रहा हूँ', मित्र कहने लगा। 'मैं ठहर नहीं पा रहा...मोटा बहुत हूँ न!'

यह कहकर उसने कसकर पेंसिल पकड़ ली और अपने को सँभालने की कोशिश की। 'नहीं, नहीं, ऐसे नहीं,' 'पेंसिल ने लिखा, 'आराम से बैठो और शांति से लिखो। अपने दाँत मत कसो, अपने पर काबू करो। रोकने की कोशिश करो, भले ही तेज़ी महसूस होती हो।'

'इन दोनों बातों को जोड़ पाना आसान नहीं लग रहा', वह बोला। 'इस तरह शांति और गति को जोड़ना भी एक स्थिति हो सकती है, पता नहीं।' उसने एक मिनट के लिए पेंसिल रख दी, बाँहें फैलाईं, उंगलियाँ चटकाईं और दुबारा पेंसिल उठाकर साफ कागज़ पर रखी। फिर बोला, 'पवित्र आत्माओ, मैं तैयार हूँ।' अब तक लिखे कागज़ एक तरफ पड़े थे। 'अब ठीक है। धीरे-धीरे लिखना। जब कभी तेज़ी महसूस हो, अपने को रोकना। तो अच्छा लिखा जायेगा।' अब उसका हाथ स्थिर हो गया था और लिखावट भी सुधर गई थी। कोरे कागज़ पर अक्षर और शब्द जैसे नाचते हुए प्रकट होने लगे।

'हमें खेद है कि हम आपको यह कष्ट दे रहे हैं। लेकिन इस प्रयोग के सफल होने पर मनुष्य के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ सकेगा, और इसमें हमारा महत्वपूर्ण योगदान होगा। इस प्रयत्न से अस्तित्व के सिक्के का दूसरा पहलू, जिसे हम मृत्यु कहते है, सामने आयेगा...। आज आप आधा घंटा यह काम करें, फिर बंद कर दें, और यदि कोई संदेश अधूरा ही रह गया तो दस मिनट और लिख लें, इससे ज्यादा नहीं। इसके बाद एक हफ्ते तक न करें, पानी अगले हफ्ते इसी दिन इसी समय...। हम आपको बता दें कि आपके मित्र को बिलकुल सही परिणाम प्राप्त करने के लिए कुछ और बैठकों का इन्तज़ार करना पड़ेगा। लेकिन शुरुआत के लिए आज जो आपको प्राप्त होगा, वह पर्याप्त होगा। अब पेंसिल रख दें और पाँच मिनट बाद फिर आंरभ करें। आपके स्नायु बहुत उत्तेजित हो उठे हैं, उन्हें आराम की ज़रूरत है...'

मित्र ने पेंसिल रख दी और मुझसे बोला, 'अच्छा लग रहा है? दूसरे संदेशों में तुम्हारी पत्नी का संदेश आ सकता है।' 'आपको कितना धन्यवाद दूँ, समझ नहीं पा रहा', मैंने कहा। इसके बाद हम कुछ देर ऊपर चमक रहे सितारों और तालाबों में पानी को निहारते रहे। पाँच मिनट बीत गये। उसने पेंसिल उठाई और कागज़ पर रखी। 'अब आप ठीक हैं। हमारी बात याद रखें, आधे घंटे बाद लिखना बंद कर दें।' 'याद रखूँगा', मित्र ने उत्तर दिया। 'यह बताइये मेरे मित्र की पत्नी आपके साथ हैं?'

'हाँ, है।' इतने शब्द लिखने में आधा पन्ना भर गया था। मित्र ने उंगलियों को साधा, उन पर काबू किया कि और लिखना शुरु हो गया। 'आपके मित्र की पत्नी यहाँ आरंभ से है। दरअसल

हम उसी के लिए यह उद्योग कर रहे हैं। वह अपने पति से बातचीत करने के लिए बहुत उत्सुक है।' मैंने सिर उठाकर अपने इधर-उधर देखा। बढ़ते जा रहे अँधेरे में हलके प्रकाश की तरह उस लोक की सत्ताएं चमकती लग रही हैं—जैसे सवेरे की घास पर ओस की बूँदें हों।

मैंने मित्र से कहा, 'इनसे पूछिए कि क्या मेरी पत्नी मुझसे सीधे संबंध साध सकती है?' उत्तर आया, 'वह बहुत उत्तेजित है लेकिन आसानी से अपने विचारों को इकट्ठा नहीं कर पा रही...। इस समय वह हमारे द्वारा ही कुछ कह सकती है।' मैं कल्पना में सोचने लगा कि जिस दिन पहली बार मैं उसे विवाह के लिए देखने गया था, तब वह जिस तरह काँप रही थी, उसी तरह इस समय भी काँप रही होगी। मैं जब हॉल में बैठा उसका इन्तजार कर रहा था, तब बगल के कमरे में लगे एक बड़े शीशे में उसकी काँपती हुई काया दिखाई दी थी। इसके बाद मैंने उसे कभी इतना उत्तेजित नहीं देखा। इसके बाद मित्र की पेंसिल रुक गई और कुछ कहे जाने का इन्तज़ार करने लगी। लेकिन अब कुछ पूछने या बताने की ज़रूरत ही नहीं रह गई थी। इतना संदेश काफी था। सांसारिक जीवन के क्षणिक सुखों के विपरीत यह सुख स्थायी आजीवन बने रहने वाले सुखों की तरह था। कुछ क्षण बाद मैंने पूछा, 'उसे हमारी बेटी का नाम याद है?' जवाब आया, 'हाँ, राधा।' यह सुनकर मैं निराश हुआ। बेटी का नाम तो लीला था। बच्ची का नाम भी याद नहीं आया; ग़लती कहाँ है? मेरे मन में सवाल उठने लगे। इस पर उधर से फिर लिखा गया, 'यह महिला यह देखकर मुस्करा रही है कि उसके उत्तर ने पति को कितना परेशान कर दिया है, लेकिन हम पहले ही आपको बता चुके हैं कि आज ज्यादा सही परिणाम नहीं आ सकेंगे। इसमें कुछ कठिनाइयाँ हैं। लेकिन हम कोशिश कर रहे हैं कि ये कठिनाइयाँ दूर हों। आप हमारी स्थिति समझकर इसी से संतोष करें।'

मैंने पूछा, 'लेकिन क्या बच्ची का नाम भी दिमाग़ से निकल सकता है?'

'नहीं, यह बात नहीं है। आप यह सोचने की भूल कर रहे हैं कि यह नाम उसने बताया है। सचाई यह है कि यह नाम आपके अपने मस्तिष्क का ही प्रतिबिंब है। बात यह है कि वास्तविक नामों के लिए कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं। हम कोई विशेष नाम देना चाहते हैं जैसे आपकी बेटी का...लेकिन चूँकि आपके मित्र लिखने का काम कर रहे हैं, इसलिए उनका मस्तिष्क इसमें बाधा उत्पन्न कर सकता है और उसका अपना चुनाव ही लिखने में आ सकता है। राधा नाम के साथ भी यही हुआ है।

मैंने प्रश्न किया, 'इस कठिनाई का क्या कोई उपाय है या नहीं है?' उत्तर आया, 'हाँ, है, लेकिन यह धीरे-धीरे ही होगा। आप याद करें कि आपका नाम और पता, जो हम आपके मित्र को दे सके, वह भी कठिनाई से ही भेजा जा सका था। यह सौभाग्य की ही बात थी कि उस दिन उनका मन एकदम स्थिर और निष्क्रिय था। यदि आपके मित्र एकदम निष्क्रिय हो सकें और अपने विचारों को बिलकुल अलग रख सकें तो ज्यादा सफलता प्राप्त होगी। इसीलिए हमने उनसे कहा है कि आधे घंटे से ज्यादा लिखने का काम न करें क्योंकि इससे ज्यादा समय वें अपने दिमाग़ को निष्क्रिय नहीं रख सकते।' मित्र ने कहा, 'नहीं, मैं इससे कुछ ज्यादा समय अपना दिमाग़ निष्क्रिय रख सकता हूँ।' 'अभी आधा घंटा काफी है। धीरे-धीरे आप यह समय बढ़ा सकेंगे।... अभी इससे ज्यादा न करें। महिला कहना चाहती है कि वह अपने पति और पुत्री से आज भी पहले की तरह प्रेम करती है। वह हमेशा यहाँ से उनको देखती रखती है और उनके लिए शुभकामना करती है— बल्कि यहाँ से वह जब पृथ्वी पर थी, उस समय की अपेक्षा आप सबको ज्यादा स्पष्टता से देख सकती है, यह ज़रूर है कि आपको इसका पता नहीं चलता...। आप दोनों पर ईश्वर का वरद् हस्त बना रहे।'

इसके बाद पेंसिल ने लिखना बंद कर दिया। मित्र ने मुझे इस तरह देखा मानो कह रहे हों,

'अब उठो। आज की बातचीत खत्म हो गई।' लेकिन मैं अभी उठने को तैयार नहीं था। बहुत से सवाल मन में घूम रहे थे। 'एक सेकिंड और...मुझे एक सवाल पूछ लेने दो,' मैंने प्रार्थना की, हालांकि क्या सवाल पूछना है, यह मेरे दिमाग़ में साफ नहीं था। कुछ सोचकर मैं बोला, 'क्या एक हफ्ते से पहले हम फिर बात नहीं कर सकते?...पूछिये...।' लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता था, पेंसिल चल ही नहीं रही थी। मित्र ने कहा, 'ये चले गये। अगले हफ्ते फिर करेंगे।'

अगले हफ्ते हम फिर इसी स्थान पर इसी समय आकर बैठे। झुटपुटा हो रहा था। उन्होंने लिखा: 'हम आ गये हैं। स्थितियाँ सही हैं। लेकिन हमारी बात याद रखें, धीरे-धीरे ही लिखें। कृष्ण की पत्नी सुशीला भी यहीं है और आज वह स्वयं उत्तर देगी।'

सुशीला ने लिखवाया: 'पिछली दफा की बातचीत के बाद से मैं बराबर आपको देखती रही हूँ। आपके मन में बार-बार मेरे बारे में संदेह उत्पन्न होते हैं। यह स्वाभाविक है। आप जो देख नहीं सकते, उस पर विश्वास कैसे कर सकते हैं? यह मैं न होकर कोई और भी हो सकती हूँ—आप यही सोचते रहे हैं। मैं गलत कह रही होऊँ तो बतायें।'

'तुम बिलकुल ठीक कह रही हो,' मैंने तुरंत उत्तर दिया। इसके लिए ज्यादा सोचने की ज़रूरत ही नहीं थी। 'इसीलिए मैंने पहले यही कहना ठीक समझा। और इस बीच में स्वयं बात कर सकने की योग्यता प्राप्त करने की कोशिश करती रही हूँ, और मेरे सहायक मुझे बहुत अच्छी तरह शिक्षित कर रहे हैं। यह मेरा पहला कदम है। उम्मीद है, तुम्हें यह ठीक लगेगा। मेरा ख्याल है कि शुरुआत के लिए इतना काफी है।'

'हाँ, काफी है, शुरुआत के लिए...,' यह मैंने तमिल में कहा।

'मैंने अपने वक्त में बहुत शुद्ध तमिल नहीं सीखी थी, इसलिए मेरे जवाब में गलतियाँ हो जायँ, तो हँसना मत,' उसने जवाब दिया।

'अरे नहीं, तुम्हारी तमिल बहुत अच्छी थी, तुम पत्र बहुत शुद्ध भाषा में लिखती थीं।'

'फिर भी तुमने मेरे सब पत्र नष्ट कर दिये हैं,' उसने शिकायत की। 'यह तुम कर कैसे सके?' यह सुनकर मैं चकित रह गया। किसी को इसका पता नहीं था। जिस दिन मुझे उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं रही, उस रात, अपने कमरे में, उसे भीतर से बंद करके मैंने उसके पत्रों के सभी बंडल निकाले और उनके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें आग में जला दिया। यही नहीं, शादी के शुरु के दिनों में मैंने जो डायरी लिखी थी, उसके पृष्ठों को भी जला दिया था। फिर दाँत पीसकर मैंने अपने-आपसे कहा था, 'ज़िंदगी ने मेरे साथ बहुत बुरा किया है, उसको यह मेरा जवाब है। मैं उसकी हर याद को मिटा दूँगा। इसी तरह मेरा दुख खत्म होगा...।'

मैंने पूछा, 'तुम्हें इसका कैसे पता लगा?'

'तुम्हारे दिमाग़ को पढ़ने से। कल तुम जब अपनी दराज़ खोलकर कुछ सोच रहे थे, तब मैं तुम्हें देख रही थी। अगर तुम हर रोज़ यह बात न सोचते तो मुझे पता भी नहीं चलता। जिस समय तुम यह काम कर रहे थे, तुम्हें याद होगा कि मैं दुनिया छोड़ रही थी, और उस स्थिति में कुछ दिखाई नहीं देता। कुछ समय बाद ही ये बातें समझ में आती हैं। तुमने मेरे खत ही नहीं नष्ट कर दिये, अपने खत भी, जो तुमने मुझे लिखे थे, नष्ट कर दिये। क्या इसीलिए, जब मैं अपने घर से तुम्हारे यहाँ आती, तुम अपने खत मुझसे वापस ले लेते थे?' हमारे बीच यह अलिखित समझौता था, कि जब भी हम एक-दूसरे से अलग होते तो एक दिन छोड़कर एक दूसरे को पत्र लिखते थे, और इसके बाद फिर जब मिलते तो अपने उसको लिखे सब पत्र मैं वापस ले लेता, और दोनों के पत्रों के अलग-अलग बंडल बनाकर उन्हें नष्ट करने का विचार करता, लेकिन उसके विरोध के कारण फिर संभालकर रख देता था।

'तुमने यह सब क्यों किया?' उसने पूछा।

'मुझे बहुत अफसोस है। इस तरह मैं अपनी यादों को खत्म कर देना चाहता था।'

'इस तरह क्या यादों को भुला सके? पत्रों को नष्ट करना क्या बचकानी हरकत नहीं थी?'

'मुझे लगता था कि यादें मुझे परेशान करेंगी।'

'हाँ, शुरू में, यह सही है, कि ऐसा ही लगता है। लेकिन, मैं तुम्हें बताऊँ, कि आदमी उन सभी चीज़ों से, जो मरहूमा की याद दिलाती हैं, घिरा रहना चाहता है। जैसे, पहिये का चक्कर जो लौट कर वहीं आ जाता है। मनुष्य बहुत-सी यादों को भुलाने के लिए शराब का सहारा लेते हैं, लेकिन कुछ समय बाद वे ही यादें और ज्यादा ताकत के साथ लौट आती हैं। मैं तुम्हारी भावनाएं समझ सकती हूँ लेकिन तुम्हारे इलाज पर मुझे हँसी आती है।' मुझे यह सुनकर शर्म आई और लगा कि सचमुच मैंने बच्चे की तरह व्यवहार किया है। उसने फिर कहा, 'मैं ज्यादा बोल गई होऊँ तो माफ करना, लेकिन तुम्हारे इन कामों से मुझे चोट पहुँची है।'

मैं बोला, 'तुमने जो कहा, वह बिलकुल सही है। तुम्हें यह कहने का अधिकार भी है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे! कल मैं इतना दुखी था कि तुम्हारी कोई भी चीज़ मिल जाय तो उसे देखना चाहता था, लेकिन तुम्हारा एक भी पत्र कहीं नहीं मिला।'

अब सहायकों का संदेश आया, 'यह महिला हँस रही है और हँस-हँसकर पागल हुई जा रही है। कह रही है कि किसी भी बात पर इतने दुखी मत हो— इस बात पर भी।'

'मैं यही करूँगा...,' मैंने उत्तर भेजा।

'तुम्हें इतना विनम्र भी नहीं होना चाहिए,' उसने कहा, 'और मेरी हर बात इसलिए नहीं मान लेनी चाहिए क्योंकि मैं इस पार से कह रही हूँ। अगर कहीं मैं गलती करूँ तो मुझे बता दिया करो।'

'नहीं, नहीं, तुम बहुत सही बात करती हो,' मैंने कहा।

'मैं जब अपने घर से वापस आती थी, तब पहली ही दफ़ा तुम मेरी हर बात मान लिया करते थे। मेरी किसी भी बात का विरोध नहीं करते थे। अच्छा, तुम्हें एक बात बताऊँ... मेरे करीब चौदह पत्र अभी बचे हुए हैं। मुझे यह तो याद नहीं कि वे पत्र मेरे हैं या तुम्हारे, लेकिन मैंने उन्हें बाँधकर रख दिया था—वे या तो मेरे ट्रंक में होंगे या पिताजी के यहाँ किसी बक्स में रखे होंगे।'

मैं एक मिनट सोचता रहा, फिर बोला, 'मेरा ख्याल है कि तुम्हारी बात सही नहीं है। मुझे याद है कि मैंने हर एक पत्र नष्ट कर दिया है।'

'नहीं, इन चौदह पत्रों के बारे में मैं निश्चित हूँ। मुझे इनकी संख्या पूरी तरह याद है और यह भी कि मैंने ये तुम्हें नहीं दिये थे क्योंकि तुम उस वक्त किसी और काम में व्यस्त थे। यह कब की बात है, यह तो याद नहीं लेकिन यह याद है कि उसके बाद कई दफ़ा इन पर मेरी नज़र भी पड़ती रही। बस, यह याद नहीं है कि पिताजी के घर में हैं या अपने घर में।' फिर आग्रह करके कहा, 'इनकी ज़रूर अच्छी तरह तलाश करना—और मिल जायें तो पहले की तरह नष्ट मत कर देना।'

'नहीं, अब ऐसा नहीं होगा', मैंने विश्वास दिलाया।

'एक बात और। मेरी खातिर मेरा चंदन का डिब्बा सँभालकर रखना। उसमें मेरी कुछ छोटी-छोटी चीज़ें रखी हैं।' मैं इस डिब्बे के बारे में सोचने लगा—मुझे उसकी हर चीज़ की जानकारी थी, कहाँ हो सकता है यह? 'मुझे तुम्हारे ऐसी किसी डिब्बे की याद नहीं आ रही? कहाँ है यह?' मैंने पूछा।

'यह ज्यादा बड़ा डिब्बा नहीं है; आठ-दस इंच लंबा, तीन इंच ऊँचा और चार इंच चौड़ा है, और इसका ढक्कन बिलकुल सपाट न होकर ज़रा ऊँचा-सा है। तुम्हारी माँ ने मुझे यह दिया था, हाथी-दाँत और चंदन का। इसमें मेरी कुछ चीजें रखी हैं। मुझे यह बहुत प्रिय था, इसे सँभालकर

रखना। इसके अलावा मेरा सब कुछ, तुम फेंक सकते हो, बाकी सब बेकार है।'

'मैं तुम्हारी ज़रा-सी भी चीज़ नहीं फेंकूँगा। हर चीज़ सँभालकर रखूँगा, यह भी-अगर मिल जाय तो? लेकिन मुझे इसकी कोई याद नहीं आ रही है।'

इसके बाद दूसरे वार्तालाप में उसने कहा, 'बच्ची के लिए तुम बहुत ज्यादा परेशान रहते हो। उसकी ज्यादा चिंता मत किया करो। तुम जब कॉलेज में होते हो, स्वतंत्र मन से काम नहीं कर पाते, हर वक्त यही सोचते रहते हो कि 'लीला क्या कर रही होगी?' वह दिन-भर खुश रहती है, पड़ोसी की लड़की के साथ खेलती रहती है या अम्मा से कहानियाँ सुनती रहती है। फिर जब तुम लौटते हो, दरवाज़े पर तुम्हारा इंतज़ार करती है। इस वक्त उससे मिलकर तुम सोचने लगते हो कि यह दिन-भर तुम्हारा इन्तज़ार करती रही और यह सोचकर दुखी होते हो। लेकिन तुम यह नहीं सोचते कि तुम उसके लिए क्या कर सकते हो। घर के पास एक बच्चों का स्कूल है, जहाँ वह जाना चाहती है। अम्मा उसे कई दफा ले भी जाती है, और वहाँ वह खेलती रहती है। वहाँ के लोग उसे चाहने भी लगे हैं। तुम उसे स्कूल में भरती क्यों नहीं कर देते? वहाँ वह बहुत खुश रहेगी।'

मैंने तुरंत इसका खंडन किया। कहा, 'मुझे नहीं लगता कि वह स्कूल जाती है। नहीं तो वह बताती ज़रूर...?'

'वह एक-दो दफा ही गई है...फिर भूल गई होगी। याद आ गया तो ज़रूर बतायेगी। जो हो, उसे स्कूल अच्छा लगे तो भर्ती करा दो...।'

'ठीक है, लेकिन स्कूल जाने के लिए अभी, वह बहुत छोटी है?'

'उसे वहाँ अच्छा लगेगा। और वहाँ कोई नियमित पढ़ाई नहीं है। वहाँ वह दूसरे बच्चों से मिलेगी और जब चाहेगी, घर लौट आयेगी।'

'ठीक है, मुझे कोई एतराज़ नहीं है। लेकिन वहाँ की टीचर इसके लिए तैयार न हों तो...।'

'नहीं, बहुत छोटे बच्चों का स्कूल है...।'

'अच्छा, तुम बच्ची को कितना देखती हो?' मैंने पूछा।

'जितना दूसरे देखते होंगे, शायद कुछ ज्यादा...? मेरी उसके दिल तक सीधी पहुँच है। मैं उसे हमेशा देखती रहती हूँ।'

'वह देखती है, तुम्हें?'

'शायद देखती है। बच्चों की नज़र प्राकृतिक रूप से ज्यादा तेज़ होती है। वह मुझे देखती है और स्वाभाविक ढंग से इस बात को लेती है, क्योंकि बच्चे लोगों की आत्मा को ही देखते हैं। बच्चे आत्मरूप ही होते हैं इसलिए ये बातें उनके लिए सहज और स्वाभाविक होती हैं।'

'तुम्हें देखकर वह रोती क्यों नहीं?'

'यह भी उनके लिए सहज बात है, और अपने भीतर उनमें कुछ रुकावटें भी होती हैं। वह शायद इसलिए उतनी बातें नहीं करती जितनी करना चाहती होगी, क्योंकि वह देखती है कि तुम लोग मेरे बारे में भी उससे बहुत सी बातें नहीं करना चाहते। तुमने देखा होगा कि वह मेरे बारे में बहुत कम बात करती है। तुम्हारा ख्याल है कि वह मुझे भूल गई है—इसलिए नहीं करती? और तुम क्या यह नहीं मानोगे कि मेरे लिए उसके मन में बहुत शांति है, जो तुम बड़ों में नहीं है, जबकि उसके लिए मैं दूसरों से ज्यादा महत्वपूर्ण रही?'

अब मैं हलके मन से कॉलेज जाने लगा हूँ। लगता है, दिमाग़ पर से काफी बड़ा बोझ हट गया है। मेरा दिन नई संभावनाओं और आश्चर्यों से भरा होता। घर पर भी पढ़ने-लिखने में मेरा मन ज्यादा ही लगने लगा। व्यर्थता का भाव समाप्त होने लगा। अपने कार्य में अब मैं अधिक ध्यान

देता था। सवेरे देर तक उस दिन लिये जाने वाले क्लासों की तैयारी करता। बेटी मुझे देखती रहती। 'पापा पढ़ रहे हैं', वह कहती। वह भी कुर्सी खींचकर मेरे पास बैठ जाती और किताब हाथ में लेकर, कोई भी किताब जो उसे अच्छी लगती, पढ़ने लगती, और जब उसे सामने के घर से कोई गिलहरी या चिड़िया दीख जाती तो एकदम कहती, 'पापा, चिड़िया आ गई। यह भी पढ़ती है? यह भी स्कूल जाती है?'

'बेबी, बाहर जाकर उसी से पूछों,' मैं कहता, इसलिए भी कि अपना काम अच्छी तरह कर सकूँ। एक दफा बाहर चली जाती तो उसे कोई चीज़ आकृष्ट कर लेती और वह वापस लौटना भूल जाती थी। जब उसने स्कूल का नाम लिया तो मुझे एकदम याद आया, और मैं उससे एक सवाल पूछने ही वाला था कि कुछ सोचकर रुक गया, क्योंकि मैं यह देखना चाहता था कि उत्तर पहले वह देती है या अम्मा की तरफ से उत्तर आता है। और उसी शाम यह विषय सामने आ गया। जब मैं घर लौटा तो बच्ची बाहर थी। किचेन में अम्मा ही थी। मैंने पूछा, 'लीला कहाँ है?'

'स्कूल गई है,' अम्मा ने जवाब दिया।

'कौन सा स्कूल?' मैंने अनजान बनकर कहा।

'वह छोटे बच्चों का स्कूल...बगल वाली सड़क पर। मैं एक-दो दफ़ा उसे वहाँ ले गई क्योंकि वह दूसरे बच्चों को देखना चाहती थी, और वहाँ के लोग भी उसे बहुत चाहने लगे हैं। आज टीचर ने कहा कि वह खुद शाम को उसे घर छोड़ जायेगा। अभी वह आयेगी भी नहीं, क्योंकि वह मिट्टी से हाथी-घोड़े बना रही है। उसे रंगीन कागज और कैंची भी दी गई है जिससे कुछ बना सके। बहुत खुश है वहाँ।'

'तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि उसे स्कूल ले जाना चाहती हो?'

'मैं उसे दो दिन कुछ मिनटों के लिए ही ले गई थी। फिर एक शाम जब वह सहेली के घर में थी, सहेली स्कूल जाने लगी, तो वह भी साथ चली गई। बेचारी, उसे भी तो वक्त बिताने के लिए कुछ करने की ज़रूरत है...अब तो उसकी माँ भी नहीं है।'

आधे घंटे में लीला घर वापस आ गई। टीचर उसे दरवाज़े पर छोड़ गया। मुझे देखते ही चिल्लाई, 'पापा, आज मैं भी तुम्हारी तरह स्कूल गई थी।' मैं बाहर गया और उसे गोद में उठा लिया। टीचर कुछ दूर आगे चला गया था।

'तुम्हारा टीचर है वह?' मैंने पूछा।

'हाँ।'

'उसे बुलाओ,' मैंने कहा। इस पर उसने आवाज़ लगाई, 'टीचर जी, आपको पापा बुला रहे हैं।' वह वापस लौट आया।

'आप स्कूल के हेडमास्टर हैं?' मैंने पूछा।

'जी।'

'क्या किसी क्लास में इसे भी भरती किया जा सकता है?'

'जी हाँ। और वहाँ यह खुश भी रहेगी। हम भी इसे दाखिल करके खुश होंगे।'

'कितने घंटे रहना पड़ता है?'

'यह जब चाहे जा सकती है और वापस आ सकती है। घंटों का कोई बंधन नहीं है। आप इसे भेज दीजिए। यह हमारे साथ बहुत खुश रहेगी।'

'आपका नाम जान सकता हूँ?'

'सिर्फ हेडमास्टर से काम चल जायेगा...,' उसने कहा।

बच्ची खुशी से नाचने लगी। वह स्कूल के बारे में बताने लगी। 'पापा, जानते हैं, मैंने मिट्टी का बैंगन बनाया है। टीचर ने कहा, बहुत अच्छा है।' 'ठीक है,' यह कहकर मैं उसके पास बैठ

गया और उसके लिए अम्मा ने जो नाश्ता तैयार किया था, उसे खिलाया। वह इतनी खुश थी कि खाने में उसका मन नहीं लग रहा था। मैंने बहला-बहला कर उसे खिलाया। फिर उसे बाथरूम ले गया। मिट्टी से काम करने के कारण उसके हाथ और मुँह सने थे। मैंने पानी में तौलिया गीला करके उसका मुँह तब तक पोंछा, जब तक वह चमकने नहीं लगा। फिर अम्मा के पास भेज दिया कि उसके बाल काढ़ दे।

फिर रोज़ की तरह उसे घुमाने निकला। मार्केट रोड ले गया जो हमेशा भीड़-भाड़ से भरी रहती थी। यहाँ उसे बहुत अच्छा लगता था और घूमते हुए वह बहुत से सवाल पूछती जाती थी। उसकी बातें और टिप्पणियाँ अच्छी लगती थीं। दुकान से उसे मैंने मिठाई दिलवाई। वह ज्यादातर स्कूल की बातें ही करती रही। 'पापा, स्कूल में मेरी एक सहेली है। उसके पापा उसे ढेर सारी मिठाइयाँ देते हैं। लेकिन आप मेरे लिए एक-दो ही यों खरीदते हैं?'

'बच्चों को एक दफ़ा में एक-दो से ज्यादा नहीं खानी चाहिए।'

'बहुत अच्छी लड़की है, हमेशा मेरे साथ स्कूल में खेलती है,' उसने कहा। 'मैं स्कूल जाऊँगी तो मैं भी उसकी तरह लंबी हो जाऊँगी?'

'हाँ, हाँ, ज़रूर हो जाओगी', मैंने कहा।

'अच्छा पापा, तुम इतनी दूर अपने स्कूल में क्यों जाते हो? मेरे ही स्कूल में जाया करो।' इसके बाद उसने बाज़ार में कुछ गाँववालों को पगड़ी बाँधकर घूमते देखा। पूछने लगी, 'ये लोग जब सोते हैं, तब भी इन्हें पहने रहते हैं?' उसके सवाल क्यों इतने मनोरंजक होते थे? यहाँ से मैं उसे नदी किनारे ले गया। यहाँ पहुँचते ही उसने बालू पर दौड़ना शुरु कर दिया। जहाँ कुछ और भी बच्चे खेल रहे थे। एक की तरफ इशारा करके वह बोली, 'यह लड़की स्कूल में पढ़ती है।'

'नाम क्या है उसका?'

'कमला।'

'तुम्हारी दोस्त है वह?'

'बहुत अच्छी लड़की है।'

'तुम भी उसके साथ जाकर खेलो,' मैंने कहा। वह कुछ और बच्चों के साथ रेत पर घेरा बनाकर खेल रही थी। मेरी बात सुनकर लीला ने आँख झपकाई और गंभीरता से बोली, 'अगर मैं उसके साथ खेलने को कहूँगी तो वह गुस्सा हो जायेगी।'

'उसे बुलाओ, मैं देखता हूँ।'

'कमला, कमला!' उसने काफी धीरे से आवाज़ दी। फिर कहने लगी, 'कमला उसका स्कूल का नाम है, बाहर इस नाम से वह गुस्सा हो जाती है।'

हम आगे बढ़े। और भी लड़कियाँ यहाँ खेल रही थीं और उसने कहा कि ये भी उसकी दोस्त हैं। लेकिन वह उनसे बात करने को तैयार नहीं थी। वह हर लड़की को दोस्त ही कहती थी, भले ही वह उसके या किसी और स्कूल की हो, और वह खुद किसी को जानती न हो।

दूसरे दिन उसे स्कूल में भर्ती कराना था। मैं इतना खुश था जैसे मुझे खुद ही दाखिला लेना हो। मैंने सवेरे मेज़ पर बैठकर पढ़ने का कोई काम नहीं किया और उत्साह से घर-भर में घूमता रहा। उसका ट्रंक खोलकर साफ-सुथरे सूती कपड़े निकाले। लीला ने उन्हें देखा तो कहा, ये नहीं, सिल्क की झालरदार फ्राक पहनकर वह स्कूल जायेगी। मैंने कहा, 'बेबी, स्कूल में सिल्क पहनकर कोई नहीं जाता। क्या मैं सिल्क की कमीज़ पहन कर कॉलेज जाता हूँ?'

'तुम इसलिए नहीं पहनते क्योंकि तुम्हारे पास सिल्क के कपड़े हैं ही नहीं,' उसका उत्तर था। 'मैं तो यही पहनकर जाऊँगी। नहीं तो वे मुझे भरती नहीं करेंगे।'

उसने सारा बक्स देखकर गहरे हरे रंग की सिल्क की फ्राक निकाली जिस पर तीन इंच चौड़ी

झालर लगी थी, और लाल रंग की स्कर्ट जिस पर सितारे जड़े थे—स्कूल के लिए ये दोनों बहुत चमकदार थे। इन्हें उसकी माँ ने उसकी सालगिरह के लिए बॉम्बे क्लॉथ एम्पोरियम से खरीदा था। सालगिरह से दो दिन पहले हम वहाँ गये थे और घंटे-भर की मेहनत के बाद सुशीला ने इनका चुनाव किया था। लीला को भी ये बहुत पसंद आये थे। तब भी मैंने कहा था, 'ये तो बहुत तड़क-भड़क वाले कपड़े हैं,' तो उसने जवाब दिया था कि 'बच्चों के लिए तड़क-भड़क ही पसंद की जाती है, खास तौर से, अगर वे लड़कियाँ हों। इन्हें बच्चे नहीं तो और कौन पहनेगा?'

इस पर मैंने कहा था, 'ठीक है, फिर तुम अपने लिए भी ऐसा ही कुछ खरीद लो।' मैंने तो मज़ाक किया था लेकिन उसने सही मान लिया और कहने लगी, 'नहीं, मेरा ख्याल है कि इस तरह की साड़ियाँ बनाई ही नहीं जातीं। बनती हैं क्या?' फिर वह दुकानदार से इस बारे में पूछने चली गई।

बच्ची को भी ये कपड़े बेहद पसंद थे और वह इन्हें ज्यादा से ज्यादा अवसरों पर पहनने की कोशिश करती थी। आज तो उसने इतनी ज़िद की कि हारकर मुझे मानना ही पड़ा। वह तो फौरन ही पहन लेना चाहती थी लेकिन मैंने कहा कि नहाकर कंघी करने के बाद पहन लेना। यह कहकर मैंने कपड़े बक्स में रख दिये तो वह मेरे पीछे पड़ गई, 'पापा, जल्दी से मुझे नहला दो... चलो, अभी चलो।' मैंने उसे अम्मा के सुपुर्द कर दिया और खुद उसके तितर-बितर हुए बक्स का हर कपड़ा करीने से तह करके रखने लगा। फ्राक और स्कर्ट की उसके पास चालीस जोड़ियाँ थी। उसकी माँ को जब भी कोई काम न होता तो वह बच्ची के लिए कपड़े तैयार करती रहती, और उसकी दादी, नानी, चाचा वगैरह भी, जिस दिन से वह पैदा हुई थी, उपहार के रूप में नए कपड़े भेजते रहते थे। इस कारण कीमती कपड़ों का इतना बड़ा अंबार जमा हो गया था कि उनकी सँभाल करना बहुत मुश्किल हो गया था—उनकी गिनती करना ही उसकी ज़िंदगी का एक प्रमुख काम हो गया था।

कुछ देर बाद लीला शानदार कपड़ों में बनी-ठनी मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। मुझे लगा कि वह अपनी माँ का ही लघु संस्करण है। 'चलिए, पापा!' यह सुनकर मैं कुछ देर यही सोचता रहा कि यह उसकी माँ बोल रही है या वह खुद। उसके होंठ और सिर घुमाने का ढंग भी उसी जैसा था।

'मैं किताब ले जाऊँगी,' वह बोली।

'नहीं, आज नहीं...।'

'किताब नहीं ले जाऊँगी तो टीचर नाराज़ हो जायेंगे।' यह कहकर उसने तस्वीरों वाला सूचीपत्र उठा लिया, उसे उंगलियों से पकड़कर छाती से सटाया और उत्साह से मेरा हाथ पकड़ कर चल पड़ी।

स्कूल दूसरी सड़क पर था। छोटे से कंपाउउंड में कुछ पेड़ और ईंट के रंग की इमारत। सड़क का मोड़ मुड़ते ही बच्चों का शोर सुनाई देने लगा। हेडमास्टर गेट पर ही खड़ा मिल गया। जैसे ही हम अंदर घुसे, कुछ बच्चे लीला को अपने साथ ले गए। वह बिना कुछ कहे उनके साथ चली गई। उसके व्यवहार से लग रहा था कि इस स्कूल में वह सालों से पढ़ रही है।

हेडमास्टर भी बहुत खुश दिख रहा था, बोला, 'आप हमारा स्कूल देखना नहीं चाहेंगे?'

उसने बड़े हॉल को बाँट कर कई कमरे बना दिये थे। बाँटने वाली दीवारों पर तरह-तरह के रंगों में वर्णमाला के अक्षर लिखे थे और प्राय: सभी वस्तुओं के चित्र बने हुए थे— मनुष्य, पशु-पक्षी, नदी पहाड़, आसमान। हेडमास्टर ने गर्व से बताया, 'सब हमारे बच्चों ने बनाये हैं। ...बहुत अच्छे चित्रकार हैं सब...। उनका काम देखकर आश्चर्य होता है। आपको बताऊँ, सर, इनके बीच रहने का मतलब है, दुनिया का सब कुछ प्राप्त हो गया।' वह मुझे सारा स्कूल दिया दिखा लाया,

बहुत थोड़ी जगह में बच्चों के लिए तरह-तरह के खेल बना दिये थे—झूले, सरकने और चढ़ने-उतरने वाले लोहे के खेल, छोटे-बड़े घर, रेत पर बने टीले इत्यादि। 'यही कक्षाएं हैं।' उसने कहा। 'उनके लिए और हमारे लिए भी आप उनके करतब देखें...।' बच्चे रेत में चीज़ें बना रहे थे, सीढ़ियों पर चढ़-उतर रहे थे, झूल रहे थे—सब बहुत खुश थे। 'यही अर्थ है 'खुशी' शब्द का—अपने शुद्ध रूप में।' हम उन्हें खेलते देखकर और उनके साथ खेलकर बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनके साथ मिलने की योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है...।' बच्चे रंग-बिरंगे कपड़े पहने, खुशी से लबालब, इधर-उधर खेलकूद रहे थे। हेडमास्टर कह रहा था, 'जब मैं इन्हें देखता हूँ, मुझे जीवन और सत्ता के उद्देश्य की झलक मिलने लगती है।' मुझे यह बहुत विशेष व्यक्ति लगा।

मैंने पूछा, 'बच्चे खेलते ही रहते हैं तो उन्हें पढ़ाया कब जाता है?'

'खेल के ही साथ— मैं बीच-बीच में उन्हें इकट्ठा करके बातें करता हूँ, और बोर्ड के सामने ले जाकर लिखना सिखाता हूँ। इस तरह वे ज्यादा सीखते हैं। खेल में ही शिक्षा देने की बात तो लोग बहुत करते हैं, लेकिन कर के कोई नहीं दिखाता। उनकी शिक्षा का मतलब है मीटिंगों और कान्फ्रेंसों में पेपर पढ़ना और इन सबका प्रबंध करने वालों को डिगरियाँ देना। अरे, मैं इन सब बातों पर ज्यादा बोलूँगा तो आप मुझे बोर समझेंगे...।' दुबला-पतला और खुरखुरा-सा यह आदमी, इसे अपने रख-रखाव की भी परवाह नहीं थी—बाल गर्दन पर लटक रहे थे, इसलिए नहीं कि वह इन्हें इसी तरह रखना चाहता था, बल्कि इसलिए कि वह इनके प्रति लापरवाह था। कोट पर इस्तिरी नहीं की गई थी, और वह उधड़ भी रहा था। मुझे यह आदमी पसंद आया। मुझे लगा कि परिचय होने पर मुझे इसमें और भी खूबियाँ नज़र आयेंगी। मुझे उसे जानने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गई। मैंने कहा, 'कभी मेरे घर आइये।'

'मैं छुट्टी करूँ तभी घर आ सकूँगा। दरअसल मैं छुट्टियों से नफरत करता हूँ। यह काम मैंने दस-पंद्रह साल पहले शुरू किया था, और कभी मुझे छुट्टी की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। मैं इतवार का दिन भी यहीं रहकर गुज़ारता हूँ। यह बहुत अच्छी जगह है, एक बगीचा भी है। जिसे बच्चों ने ही बनाया है।' वह बाँसों से बने एक रास्ते से मुझे वहाँ ले गया, जहाँ छोटी-छोटी क्यारियाँ थीं। वह लगातार बोलता जा रहा था। 'यह आदमी कभी सोता भी है।' मैंने सोचा। 'तो इतवार के ही दिन यहाँ आने के बजाय मेरे घर आ जाना', मैंने कहा और वह तैयार हो गया। मुझे महसूस हुआ कि मैं जीवन में एक महत्वपूर्ण संबंध बना रहा हूँ।

आत्माओं से इसके बाद की हमारी बातचीत बिलकुल निराशाजनक रही। लेकिन इसके लिए शायद मेरे अपने दिमाग़ की स्थिति ही ज़िम्मेदार थी। इस अनुभव की पहली उत्तेजना समाप्त होने के बाद मैं प्रश्न करने पर ही उतर आया था। मेरा मित्र जैसे ही पेंसिल से लिखने को तैयार होता, मैं पूछता, 'हम आखिरी बार जब एक साथ कहीं गए थे, उसकी तुम्हें याद है?'

'याद है।'

'तुम बता सकती हो कि हम कहाँ गए थे और उस दिन की कुछ घटनाएं भी बताओ।' मैंने पूछा।

'आखिरी बार तुम्हारे साथ जाने की मुझे याद है। हम शायद मंदिर गए थे, फिर बच्ची के लिए कुछ खरीदा, और एक रँग-पुते घर भी गए थे। नौकर हमारे साथ था और हमने कुछ खरीदारी भी की थी।'

'हाँ,' मैंने कहा, 'और क्या-क्या याद है?' पेंसिल कुछ देर रुकी रही, फिर लिखने लगी, 'रास्ते में हमें एक काफी बड़ा साँप मिला और तुमने उस पर पैर ही रख दिया था। हम पूजा के लिए पीतल का एक लैंप और एक खिलौना इंजन भी लाए थे।'

'जिस घर में हम गए थे, उसमें क्या हुआ था, इसकी याद है?'

'नहीं,' उत्तर आया।

'कुछ भी नहीं हुआ था?' मैंने सवाल किया। उत्तर सहायक ने दिया, 'किचेन की नीची छत से उसका सिर टकरा गया था और महिला हँस रही है क्योंकि पीछे के मैदान में तुम फिसलकर गिर पड़े थे...।'

'लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। मैं नहीं जानता, कि वह क्यों हँस रही है,' मैं बोला।

सहायक का उत्तर आया, 'वह वादा करती है कि अगली बार ज्यादा अच्छा करेगी।... दरअसल यादों में से सही बातें छाँटकर निकालने और उन्हें सही ढंग से बताने में कठिनाइयाँ आती हैं। अब आप पूछना बंद कर दें। वह आपको और बच्ची को प्यार कहती है...।' इसके बाद वे चले गये और पेंसिल ने लिखना बंद कर दिया। मित्र ने कहा, 'लगता है, आधा घंटा पूरा हो गया।' मैं वापस जाने लगा, लेकिन आज की बातचीत से मैं खुश नहीं था। उसकी बताई बातों में से एक-दो को छोड़कर सब गलत थीं। मैं मन ही मन में भुनभुनाता हुआ घर की ओर चला, 'अब हफ्ते-भर इसी मनस्थिति में रहना पड़ेगा।'

हफ्ता बीत गया। अगले बुधवार को हम फिर वहीं पहुँच गये। इस बीच मैं उसके उत्तरों की जाँच करता रहा और पाया कि ज्यादातर बातें सही थीं—मंदिर, रंगा-पुता घर, बच्चे के लिए खरीदारी और लैंप। वह जब भी मायके जाती थी, नया लैंप और वहाँ सबके लिए छोटी-मोटी चीज़ें ज़रूर खरीदती थी, और आखिरी दिन बच्ची के लिए खिलौना-इंजन भी खरीदा था। और जहाँ तक किचेन की छत से उसका सिर टकराने की बात है, वह अपनी उम्र के लिहाज़ से काफी लंबी थी और उसे इस बात का गर्व था कि छतें छोटी होती हैं और उसके सिर से टकराती रहती हैं, और यह बात अक्सर कहा भी करती थी। मैं पीछे के मैदान में कब गिरा था, यह तो मुझे याद नहीं आया, लेकिन बाकी सब बातें सहीं थीं, हालांकि उनका क्रम गलत था। मैंने मित्र को यह बात बताई तो उसने इसका जिस प्रकार विश्लेषण किया, वह सही हो सकता था। वह बोला, 'अच्छा, मैं तुमसे अचानक एक प्रश्न पूछता हूँ। तुमने इस शर्ट का कपड़ा कब खरीदा?' मैं अपनी नीली शर्ट को देखने लगा। 'तुम इसके ऊपर जो कोट पहने हो, उसे लेने से पहले खरीदा या बाद में? और उस दिन घर लौटते हुए तुमने और क्या-क्या और कितना-कितना खरीदा?... अब इन सब अनुभवों के बीच रहते हुए भी तुम्हारे लिए एकदम इन सब सवालों का जवाब देना कठिन होगा। जैसे, पिछले हफ्ते आज के दिन मैंने रात के खाने में क्या खाया, यह मैं नहीं बता सकता...। इस तरह हमारे लिए समय के अनुसार सब बातों का क्रम लगाना मुश्किल होता है, तो जो लोग ऐसे संसार में रह रहे हैं जो हमारे संसार से बिलकुल भिन्न है और जहाँ काल की सत्ता ही नहीं है, वहाँ तो इन बातों का उत्तर देना और भी कठिन होगा। अगर मेरा सोचना सही है तो वहाँ के लोगों के अनुभव पूरे होते हैं, हमारे अनुभवों की तरह टुकड़ों में बँटे हुए नहीं होते उनकी सब यादें एक-दूसरे के साथ मिलकर, काल की सत्ता के अभाव में, एक समग्र याद बन जाती है। मेरा ख्याल है कि उनके उत्तरों की अस्पष्टता का यही कारण है। इस तथ्य में अगर यह भी जोड़ दें कि उनकी स्मृति में चुनाव की स्वतंत्रता भी शामिल होती है, इसलिए हो सकता है कि वे बुरी स्मृतियों को यहाँ अपने शरीरों के साथ ही छोड़कर उस स्थिति में चले जाते हों। इन सब संभावनाओं के साथ विचार करने पर हमें उनकी कमियाँ समझ में आ जाएंगीं।

हर मीटिंग में सुशीला अपने चंदन के डिब्बे और चौदह पत्रों को ढूँढ़ने के लिए कहती। मैं यह काम ज्यादा गहराई से इसलिए नहीं कर पाता था क्योंकि उसके कमरे में जाकर उसके ट्रंकों को खोलना मुझे असंभव जान पड़ता था। एक छुट्टी के दिन मैंने इसके लिए अपने को तैयार किया।

मैंने उसके कमरे का दरवाज़ा खोला तो उसके ट्रंक और इधर-उधर रखी, उसकी चीज़ें देखकर मेरा हृदय रुआंसा हो उठा। ट्रंकों के बीच बैठकर मैं सोचने लगा, 'हम सबके लिए किसी की मृत्यु के बाद उसकी सभी वस्तुएं यादगारों में बदल जाती हैं। दुनिया में ऐसा कौन है जो इससे अलग हो?' मुझे यहाँ देखकर मेरी बेटी उत्साह से भर उठी, और सहेली के साथ जाकर खेलने का प्रोग्राम रद्द कर मेरे काम में हाथ बँटाने यहीं आ गई।

पहले मैंने सुशीला का पीला ट्रंक खोला जिसमें वह जीवन-भर एकत्रित अपने साज-श्रृंगार की वस्तुएं रखती थी। इसमें कई खूबसूरती से मढ़े हुए शीशे और छोटी-छोटी शीशियाँ थीं। उसे इन सबका बड़ा शौक था और जब भी वह किसी दूकान पर कोई नई चीज़ देखती, जो लाल, नीले, पीले, सभी रंगों की होती थी, खरीद लेती थी। ये सब वस्तुएं एक-एक करके मैंने निकालीं। फिर तरह-तरह के कार्डबोर्ड में डिब्बे और टीन की सुंदर डिब्बियाँ जिनमें उसकी कढ़ाई करने की और ऊन से बुनने की चीज़ें सँभालकर रखी हुई थीं। पीले रंग का छोटा-सा स्वेटर-एक खास किताब से उसने इसकी बुनाई सीखी थी और बड़े उत्साह से इसे बुना था। उत्साह में तो वह बच्चों की तरह हो जाती थी। जब मैं कॉलेज जाता, हमेशा शाम को कुछ न कुछ लाने को बता देती। बहुत कम ही मैं उसका बताया रँग ढूँढ़ पाता था और दूसरे दिन उसे वापस करके सही रंग लाना पड़ता था। अंत में परेशान होकर मैंने उसे इसी पीले रंग का स्वेटर बुन देने के लिए बाध्य किया था। वरांडे की सीढ़ियों पर बैठकर उसने इसे बुनना शुरू किया और झुटपुटा होने पर भी, कहीं बाहर जाने से मना करके, इसे ही बुनती रहती थी। इसके लिए वह सब काम छोड़ देती थी और रात-दिन इसी की बातें करती रहती थी। काफी अँधेरा होने पर वह दोनों चमकती लंबी सिलाइयां ऊन के गोलों में डालकर सब चीज़ हॉल में बने शेल्फ़ पर रख देती थी। मैं इसके बारे में मज़ाक भी करता, कि मेरी सौवीं सालगिरह पर यह तैयार हो सकेगा। स्वेटर की पीठ करीब-करीब पूरी हो गई थी और इससे वह बहुत खुश थी। ऊन के गोले का आकार घटता जा रहा था। वह कहती कि अब आठ और दिन में स्वेटर मेरे बदन पर होगा—और तभी बच्ची को ठंड लग गई जिससे उसके मन की शांति भंग हो गई और बुनने का काम बंद हो गया, और इसके बाद भी वह एक के बाद दूसरा काम आ पड़ने के कारण इसमें फिर कभी हाथ न लगा सकी और इसे रख दिया गया। उसी स्थिति में यह बक्स में रखा था—पीठ पूरी तैयार, ऊन के गोले में उसी तरह सिलाइयां लगी हुई, जैसी उस आखिरी दिन लगाई गई थीं।

बच्ची ने उसे देखा तो उठा लिया और पूछने लगी, 'पापा, यह क्या है?' मैंने उसे इसे रख देने के लिए कहा, कहीं सिलाइयां उसे चुभ न जायँ। डिब्बे में कपड़ों में लगाने के लिए कई फैन्सी बार्डर थे। मैं इन चीज़ों को खरीदने का हमेशा विरोध करता था लेकिन यह कहकर वह मेरा मुँह बंद कर देती थी, 'अभी तुम्हें ये अच्छे नहीं लग रहे हैं लेकिन जब मेरे या बच्ची की किसी ड्रेस पर लगा देखोगे, तब तुम्हीं बाज़ार में इनकी तलाश करते फिरोगे।' लेकिन जिस दिन उसने इन्हें खरीदा होगा, तब से ये इसी प्रकार इस डिब्बे में रखे थे। बक्से में कई खूबसूरत बर्तन भी थे जो बर्मी नमूने पर बने थे और उसकी बहन ने रंगून से उसके लिए भेजे थे—इनमें सेंट की छोटी-छोटी शीशियाँ थीं जो शादी के पहले दो वर्षों में मैंने उसे दी थीं। मैंने एक-एक करके उनकी डॉट खोली और सूँघा। इनकी हलकी-हलकी खुशबुओं से मुझे उन दिनों की फिर याद आने लगी। हर शाम हम घूमने जाते लेकिन कोई खास बात नहीं करते थे; शादी के पहले साल मैं भविष्य की अपनी योजनाएं बनाने में व्यस्त रहता था। सेंट की इन छोटी-छोटी शीशियों में उसके व्यक्तित्व का सत्व बंद था, उसके वस्त्रों की खड़क, उसके पैरों की आवाज़, हँसी, आँखों की रोशनी, उसकी उपस्थिति की खुशबुएं, सब कुछ बंद थीं। शीशियाँ अब खाली थीं लेकिन उनकी शेष रही गंध क्षण-भर के लिए हमारे भूत और वर्तमान के बीच की खाई पर पुल बनकर

मेरे भीतर प्रवेश कर गई। मैंने नेत्र बंद कर लिये और उस सुख में डूब गया; सोचने लगा, 'इन्द्रियों में गंध का अनुभव करने की इंद्रिय सबसे सूक्ष्म है, यह आपको पिछले अनुभवों के भीतर तक पहुँचा देती है। लोगों ने अन्य सब इन्द्रियों के बारे में अध्ययन कर लिया है, लेकिन इस इंद्रियों के नियमों तथा प्रक्रियाओं के बारे में अभी तक अध्ययन क्यों नहीं किया?'

'पापा, तुम क्या सूँघ रहे हो?' लीला ने अचानक पूछा, 'और अपनी आंखें क्यों बंद कर लीं?'—और उसका यह प्रश्न मुझे आसमान से धरती पर उतारकर ले आया।

मैंने शीशी का ढक्कन बंद कर दिया। उसका चंदन का डिब्बा और चौदह पत्र, कुछ भी नहीं मिला था। इसके बाद मैंने दूसरा बक्सा खोला जिसमें वह अपने कपड़े रखती थी—दर्जनों साड़ियाँ और सौ से ज्यादा सभी रंगों और उनके विभिन्न शेडों के जैकेट और इन सबसे महत्वपूर्ण सोने के तारों से कढ़ी उसकी नीले रंग की साड़ी जिसे पहनाकर उसे शादी के दिन मुझे भेंट किया गया था। इनमें से बहुत से कपड़े तो एक दफ़ा से ज्यादा निकाले ही नहीं गये थे क्योंकि उसे डर था कि कहीं उनकी चमक न खराब हो जाय।

वह छोटे बच्चों की तरह जहाँ से भी साबुन और दूसरी चीज़ों के खूबसूरत डिब्बे मिल जायँ, उठा लेती थी और उनमें अपनी तरह-तरह की चीज़ें सँभालकर रख लेती थी। एक डिब्बे में कुछ कागज़ रखे थे। उन्हें मैंने निकालकर देखा तो कई में कशीदाकारी के डिज़ाइन पेंसिल से उतारकर रखे थे और एक में दाँत का मंजन बनाने का नुस्खा था। एक कागज़ में उसने बच्चों जैसी सरल भाषा में दो भाइयों की एक कहानी लिखना शुरु किया था—दो लकड़हारों की कहानी जिनमें से एक ईमानदार और मेहनती और दूसरा बदमाश और नाकारा था। इसमें मैंने कहीं-कहीं संशोधन भी किया हुआ था। मुझे वह दिन याद आया जब वह घंटों मेरी मेज़ पर बैठी, पेंसिल मुँह में दबाये, सोच-सोचकर इसे लिख रही थी। उसे कहानी लिखने की प्रेरणा क्यों हुई, यह मैं जान ही नहीं पाया... लेकिन जब मैंने उसे कहानी लिखते देख लिया, तब वह शर्मिंदा हो उठी, और जब मैंने उसकी व्याकरण ठीक की, तो बहुत परेशान होने लगी—लेकिन यह कहानी एक पन्ने से ज्यादा नहीं लिखी गई, जहाँ दोनों भाई एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। डिब्बे में घुचड़ा-मुचड़ा-सा पड़ा यह कागज़ मुझे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ लगने लगा। मैंने इसे सफाई से सीधा किया और अपनी मेज़ पर ले जाकर रख दिया।

बच्ची मेरे पास बैठी ध्यान से सब कुछ देखती और खाली हुए डिब्बों को करीने से एक क़तार में लगाने का काम करती रही। एक डिब्बे में अब भी तीन-चौथाई के करीब पाउडर था; इसे उसने बीमार पड़ने से महीना-भर पहले ही खरीदा था। मैंने उसकी डॉट खोली और सूँघने लगा तो लीला ने फिर टिप्पणी की, 'पापा, तुमने फिर आँखें बंद कर लीं।'

दूसरी बातचीत में, जैसे ही मेरे मित्र ने पेंसिल कागज़ पर रखी, उसने सवाल किया, 'मालूम है, आज मैंने कितनी अच्छी खुशबू लगाई है...काश, तुम इसे सूँघ सकते!...लेकिन अब मैं यह सोच रही हूँ कि मैं तुम्हें यह बात न बताती, क्योंकि तुम इसे सूँघना चाहोगे और सूँघ न पाने से निराश होगे। तुम सोच रहे होगे कि वहाँ जब तुम इतने दुखी हो, मैं यहाँ इतनी खुश हूँ...यह मेरे लिए कितने स्वार्थ की बात है...लेकिन तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिए। अगर मैं तुम्हें यह महसूस करा सकूँ कि मैं यहाँ बहुत खुश हूँ, और वहाँ तुम्हें मेरे कारण दुखी नहीं होना चाहिए—तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा। मैं चाहती हूँ कि हमें यहाँ खुश देखकर तुम भी वहाँ खुश रहने लगो।'

'ठीक कहती हो तुम,' मैंने उत्तर दिया। 'लेकिन यह बताओ कि तुम आज खुशबू का ज़िक्र क्यों कर रही हो?'

'इसलिए कर रही हूँ कि तुम्हें यहाँ पर हमारी ज़िंदगी की पूरी जानकारी मिल जाय। और

तुमने भी कुछ दिन पहले इस बारे में कुछ नहीं सोचा था?'

'वहाँ तुम लोग अपना समय किस प्रकार बिताती हो?' मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया, 'यहाँ समय उस तरह नहीं होता, जैसा वहाँ होता है। हमारे जीवन में विचार और अनुभव प्रमुख हैं। विचार यहाँ ऐसी वस्तु है जो ठोस होता है और जिसमें शक्ति होती है, और अन्य प्रकार के अस्तित्वों की तरह हम भी इच्छाएं करते हैं, उनके लिए उद्योग करते हैं, और सुखी या दुखी होते हैं। हमारे जीवन का ज्यादातर भाग ध्यान में व्यतीत होता है, और हम हमेशा अपने चारों ओर दैवी प्रकाश का अनुभव करते हैं... हमारे पास समय की कमी नहीं है। न कोई ऐसा बंधन है कि क्या करें, क्या न करें। हमें व्यायाम की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि हमारे शरीर नहीं हैं। संगीत यहाँ हर समय बजता रहता है जो हमें उच्चतर स्तरों पर ले जाता है... यहाँ हर वस्तु या घटना पृथ्वी की अपेक्षा अधिक घनी और शक्तिमान है, जिसका अर्थ यह है कि हमारे उद्योग अधिक कुशल हैं। यदि सौभाग्यवश हम वहाँ के अपने किसी प्रियजन से, जो हमारा प्रभाव ग्रहण करने योग्य है, सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो जायँ, तो वहाँ आप कहते हैं कि यह व्यक्ति प्रेरित है। कोई गीत अथवा धुन हमारे मनों के बीच संबंध स्थापित कर सकती है, जैसे, मेरे लिए यह दुख की बात है कि तुमने वीणा बजाना बंद कर दिया। यदि तुम फिर शुरु कर दो तो हमारी बातचीत ज्यादा सुगम हो जायेगी। क्यों नहीं शुरु कर देते तुम?'

कई साल पहले मैंने वीणा को हाथ लगाना बंद कर दिया था। जब मैं छोटा था, बहुत अच्छी वीणा बजा लेता था। मैंने कहा, 'वैज्ञानिक संगीत क्या है, मैं नहीं जानता। खुद ही थोड़ा-बहुत सीख गया हूँ...।'

'दूसरे तुम्हारे वादन को क्या कहेंगे, इसकी चिंता मत करो। मेरे लिए तो यही सर्वोत्तम संगीत होगा। मैं वचन देती हूँ कि वीणा बजाते हुए तुम मेरी उपस्थिति का अनुभव करोगे। इससे तुम्हारा काम भी आसान हो जायेगा।

'तुमने सोचा होगा कि, जब मैं पृथ्वी पर थी, मुझे संगीत में कोई रुचि नहीं थी। लेकिन सचाई यह है कि मुझे संगीत बेहद पसंद था...।' मुझे याद आया कि वह चुपचाप संगीत सुनती रहती थी। वह अच्छा गा लेती थी लेकिन गाने का अभ्यास उसने कभी नहीं किया। उसे कभी गाना सुनाने के लिए तैयार नहीं किया जा सका; हालांकि कभी-कभी बाल काढ़ते समय या बच्ची को सुलाते समय मैं उसे गाते सुन लेता था। लेकिन अगर उसे मालूम हो जाता कि मैं सुन रहा हूँ तो वह चुप हो जाती थी। गाना कहीं भी सुनाई दे—किसी के घर में बजता हुआ ग्रामोफोन या गाता हुआ कोई साधु—वह हमेशा ध्यानपूर्वक सुनने लगती थी।

'अच्छा, तुम यह तो नहीं सोचते कि मैं अब बहुत विद्वान या ऐसी ही कुछ हो गई हूँ?'

'हाँ, सोचता हूँ,' मैंने कहा। यह सच है कि जब से हमारा यह वार्तालाप आरंभ हुआ, वह यहाँ के अपने जीवन की अपेक्षा कहीं ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण बातें करने लगी थी। वह बोली, 'तुम समझते होंगे कि वहाँ मैं जिस तरह की साधारण बातूनी औरत थी, वैसी ही अब भी होऊँगी, लेकिन मैं तुम्हें बताऊँ कि जब कोई यहाँ आ जाता है, तब उसमें बहुत भारी परिवर्तन आ जाता है, उसकी दृष्टि बहुत साफ हो जाती है, और मैं भी, तुम्हारी बीवी जिसकी फिज़ूल की बातें तुम्हें पसंद थीं, अब बहुत बदल गई हूँ। यूँ मैं, तुम और वहाँ के अपने प्रियजनों के लिए वही हूँ जो पहले थी, अब अंतर यही है कि यहाँ भौतिक शरीर न होने के कारण हर वस्तु और घटना पृथ्वी की तुलना में अधिक तुरंत और प्रभावी होने लगी है।

'यहाँ सोचने और उसका परिणाम प्राप्त करने के मध्य कोई अंतराल नहीं है। विचार ही उसकी गति और पूर्णता है—सब कुछ वही है और उसी में है। हमारी और वहाँ तुम्हारी भौतिक स्थिति में यही मुख्य अंतर है। तुम्हारी स्थिति में विचार उत्पन्न होने के बाद उसे प्राप्त करने के

लिए उद्योग करना पड़ता है और मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाओं पर भी विजय प्राप्त करनी पड़ती है—और यह भौतिक जगत की वास्तविक प्रकृति है। लेकिन यहाँ की स्थिति में ऐसी कोई बाधा नहीं है। मैं जब भी तुम्हारे बारे में सोचूँ या तुम सोचो, मैं एकदम तुम्हारे पास पहुँच जाती हूँ। संगीत हमें यहाँ से वहाँ ले जाता है। मैं किसी वस्त्र के बारे में सोचूँ, वह तुरंत मेरे शरीर पर आ जाता है। हमारी दुनिया में विचार का तुरंत परिणाम प्राप्त हो जाता है। मैं जब भी तुम्हारे पास आती हूँ, उस परिस्थिति के अनुसार तुरंत तैयार हो जाती हूँ। मैं जिस भी गंध का विचार करूँ, वह तुरंत मुझे प्राप्त हो जाती है, तुमसे मिलने के समय तुम्हें प्रसन्न करने के लिए जो भी वस्त्र पहनना चाहूँ, पहन लेती हूँ। इस समय मैं वही साड़ी पहने हूँ जो विवाह के समय पहनी थी—सोने के तारों से बुनी रेशमी नीली साड़ी। तुम सोचोगे कि तुमने तो इसे ट्रंक में देखा था, यहाँ यह कैसे आई? तुमने जो साड़ी देखी है, वह इसका प्रतिरूप है, इसका सत्य रूप तो इसके विचार में है, जिसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता, न चुराया या फेंका जा सकता है।'

इसके बाद उसने बताया कि इस समय वह कैसी लग रही है। बोली, 'मैं यहाँ हूँ, इसमें संदेह मत करना। मैं इस समय हलके गुलाबी रंग की साड़ी पहने हूँ जिसे स्थिर रहने के लिए चमकदार पिनों से कसा गया है।'

'कितनी शानदार लगती होगी तुम!' मैंने कहा।

'तुम सचमुच इसका रंग देखोगे तो 'शानदार' शब्द काफी नहीं होगा, इसे देखकर तुम एकदम स्तब्ध रह जाओगे। यहाँ जो रंग दिखाई देते हैं, वे वहाँ डूबते सूरज में भी नहीं दिखाई देंगे। इसे हलका गुलाबी कहकर मैंने वहाँ की दृष्टि से एक कल्पना भर दी है...?'

मैं चारों ओर देखने लगा। वह तुरंत बोली, 'तुम इधर-उधर देख रहे हो। मैं तुम्हें देख पाती हूँ। लेकिन कितने खेद की बात है कि तुम मुझे नहीं देख पा रहे। भविष्य में कभी तुम मुझे देख सकोगे। मैं इस समय तुम्हारे बायीं ओर ज़मीन पर बैठी हूँ, मेरी कुहनी तुम्हारी गोद में है और अपने विचारों से मैं तुम्हारे मित्र के लेखन को प्रेरित कर रही हूँ।' मैंने अपनी गोद पर नज़र डाली। 'इसका कोई फायदा नहीं, आँखें चाहे जितनी फैलाओ, देख नहीं पाओगे। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हें मेरी चूड़ियों की खनक सुनाई देने लगेगी और मेरा आकार भी देख सकोगे।'

'मेरा ख्याल है कि मैं पृथ्वी पर जैसी थी, वैसी ही अभी भी लगती हूँ। फर्क यही है कि अब न कोई मुझे रोग है, न चिंताएं हैं। तुम्हें याद होगा कि मैं वहाँ कमर दर्द की शिकायत करती थी, अब वह भी नहीं है।

'आज रात मेरी वेशभूषा चमकते नीले रंग की है जिसमें रोशनी और सितारे जड़े हुए हैं। मैंने अपने बाल बायीं तरफ काढ़े हैं—और तुम्हारी खुशी के लिए चमेली और दूसरे फूलों से सिंगार किया है—मैं चाहती हूँ कि कोई कलाकार मुझे देखकर तुम्हारे लिए मेरा चित्र बना देता।

'मैं यहाँ तुम्हारे पास हमेशा इसी जगह बैठा करूँगी, अपनी बाँह उठाओगे तो मुझे छू सकोगे। आज शाम, जब तुम यहाँ से जाओगे, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी और तब तक तुम्हारे साथ रहूँगी, जब तक तुम मेरे बारे में सोचते हुए सो नही जाओगे...

'अगर तुम्हें प्रमाण की ज़रूरत हो तो चमेली के दस फूल सोते समय अपने पास रख लेना। जाते वक्त मैं उनकी खुशबू अपने साथ ले जाऊँगी—मैं यही कर सकती हूँ। सवेरे फूलों को सूँघकर देखना।'

घर लौटते हुए, अँधेरी रात में, नल्लप्पा की झाड़ी से गुज़रते हुए आज मेरे पैर बहुत हलके पड़ रहे थे, क्योंकि मैं जानता था कि वह भी मेरे साथ चल रही है। मैं निरंतर उसकी उपस्थिति महसूस कर रहा था। रात का अंधकार मुझे परेशान नहीं कर रहा था, रास्ते की दूरी और अकेलापन भी मेरे लिए समाप्त हो चुका था। मैं अपने साथ चल रही उसकी सचाई को कदम-

दर-कदम महसूस कर रहा था। सामने दूर श्मशान घाट में जलती चिता की लौ मेरे सामने थी, लेकिन अब उससे मुझे डर नहीं लग रहा था, 'मैं इससे ज्यादा जानता हूँ...।'

6

रविवार आया तो मैंने निश्चय किया कि सारा दिन बच्ची के साथ बिताऊँगा। पिछले दिनों कॉलेज का काम, परिवार के काम और हर बुधवार अपने नए मित्र के साथ बिताने के कारण मेरे पास इतना कम समय शेष रहता था कि लीला के साथ मैं दो घंटे से ज्यादा कभी नहीं बिता पाता था। इससे मैं बहुत परेशान था और मैंने ईश्वर से प्रार्थना की कि 'मुझे दूसरी बातों में बहुत ज्यादा वक्त देने से बचाओ जिससे मैं बेटी की ओर पूरा ध्यान दे सकूँ।' रात को जब मैं घर काफ़ी देर से पहुँचता और बच्ची को सोते पाता तो मैं बहुत दुखी होता और अपराध-भावना से भर उठता था।

लेकिन उसने रविवार के लिए कुछ और योजना बनाई हुई थी। जैसे ही वह जगी और घूमने-फिरने के लिए तैयार हुई, स्कूल चलने के लिए कहने लगी। मैंने कहा, 'आज तो इतवार है। आज कोई स्कूल नहीं जाता।'

लेकिन उस पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बोली, 'तुम हमारे स्कूल के बारे में नहीं जानते। आज जाना है।' यह कहकर उसने कोट पहन लिया और चल दी। मैं भी उसके साथ चला।

वह बोली, 'मेरे साथ क्यों जा रहे हो, पापा?'

'मैं भी आज तुम्हारा स्कूल देखना चाहता हूँ।'

'मेरे दोस्त जब आपको देखते हैं, डर जाते हैं। आप यहीं रहिए, पापा!'

मैंने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा, 'मैं पूरी कोशिश करूँगा कि वे मुझसे न डरे।' एक क्षण के लिए वह रुकी, फिर कुछ सोचकर बोली, 'अच्छा, कोई बात नहीं, आप चल सकते हैं।' यह कहकर वह मुझे देखकर कुछ ऐसे मुस्कराई, जैसे मुझ पर उपकार कर रही हो।

स्कूल में यह लग ही नहीं रहा था कि आज इतवार है। बच्चे रोज़ की तरह शोर मचा रहे थे—करीब बीस बच्चे आ चुके थे और खेल-कूद रहे थे, झूलों और सीढ़ियों का पूरा उपयोग किया जा रहा था। हेडमास्टर भी वहीं था।

'आप इतवार को भी आराम नहीं करते,' मैंने उससे पूछा।

'आराम? मेरे लिए यही आराम है, मैं और क्या करूँ? बच्चे आते हैं, खेलते हैं, रेत पर घर बनाते हैं, फिर घर लौट जाते हैं और हम भी उनके साथ खेलते रहते हैं। यह सब मुझे भी अच्छा लगता है। इतवार के दिन मैं और करूँ भी क्या?'

'कुछ ऐसा करो जो दूसरे दिनों से अलग हो...,' मैंने कहा।

'हाँ, ऐसा ही है...इस दिन हम पढ़ाई बिलकुल नहीं करते, सिर्फ खेलते-कूदते हैं।' उसकी आँखें लाल हो रही थीं। खाँस भी रहा था। लगता था, रात को सो नहीं पाया है।

'तुम्हें क्या हो गया है?' मैं पूछे बिना नहीं रह सका।

'मुझे नींद न आने की बीमारी है,' उसने जवाब दिया। 'कई साल हो गये जब से नींद का नाम मैंने नहीं जाना। सिर्फ घंटा भर सो पाता हूँ। पहले तो इससे मुझे बहुत तकलीफ़ होती थी, लेकिन अब आदत पड़ गई है। मैं बच्चों के लिए कहानियाँ बनाता हूँ और इसमें मेरा वक्त अच्छा बीत जाता है। चलिए, आपको दिखाऊँ।' 'वह मुझे अपने कमरे में ले गया। उस पर

फूस की छत थी। ज़मीन पर मिट्टी थी और दीवारें बाँस की खपच्चियों में मिट्टी भर कर बनाई गई थीं। कमरा ठंडा और शांत था, उसमें धरती माँ की खुशबू बसी हुई थी। बहुत मीठी थी यह खुशबू, और यह हमें आदिम ज़माने की सादगी, मिट्टी, धूल और पानी से जोड़ देती थी। दीवार के किनारे-किनारे एक लंबी पट्टी लगी हुई थी जिस पर तरह-तरह की चीज़ें, गत्ते के घर, कागज़ के फूल, हाथ से बनी तस्वीरें और रंगीन दानों से बनी चीज़ें रखी हुई थीं। वह बताने लगा: 'ये सब चीज़ें हमारे बच्चों ने ही बनाई हैं और इनमें से कई मेरे लिए बड़ी कीमती हैं, जिन्हें वे मुझे स्कूल छोड़ने के समय भेंट में दे गये हैं। हमारे स्कूल की ट्राफियाँ यही हैं। मुझे इनसे सच्चा सुख मिलता है। जैसे, इस पहली चीज़ का मेरे लिए एक विशेष महत्व है। मैं नहीं जानता कि लोग इसे समझ भी पायेंगे या नहीं... आप शायद समझ सकें। कागज़ की इस हरी नाव को देखिये। जानते हैं, इसे किसने बनाया है? आपकी बेटी ने, जब वह पहले ही दिन यहाँ आई थी। उसने एक घंटे में इसे बना दिया...।' मुझे यह सुनकर बहुत खुशी हुई। एक गत्ते पर बनी तोते की कैंची से काटी हुई तस्वीर और कागज़ से बनाई दवात के साथ यह नाव रखी थी। मैंने आगे बढ़कर नाव उठा ली। मेरी बेटी लीला के दुनिया से संबंध का यह निशान था, जो उसने पहले ही दिन यहाँ छोड़ दिया था। मैं गर्व और संतोष से भर उठा। 'यह तो बड़ा जलयान है जो आगे से नुकीला हैं', मैं प्रसन्नता से उछलने लगा। वह भी अपनी जगह से उठा और बोला, 'यही तो मैं कहता हूँ, कितनी सुंदर है यह!' वह भी इसे देखकर रहस्यपूर्ण आनंद से भर उठा। 'बहुत अच्छी बच्ची है आपकी, और भी बच्चे ऐसे ही हैं। करीब-करीब हर बच्चे की पहली चीज़ यहाँ है, पुरानी चीज़ें हॉल में चली जाती हैं।' दीवारों पर तस्वीरें टँगी थीं, शेर, चीते, पेड़-पौधों की सब बच्चों की बनाई। उसने हाथ घुमाकर इन सबको दिखाया और कहा, 'हर काम बच्चों का बनाया है। वे ही पृथ्वी के असली देवता हैं।' वह हर चीज़ के सामने रुकता और उससे पूरा सुख प्राप्त करता। यहाँ कोई मेज़ या कुर्सी नहीं थी। एक कोने में अतिथि के लिए एक कुर्सी पड़ी थी। 'यही स्कूल है हमारा। हमारा देश गरीब है, इसलिए आराम की चीज़ों के बिना ही काम चलाना ठीक है। हमें एक झोपड़ी, कुछ चटाइयों और खुली हवा से ज्यादा और क्या चाहिए?

'हमारा देश ठंडा नहीं है जो हमें बड़ी इमारतें और बड़ा फर्नीचर चाहिए। मुझे इनके लिए सिर्फ पचास रुपये खर्च करने पड़े, और मैंने ऐसे तीन कमरे बना लिये। लेकिन इनकी भी हमें ज़रूरत नहीं पड़ती, क्योंकि ज्यादातर काम बाहर ही होता है, पेड़ों के नीचे...।'

मैंने कहा, 'और लोग सोचते हैं कि स्कूल के लिए हज़ारों रुपये लगाकर इमारतें बनाना ज़रूरी है...।'

'वे दूसरों की नकल करते हैं,' वह कहने लगा। 'अपने खर्चे बढ़ाइये, सरकारी सहायता माँगिए और इसके लिए अपनी आत्मा को गिरवी रख दीजिए। हमारे शिक्षा आन्दोलन का यह इतिहास है। और दूसरी बात। ये लोग खेलों को कितना ज्यादा महत्त्व देने लगे हैं... जैसे स्कूल और कॉलेज सीखने-पढ़ने की जगहें न होकर कुश्ती के अखाड़े हों, जहाँ मोटे-तगड़े मूर्खों का निर्माण करना हो। मुझे चिढ़ होती है खेल-कूद के लिए इनका उत्साह देखकर।... शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य होता है मस्तिष्क और चरित्र का विकास, जिसमें खेल-कूद का भी स्थान है। लेकिन उनकी पूजा करने की क्या ज़रूरत, जिससे ग्यारह पहलवान मूर्ख कोई शील्ड या कप जीतकर लायें। यह तो अभिशाप है, दूसरों की नकल, बस नकल, और कुछ नहीं। इससे अच्छा तो यह होता कि हम बंदर होते जो नकल के उस्ताद होते हैं।'

'आप ठीक कहते हैं,' मैं बोला। 'हमारे कालेज में 'ब्राउन' मैच देखने के लिए क्लब भी छोड़ देता है। उनके जोश में खुद भी डूब जाता है, टीम को बधाई देता है और सबसे हाथ मिलाता है, खिलाड़ियों को हर तरह की सुविधाएं देता है और उन्हें घूमने-फिरने भी कालेज के खर्चे पर भेज

देता है।' मुझ पर भी उसकी बातों का असर पड़ने लगा था।

'और जानते हैं, टूरिंग में उन्हें खाने-पीने को भी हर तरह की चीज़ें मिलती हैं। उन्हें इम्तहानों में पास भी कर दिया जाता है। इससे हम ज्यादा मार्डर्न और ताकतवर हो रहे हैं, यह भी माना जाता है...।' यह कहकर वह हँसने लगा और इतनी देर तक हँसता रहा कि अंत में ज़ोर-ज़ोर से खाँसने लगा।

फिर बोला, 'माफ करिएगा, अब बैठिये। मैं आपको अपनी कहानियाँ दिखाना चाहता हूँ।' यह कहकर उसने एक बक्सा निकाला और उसमें से भूरे कागज़ों का एक बंडल खोलकर बैठ गया। बड़े-बड़े कागज़ों पर शब्द ही नहीं, तस्वीरें भी काटकर चिपकाई हुई थीं। 'यह नया ढंग है कहानियाँ तैयार करने का, जो मुझे बहुत पसंद है।... मैं पहले कहानी सोचता हूँ, फिर उसे लिखता हूँ और इसके बाद पत्र-पत्रिकाओं से ऐसी तस्वीरें काटकर चिपका देता हूँ जो घटनाओं से मेल खाती हैं। मिसाल के तौर पर यह देखिए...,' यह कहकर उसने दस बड़े-बड़े रजिस्टर निकाले और उनमें से एक कहानी दिखाई, 'यह एक शेर और भैंसे की कहानी है जो जंगल में रहते हैं...देखिए ज़रा इसे।' इसमें हर पेज पर कहानी के साथ एक-दो पेज तस्वीरें भी चिपकी हुई थी।

'ये सब एकदम असली नज़र आते हैं,' मुझे तस्वीरें देखते हुए वह बोला, 'कैसे, मैं आपको बताता हूँ।' यह कहकर वह दरवाज़े पर जाकर खड़ा हो गया और बाहर देखकर आवाज़ लगाई, 'कहानी शुरू, कहानी शुरू...।' बाहर खेलते बच्चे एकदम रुक गये और खुश होकर कमरे में घुसने लगे।

सब हेडमास्टर के इर्द-गिर्द बैठ गये। जब वे शांत हुए, उसने एलबम खोला और कहने लगा, 'यह एक शेर और उसके दोस्त जंगली भैंसे की कहानी है। ये मेम्पी के जंगल में रहते थे। मेम्पी जंगल कहाँ है, किसको पता है?' यह सवाल सुनकर बच्चों ने आपस में बातचीत करना शुरू किया, फिर एक लड़की दरवाज़े की तरफ इशारा करके बोली, 'वहाँ, पहाड़ों के एकदम बाद... ठीक है न?'

'ठीक है, ठीक है,' वह बोला। 'वहाँ बहुत से जंगल हैं। अब यहाँ देखो।' यह सुनकर सब बच्चे सिर उचका-उचकाकर एलबम की तरफ देखने लगे, जहाँ कागज़ पर घास चिपकाकर जंगल की तस्वीर बनाई गई थी। 'ये बाँसों के जंगल हैं, इसमें बहुत से शेर रहते हैं, लेकिन इस कहानी में एक ही शेर है। उसका नाम है राजा। इधर देखो, अभी यह छोटा बच्चा है।'

'यह तो बहुत छोटा है,' बच्चों ने तस्वीर देखकर कहा। फिर एलबम को चारों तरफ घुमाया गया, जिससे दूर बैठे बच्चे भी देख सकें। 'कितना डरावना लगता है।' कुछ बच्चों ने देखकर कहा। मेरी बेटी ने, जो अपने से बड़े दो बच्चों के बीच बैठी थी, शेर के कारण एलबम छूने से इनकार कर दिया, लेकिन अगर कोई और बच्चा अपने हाथ से एलबम पकड़कर उसे दिखा दे, तो वह देखने के लिए तैयार हो गई। 'यह बच्चा शेर बहुत दुखी था क्योंकि उसकी माँ को शिकारी पकड़कर ले गये थे—शिकारी बुरे आदमी होते हैं।'

इस तरह शेर की कहानी चलती रही। 'उसकी मुलाकात एक बच्चे भैंसे से हुई जो उसका दोस्त बन गया। वह भालुओं और दूसरे खतरनाक जानवरों से उसकी रक्षा करता था। दोनों मेम्पी पहाड़ियों के अंत में बनी एक गुफा में रहते थे। कुछ समय बाद भैंसा बड़ा होकर खूब लंबा-चौड़ा हो गया और शेर भी बड़ा हो गया और रात के समय शिकार के लिए बाहर आने-जाने लगा। एक रात कुछ शिकारी आये और भैंसे को गोली से मारकर उसे शहर उठा ले गये। शेर यह देखकर दुखी हो गया और रात-भर दहाड़ें मारकर रोता रहा। फिर कुछ समय बाद उसने स्थिति को स्वीकार कर लिया।'

बच्चे बड़े ध्यान से कहानी सुनते रहे और यह घटना सुनकर तो द्रवित हो उठे। वे इस स्थिति में शेर को देखने के लिए एलबम के पास आये, और लेखक ने पहले ही इस प्रतिक्रिया की कल्पना करके इसकी तैयारी कर रखी थी। उसने एक तस्वीर बना दी थी जिसमें शेर अकेला और दुखी गुफा के सामने खड़ा है। तस्वीर बच्चों को बहुत पसंद आई और वे पूछने लगे, 'मास्टरजी, अब शेर अपने दोस्त के बिना अकेले कैसे रहेगा? उसे भालू तो नहीं खा लेगा?'

'नहीं, नहीं, भालू को तो उसके दोस्त ने पकड़े जाने से पहले ही खत्म कर दिया था।'

'बेचारा भालू! मुझे दिखाओ, कहाँ है?' एक लड़की ने कहा। एलबम के पन्ने पलटे गये और उसे भालू की तस्वीरें दिखाई गई। 'यह तो बड़ा ताकतवर लगता है। यह भैंसे से लड़ सकता था', लड़की बोली, लेकिन किसी वजह से वह भालू के पक्ष में थी। दूसरी लड़की ने कहा, 'तुम्हें भालू का पक्ष नहीं लेना चाहिए। टीचर इससे नाराज़ हो जाएंगे।'

'नहीं, यह बात गलत है। तुम्हें उसी का पक्ष लेना चाहिए जो तुम्हें पसंद आये।' लड़की की यह बात सुन कर कुछ और बच्चे भी भालू के समर्थन में बोलने लगे। लड़की बोली, 'मुझे भालू हमेशा अच्छा लगता है। उसके कितने बाल होते हैं! उसके बाल कौन काढ़ेगा, टीचर?' एक बच्चे ने जवाब दिया, 'नहीं, उसकी माँ काढ़ेगी।'

'तुम्हें भालू इतने ज्यादा पसंद हैं तो तुम यह कहानी क्यों सुन रही हो?'

'क्योंकि यह भालू की ही कहानी है,' बच्ची ने जवाब दिया।

'नहीं, भालू की कहानी नहीं है।'

'है। तुमने तस्वीर नहीं देखी?'

'मास्टरजी, यह भालू को बड़ी देर से देख रही है। मैं शेर देखना चाहता हूँ।' अब हेडमास्टर ने उनकी बहस में दखल दिया और उनको समझा-बुझाकर चुप किया। फिर मुझसे फुसफुसाकर कहा, 'बच्चों की सबसे मज़ेदार चीज़ है उनके झगड़े। वे बिना वजह देर तक झगड़ते हैं, फिर सब कुछ भूल-भालकर एक हो जाते हैं। पहले हम सब भी ऐसे ही थे, अब देखिए कैसे हो गये हैं।' उसने फिर कहानी कहना शुरू किया।

मेरी बेटी, जो यह महसूस कर रही थी कि बड़ी देर से मुझसे अलग है, अब मेरे पास आकर मेरी गोद में अपनी कुहनी रखकर बैठ गई, फिर बोली, 'पापा, मुझे एक शेर चाहिए।'

'असली शेर?'

'हाँ, असली। वह बिल्ली की तरह ही होता है न?'

मैंने टीचर को कुहनी मारकर बताया कि बेटी क्या माँग रही है। वह गंभीर होकर लीला से कहने लगा, 'तुम्हें पालतू बनाने के लिए शेर नहीं माँगना चाहिए। यह बहुत बड़ा और खतरनाक होता है। बुरा जानवर है यह। अगली दफा जब शहर में सरकस आयेगा तो मैं तुम्हें शेर दिखाऊँगा। अभी मैं तुम्हें शेर की तस्वीर दिखाता हूँ। मैं तुम्हें एक तस्वीर ला भी दूँगा।'

'ठीक है, मास्टरजी। मुझे तस्वीर दे देना।'

'तुम बिल्ली ले सकती हो। मेरे घर में एक छोटी सी बिल्ली है, वह मैं तुम्हें दे दूँगा।'

वह खुशी से चीखती हुई बोली, 'घर में बिल्ली है?'

'हाँ, है। मैं तुम्हें बिल्ली और शेर की तस्वीर दोनों ही दूँगा।'

अब वह मुझसे बोली, 'पापा, इनके घर चलो!'

'अभी चलते हैं,' मास्टर यह सुनकर खुश हो उठा। उसने कुछ मिनट तक कहानी सुनाई, फिर बंद कर दी। कहानी तो हफ्ते भर तक चलेगी। अब घड़ी में बारह बज गये थे। लेकिन बच्चे उठने को तैयार नहीं थे। शेर को किसी सरकस वाले ने ट्रेनिंग देने के लिए पकड़ लिया था। वे जानना चाहते थे कि इसके बाद क्या हुआ। 'मास्टरजी, अभी नहीं, अभी खत्म मत कीजिए। शेर को क्या

हुआ, यह बताइये। वह खुश है क्या?' लेकिन हेडमास्टर ने रजिस्टर बंद कर दिया था, इसलिए उस दिन की कहानी खत्म हो गई।

'मास्टर जी, अब भूख लग आई है। अब घर जाना चाहिए', एक बच्चा बोला।

'इसीलिए मैंने कहानी खत्म कर दी। अब कल आकर आगे की कहानी सुनना,' उसने कहा।

बच्चे ने फिर पूछा, 'क्या शेर को मार देते हैं?'

'नहीं, मारते नहीं। शेर बिलकुल ठीक है और ऐसा ही रहेगा। कोई डर की बात नहीं है।' यह सुनकर बच्चे खुश हो गये और स्कूल से बाहर चले गये।

लीला ने पूछा, 'आप मुझे सरकस दिखाने ले चलेंगे?'

'हाँ, ले चलेंगे। यहाँ भी शेर होता है।' अब हम उठे। उसने शेड में ताला लगाया और गेट बंद करके बाहर निकले। जब हम अपने घर पहुँचे तो बच्ची मास्टर जी के घर जाने की ज़िद करने लगी, हालांकि उसे ज़ोर की भूख लगी थी। उसने उसे समझाने की कोशिश की लेकिन वह तैयार नहीं हुई। इसलिए मास्टर ने कहा कि वह बच्ची के खाना खाने तक उसका वहीं इन्तज़ार करेगा, फिर उसे साथ ले जायेगा। मैंने उसे अपने कमरे में बिठा दिया।

बच्ची ने अपना सूचीपत्र मास्टर को दिखाया और कहा, 'मैं यह किताब पढ़ती हूँ।' उसने किताब अपने हाथ में ले ली और उसकी तस्वीरें देखने लगा। मैं बच्ची को भीतर खाने के लिए ले गया। अम्मा से पूछा, 'आज एक मेहमान आए हैं हमारे साथ। क्या तुम उन्हें भी खाना खिला सकती हो?'

'हाँ, खिला सकती हूँ', उसने जवाब दिया, हालांकि मैं जानता था कि यह अपना खाना इसे खिला देगी और अपने लिए फिर पकाएगी। मैंने हेडमास्टर को बुला लिया और अपने साथ बिठाया। वह खुश भी हुआ और कुछ परेशान भी। बोला, 'घर पर मेरी बीवी मेरा इन्तज़ार करेगी...।'

'उन्हें अंदाज़ नहीं हो जायेगा कि देर हो गई है, इसलिए आप वहाँ नहीं खाएंगे?' मैंने पूछा।

'कोई बात नहीं,' यह कहकर वह खाने के लिए तैयार हो गया।

यह कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा। मुझे उनका स्वभाव काफी पसंद आया। उन्होंने कोट उतारा, उसे तह करके रखा और पूछा, 'बाथरूम कहाँ है? मैं नहाना चाहता हूँ।' जब वह नहाकर बाहर निकला तो उसके बदन से पानी टपक रहा था। बोला, 'मुझे तौलिये की ज़रूरत नहीं है।'

'क्यों, बदन कैसे सुखाओगे?'

'मैं ऐसे ही छोड़ देता हूँ। पानी अपने-आप सूख जाता है। मैं तौलिये का इस्तेमाल नहीं करता।'

'इस डर से कि कोई बीमारी न लग जाय?'

'यह मैं नहीं जानता। मुझे तौलिया पसंद ही नहीं है, अपना भी नहीं। नहाकर मैं तब तक यूँ ही खड़ा रहता हूँ। जब तक बदन सूख न जाय। फिर कपड़े पहनता हूँ—लेकिन इसका नतीजा यह होता है कि मेरी पत्नी हर रोज़ बाथरूम के बाहर मुझसे देर तक लड़ती है, क्योंकि पूरा बदन अपने-आप सूखने में कुछ वक्त तो लगता ही है।'

मेरी बेटी यह देखकर बहुत खुश थी कि उसके हेडमास्टर उसके घर खाना खा रहे हैं। वह अपनी जगह पर बैठी चाँदी की प्लेट में चावल खा रही थी, और आधा खत्म कर चुकी थी। लेकिन जब अपने टीचर को भी यही खाना खाते देखा तो खुश होकर बोली, 'मैं भी मास्टरजी के साथ ही खाऊँगी,' और उठकर खड़ी होने लगी। लेकिन उसे अपनी सीट पर बिठा दिया गया तो वह दुखी हो उठी। 'धीरे-धीरे खाती रहो, उठो मत। जब मास्टर जी आ जायँ, तब उनके साथ आ जाना,' मैंने समझाया। अभी उन्हें कुछ समय और लगना था। 'मुझे सिर्फ पंद्रह मिनट लगेंगे।

मैं खाने से पहले पंद्रह मिनट ध्यान और प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि दिन भर में तभी खाली समय मिलता है। सिर्फ पंद्रह मिनट...। इससे भी मेरी बीवी को ज़बरदस्त चिढ़ है।'

मुझे लगा, उसकी पत्नी उसकी बड़ी समस्या है। वह कहने लगा, 'मैं कुँवारा ही ज्यादा खुश रहता, लेकिन लोग मानते कहाँ हैं।' उसके बोलने का ढंग प्रभावी था, वह इस तरह अपने बारे में बात करता था, जैसे किसी और के बारे में कह रहा हो। उसे अपनी ज़िंदगी से भी उतना ही मनोरंजन प्राप्त होता था, जितना बच्चों के जीवन से प्रेरणा प्राप्त होती थी। मैं ध्यान करने के लिए उसे एक उपयुक्त स्थान पर बिठा कर वापस आ गया। इसके लिए उसने घर के पीछे के मैदान में पूर्व की दिशा में मुख करके बैठना पसंद किया। ज़मीन पर आसन लगाकर बैठ गया और आँखें बंद कर लीं। बहुत देर तक इस प्रकार ध्यानस्थ बैठा रहा, फिर भोजन करने हमारे पास आ गया। वह हमारे घर में बाहरी व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं कर रहा था, लग रहा था जैसे यह उसका अपना घर हो। डायनिंग रूम में मेरे साथ बैठकर उसने पूछा, 'आज खाने के लिए क्या बना है? मेरा ख्याल है, मेरे आने से आपको कोई परेशानी नहीं हुई होगी।'

'बिलकुल नहीं। खाना सादा है। मेरा ख्याल है, आपको ज्यादा बुरा नहीं लगेगा' इस तरह सामान्य शिष्टाचार की बातें चल रही थीं, कि अचानक उसने कहा, 'हमने कई बेवकूफी के सामाजिक नियम बना लिए हैं—आपका क्या ख्याल है, जैसे...', तभी अम्मा खाना परसने आई और उसने पत्ते में भुने बैंगन की सब्जी डाली, और वह बोला, 'मुझे यह चीज़ पसंद नहीं...क्या मैं इसे छोड़ सकता हूँ?'— यह कहकर उसने सब्ज़ी एक तरफ सरका दी। 'माफ़ कीजिएगा, मैं इसे छूता भी नहीं। मैं ज़हर खा लूँगा लेकिन बैंगन नहीं।' बहुत अजीब आदमी था यह! लेकिन हमारे बीच एक समझौता-सा हो गया था कि सच ही बोलेंगे, मुँहदेखी बातें नहीं करेंगे। इसलिए मैंने कहा, 'लेकिन इसके लिए मैं माफी नहीं मानूँगा। अगर आपको यह पसंद नहीं तो आपकी मर्ज़ी। हो सकता है, कुछ और पसंद आये।'

'बिलकुल ठीक। मैं इसी तरह बात करना और सुनना पसंद करता हूँ। मनुष्य का सारा व्यवहार इसी तरह का सरल होना चाहिए। बच्चों की संगत से मैंने यही बात सीखी है। लेकिन इस वजह से मुझे बड़ों के समाज में काफी कठिनाई होती है। लेकिन सवाल यह भी है कि मैं बड़ों के हिसाब से ढलने की कोशिश क्यों करूँ?'

मेरी बेटी बोल उठी, 'मास्टरजी कोट न पहनें तो मास्टर नहीं लगते।' वह ढीला सा कोट पहनते थे जिसके बटन गले तक लगे थे। इसके बिना सचमुच वे कुछ और लग रहे थे—काफी जवान और दुबले-पतले। कोट उतारते ही उनकी उम्र दस साल कम हो जाती थी। सामान्य चेहरा, कनपटी पर सफेद बाल और लाल आँखों के नीचे उभरा हुआ माँस, इस सब के साथ व्यक्तित्व में एक ताज़गी। बेटी ने कहा, 'मास्टर जी, एक कहानी सुनाइए...।'

'नहीं, खाना खाते वक्त कहानी कभी नहीं सुनाई जाती। घर पर ही कहानी सुना दी गई तो स्कूल में क्या करेंगे?'

खाने के बाद वे हॉल में पड़ी चटाई पर लेट गए। बेटी ने उनके सामने पान-सुपारी की प्लेट लाकर रख दी। वह मज़ा लेकर खाते रहे। उनके होंठ भी आँखों की तरह लाल हो गये। बहुत खुश लग रहे थे। बच्ची उनके पास बैठ गई और अपने सब खिलौने दिखाने लगी-बीसियों रंगबिरंगे खाना पकाने और खाने के छोटे-छोटे बर्तन, रबड़ की गेंदें और बड़ी-सी गुड़िया। गुड़िया को अपनी बाँहों में भरकर वह बोली, 'यह लड़की मेरे साथ स्कूल आना चाहती है। रोज़ इसके लिए रोती-चिल्लाती है। मास्टरजी, इसके लिए मैं क्या करूँ?'

उन्होंने गुड़िया की तरफ देखकर कहा, 'अच्छी लड़की है...।' फिर उसके गाल पर चुटकी भरी और बोले, 'देखो, कितने मुलायम हैं इसके गाल।' बेटी यह सुनकर खुश हो गई। प्यार से उसे

देखा और बोली, 'बहुत अच्छी बच्ची है मेरी गुड़िया। लेकिन मास्टर जी, यह भी मेरे साथ स्कूल आना चाहती है। बताइये, मैं क्या करूँ?'

'तुम इसे साथ लाना चाहती हो या नहीं?'

'नहीं, मास्टरजी', उसने दुखी होकर जवाब दिया। 'अच्छी बच्ची नहीं है यह, और स्कूल में मुझे परेशान करेगी। वहाँ मुझे पढ़ने ही नहीं देगी। और हरेक के साथ लड़ेगी।' गुड़िया की कुछ समाजविरोधी भावनाएं और हरकतें लीला को शायद पसंद नहीं थीं, लेकिन उसने इससे समझौता कर लिया था। इसलिए मास्टरजी ने कहा, 'तो फिर जब तुम स्कूल आती हो तब इसे अलमारी में बंद क्यों नहीं कर देतीं?' लीला ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं, तब तो यह मर जाएगी। हाँ, कमरे में बंद कर दिया करूँगी।'

मास्टरजी ने पूछा, 'मैं अब थोड़ी देर लेटकर आराम कर लूँ?' उन्होंने लेटकर आँखें बंद कर लीं। लीला भी उनकी बगल में लेटकर सो गई। दोनों के सो जाने के बाद मैं भी अपने कमरे में चला गया और आराम कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगा। फिर मुझे भी नींद आ गई।

शाम को चार बजे हम सब उठे। लीला बिल्ली के लिए फिर ज़िद करने लगी।

हम मास्टरजी के घर की ओर चले। उनका घर एण्डर्सन लेन में था जो हमारे घर से एक फर्लांग पूर्व की तरफ था। हम इधर कभी नहीं गये थे। हमारी सड़क से लगी एक सड़क थी और उसमें यह गली निकलती थी। लगता था, शहर की म्युनिसपैलिटी ने इस इलाके को बिलकुल भुला दिया था। फिर भी यहाँ कुछ सफाई थी जिसके लिए सूरज, हवा और बरसात ज़िम्मेदार थे। सूरज प्राय: हमेशा इतना गरम रहता था कि कीड़े-मकौड़े और बैक्टीरिया जलकर खाक हो जाते थे। फिर मानसून शुरु होने से पहले ज़बरदस्त अंधड़ चलते और इलाके का सब कूड़ा-कचरा, घास-फूस और रद्दी सामान उड़कर बगल की सड़क और वहाँ से मुख्य सड़क पर पहुँच जाते, जहाँ सफाई कर्मचारी उनसे निबट लेते थे। इसके बाद नवंबर-दिसंबर में घनघोर बरसात होती और गलियों से सड़कों पर पानी की धाराएं बह निकलतीं, तो बची-खुची सारी गंदगी उनमें बहकर नदी में जा पहुँचती थी। इस तरह प्रकृति ही इस इलाके की देखभाल करती थी।

म्युनिसपैलिटी के कार्यों को लेकर मालगुड़ी बहुत बदनाम था। इसका प्रबंध एक समिति के अधीन था, जिसका एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और दस सदस्य होते थे। महीने के आखिरी शनिवार को इनकी मीटिंग होती थी, जिसमें ज्यादातर आपसी लड़ाइयाँ ही होती थीं। चुनावी झगड़े, वाक् आउट, अविश्वास-प्रस्ताव आदि की खबरें आती ही रहती थीं। इनके अलावा ये लोग वास्तविक काम नहीं के बराबर करते थे। लेकिन जब कभी कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति शहर में आता तो ये लोग उसे माला पहनाते और इमारत के ऊँचे टावर पर सीढ़ियाँ चढ़ाकर ले जाते और उत्तरी दिशा में सफेद कटार की तरह चाँद की रोशनी में बह रही सरयू नदी को दिखाकर कहते कि हमारा शहर कितना सुंदर है।

इस गली में ज्यादातर बढ़ई, टीन के कारीगर, अंडे बेचने वाले और इस तरह के कामगार लोग रहते थे। रास्ते में लकड़ी की कतरनें और बुरादा, अंडों के छिलके, टीन के टुकड़े और सूखे पत्तों के ढेर इधर-उधर बिखरे दिखाई देते थे। धूल इतनी थी कि पूरा पैर उसमें घुस जाता था। मैं सोचने लगा कि मेरे मित्र ने रहने के लिए यही जगह क्यों चुनी है। मुझे डर लगा कि लीला यहाँ से निकलेगी तो उसे खतरनाक बीमारियाँ लग सकती हैं। गंदे और जंगली दिखने वाले बच्चे दिन भर धूल में घूमते रहते, खुजैले कुत्ते हम पर भूँकते और जगह-जगह गधे अकड़कर खड़े दिखाई देते। मैंने कहा कि लीला मेरी गोद में आ जा, लेकिन इसके लिए वह तैयार नहीं हुई। हेडमास्टर ने कहा कि 'इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। आप चिंता न करें, यह जगह गंदी ज़रूर है लेकिन

तन्दुरुस्ती के लिहाज़ से खराब नहीं है। लीला को कुछ नहीं होगा... आप उसे चलने दें।' मैं चुप हो गया, शरम भी आई कि मास्टर मेरा इरादा समझ गया है।

'यह एण्डर्सन कौन था जिसके नाम पर यह गली है?' मैंने पूछा। एक मकान पर इस नाम की शानदार प्लेट लगी थी।

'ईश्वर जाने। इस नाम की ही खातिर गली में कुछ किया जाता। मैंने कई दफा पता लगाने की कोशिश की कि यह कौन था लेकिन किसी को कुछ पता नहीं। ईस्ट इंडिया कंपनी के दिनों का कोई आदमी रहा होगा।'

अचानक वह चलते-चलते रुक गया और बोला, 'यह मेरा घर है।' छत की टाइलें सड़क पर निकली पड़ रही थीं, बगल से एक गटर घरघराकर फूटा पड़ रहा था और उसका पानी घर के सामने बह रहा था।

उसने कहा, 'सँभलकर आना। गटर मैं पैर न चला जाय।'

जैसे ही हमने गटर पार किया, सात से दस साल की उम्र के तीन बच्चे, जो दरवाज़े पर खड़े थे, उससे लिपट गये।

'तुम्हारी माँ घर पर है?' उसने पूछा।

'नहीं,' उत्तर आया।

'बढ़िया है,' यह कहकर वह अंदर घुसा। बच्चों का जवाब सुनकर वह खुश हो गया था। 'सुनो बच्चो, तुम्हारी यह नई दोस्त है। कितनी अच्छी बच्ची है!' बच्चे खुश होकर लीला को देखने लगे। लेकिन लीला उन्हें देखकर परेशान-सी लगी। उसने मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया और मेरे पीछे छिपने की कोशिश करने लगी। बच्चों ने कुछ इस तरह अपनी जगहें बना लीं कि लीला उनके सामने रहे। 'पापा, घर चलो। और बिल्ली कहाँ है?'

'अभी रुको,' मैंने धीरे से उससे कहा। 'इतनी जल्दी कुछ नहीं माँगना चाहिए। और देखो, कितने अच्छे बच्चे हैं...।' लेकिन वे अच्छे नहीं थे। वे एकदम जंगली दिख रहे थे। बालों में नीचे से ऊपर तक धूल भरी थी, कपड़े गंदे और फटे-पुराने थे और हरकतें भी अच्छी नहीं लगती थीं। तीनों खड़े लीला को घूर रहे थे। मास्टर भीतर चला गया था, कुछ देर बाद वह एक चटाई लेकर बाहर आया, और दरवाज़े और कमरे के बीच की जगह पर उसे बिछा दिया। आंगन एकदम खुला था, बीच में कुआँ था और सारी ज़मीन गीली हो रही थी। कमरे में पुराना फरनीचर, कपड़े और बर्तन ठसाठस भरे हुए थे। बगल में छोटा-सा किचेन था, काला और सीलन-भरा। चटाई जापानी लेकिन पुरानी और चिथड़े—चिथड़े हो रही थी, उसके बीच में एक लड़की की तस्वीर बनी थी। मैं और लीला उस पर बैठ गये। बच्चे चारों तरफ हमें घूरते खड़े थे। उसने पूछा, 'तुम्हारी माँ कहाँ गई है?'

'पता नहीं। और आप आये नहीं, इसलिए वह नाराज़ थी, और हम पूछ भी नहीं सके। आप घर क्यों नहीं आये, पापा?' 'मुझे कहीं और जाना था', मास्टर ने हलकेपन से जवाब दिया जिससे उन्हें परेशानी न हो। लेकिन वे पूछते ही रहे तो वह बोला, 'तुम्हें बार-बार एक ही बात नहीं पूछना चाहिए।'

सबसे बड़े लड़के ने पूछा, 'आपने खाना खा लिया?'

'हाँ।'

उन्होंने एक-दूसरे को देखा और कहा, 'माँ यह सोचकर चली गई कि आपने खाया नहीं होगा और आते ही खाना माँगेंगे।'

'ठीक है,' वह बोला। 'मैं तुम्हारी माँ को जानता हूँ। अच्छा बच्चो, अब तुम लोग जाओ... या इस बच्ची को भी ले जाओ और इसके साथ खेलो।' वह यह सुनकर डर गई और मुझसे कहने

लगी, 'पापा, मैं नहीं जाऊँगी।' मास्टर ने इसे सुन लिया और बोला, 'तुम इनके साथ नहीं जाना चाहतीं? तो मत जाओ।...अच्छा, अब तुम सब जाओ।' वे तीनों शोर मचाते हुए सड़क पर गायब हो गये। मैं पूछे बिना नहीं रह सका, 'कहाँ जायेंगे ये सब?'

'पता नहीं। कह नहीं सकता... गटर में, या पड़ोस के बच्चों के पास...। मेरा इन पर कोई नियंत्रण नहीं है। माँ ही इनकी खास देखभाल करती है।' यह बात इनकी घरेलू उठापटक का संकेत थी। मैं इसमें पड़ना नहीं चाहता था लेकिन सवाल मुँह से निकल ही गया, 'ये आपके स्कूल नहीं आते?'

'स्कूल?' वह तल्खी से बोला, 'मेरा स्कूल और सब बच्चों के लिए है, इनके लिए नहीं।'

'तो कहाँ पढ़ते हैं ये?'

'कुछ पता नहीं....।' इसी क्षण, करीब पैंतीस साल की एक मोटी-सी औरत, जिसके थोड़े से बाल सिर के पीछे एक गाँठ में बँधे थे, और मुँह से तेल और पसीना टपक रहा था, घर में घुसी। उसने मास्टर पर एक नज़र डाली, और यद्यपि हम सामने ही बैठे थे और वह भी हमारे पास से गुज़री, हमारी उपस्थिति दर-गुज़र करते हुए कमरे में यह बड़बड़ाती हुई चली गई, 'तुम्हें घर लौटने का वक्त मिल गया!' मास्टर ने जवाब नहीं दिया, 'सिर्फ उदास नज़र से मेरी ओर देखा। अब वह दाँत कचकचाती, दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई और बोली, 'खाने के लिए कब तक तुम्हारा इंतज़ार करूँ? तुम्हारा ख्याल है कि मैं पत्थर की बनी हूँ।'

'तुम्हें इंतज़ार करने के लिए तो किसी ने नहीं कहा।'

'तुम यह फैसला करने वाले कौन हो कि इन्तज़ार करूँ या न करूँ? तुम और तुम्हारा स्कूल! स्कूल से घर का रास्ता पता नहीं है तुम्हें?'

'फिज़ूल की बातें मत करो। हमारे घर भले लोग आये हैं, क्या सोचेंगे हमारे बारे में?'

'मैं किसी की परवाह नहीं करती! ये बड़े आदमी हैं तो तुम्हारे लिए होंगे, मेरे लिए नहीं हैं। मैं किसी की परवाह क्यों करूँ? जवाब दो इस बात का। इतनी देर तक कहाँ रहे? तुम समझते हो कि मैं घर की देखभाल के लिए नौकरानी हूँ तुम्हारी?'

मेरे लिए यह दृश्य भयंकर था। उठकर मैंने कहा, 'अब हम चलते हैं।' वह अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला, 'मैं किसी भले आदमी को घर नहीं ला सकता क्योंकि तुम अपने व्यवहार से उसे ज़रूर भगा दोगी...।'

'अरे नहीं, यह बात नहीं...', मैं कहने लगा।

वह बोली, 'क्या उपदेश दिया है। कोई राजा-महाराजा भी आ जाए तो भी मैं वही रहूँगी जो हूँ। मैंने इनसे क्या कहा है?'

'कोई बात नहीं...', मैं चलने को हुआ तो लीला बोली, 'और बिल्ली? बिल्ली तो मुझे मिली ही नहीं।' मास्टर ने कहा, 'अरे हाँ, लेकिन मैं भूला नहीं हूँ।' फिर अपनी बीवी की तरफ़ देखकर बोला, 'वह बिल्ली कहाँ है? भीतर है?'

'मुझे क्या पता?,' पत्नी ने जवाब दिया। 'मेरे पास क्या कम काम हैं कि मैं राह चलते बिल्ली और कुत्तों की गिनती करती रहूँ।' मास्टर ने मेरी तरफ एक कमज़ोर-सी मुस्कान फेंकी और बोला, 'यह कभी भी सीधा जवाब नहीं दे सकती—दिन-भर में कभी भी। दुनिया में कड़वी ज़बान वाले बहुत से लोग होते हैं—लेकिन दिल से वे अच्छे होते हैं। लेकिन यह—मैं भी अपनी बीवी के लिए इस तरह बोलता अच्छा नहीं लगता....लेकिन मैं भी क्या करूँ?...और मैं भी क्यों न ऐसे बोलूँ? बच्चों ने भी मुझे साफ बात करना सिखाया है, बड़ों की सभ्य लीपापोती के बिना। किसी को यह गलत लगे तो मैं परवाह नहीं करता।'

लीला ने इस भाषण में फिर छेद कर दिया, 'बिल्ली कहाँ है?' मेरा मन हुआ मैं यहाँ से भाग

जाऊँ। इसलिए मैंने कहा, 'बिल्ली शायद कहीं चली गई है। लौट आएगी तो मास्टरजी तुम्हें दे देंगे।' लेकिन वह बोला, 'ज़रा ठहरो', और भीतर चला गया। फिर कुछ देर बाद सिर हिलाता लौट आया। 'वह टीन के पीछे स्टोर में होती थी। बेबी, माफ करना, लेकिन मैं तुम्हें बहुत जल्द बिल्ली ला दूँगा।' लीला यह सुनकर निराश हो गई। इसलिए मैंने एक-दो मज़ाक करके उसका मूड ठीक किया और बाहर निकले। मास्टरजी हमारे घर तक पहुँचाने आये। मुझे लगा कि अपने घर के बजाय उन्हें मेरे घर में ज्यादा अच्छा लगता है। वह आरामकुर्सी पर बैठ गए और एक किताब उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया। मैंने उन्हें आश्चर्य से देखा। यह किताब एलिज़ाबेथ-काल के नाटककार, बोमौर और फ्लेचर की समीक्षा थी। मैंने कहा, 'मैंने अंग्रेज़ी में इतनी बोरिंग किताब कभी नहीं पढ़ी। आपको इसमें क्या अच्छा लग रहा है?'

उन्होंने किताब हटाई, अपना चाँदी का चश्मा उतारा और कहा, 'मैं इसे पढ़ नहीं रहा। अगर मैं इस तरह अपने सामने किताब खोल लूँ और उसमें छपी लाइनों पर नज़र टिका दूँ, तो मुझे अपनी व्यक्तिगत बातें सोचने में बहुत मदद मिलती है। मैं किसी और उद्देश्य से किताब नहीं पढ़ता। जैसे इस किताब ने मुझे विवाह, परिवार इत्यादि के विषय में गहरा चिंतन करने में बहुत सहायता दी है।' तभी बेटी भीतर आई और उसने माचिस की डिबिया से बनाया घर उसे दिखाया। इसे देखकर वह क्षण-भर में अपनी परेशानियाँ भूल गया। उत्साह से बोला, 'अरे, यह तो बहुत बढ़िया घर है। ऐसा घर तो मैंने आज तक कभी नहीं देखा।' लीला की सहेलियाँ बाहर खड़ी उसे खेलने के लिए बुला रही थीं। वह यह कहते हुए कि 'पापा, मैं खेलने जा रही हूँ', उनके साथ चली गई। 'आज सवेरे से लीला बड़ों के ही साथ रही है', मास्टर ने यह कहते हुए किताब रख दी। उसकी तरफ देखते हुए बोला, 'पूरी किताब में एक भी ऐसी लाइन नहीं है जो आपके विचारों में बाधा उत्पन्न करे...चिंतन के लिए आदर्श किताब...एक भी ऐसी लाइन नहीं...।' फिर क्षण भर चुप रहा और बोला, 'आपने देखा कि बच्ची ने कितनी जल्दी हमें छोड़ दिया, और अपनी सहेलियों के साथ चली गई? देवदूतों के लिए हम बड़ों का साथ सही नहीं होता। ऐसे बड़े जो बिल्ली के बारे में दिया गया वचन भी पूरा नहीं कर सकते। उसे हम कैसे बेवकूफ़ नज़र आते होंगे।'

शाम के छह बज रहे थे। मैंने दीवार के पार पड़ोस में नज़र डाली जहाँ बच्ची पाँच-छह बच्चों के साथ खेल रही थी। मैंने पुकारा, 'लीला, घूमने नहीं चलोगी?' वह हिचकिचाई। एक सहेली ने उसे सुझाव दिया, 'पापा को घूमने जाने दो। हम खेलते रहेंगे।' उसने फौरन जवाब दिया, 'पापा, तुम जाओ! मैं अभी खेल रही हूँ।'

मैं और हेडमास्टर नदी के किनारे घूमने चले गये। वहाँ रेत पर बैठे और डूबता हुआ सूरज देखते रहे। फिर वह कहने लगा: 'करीब बीस साल पहले जब मैंने यूनिवर्सिटी से बी० ए० पास किया तो लोगों ने मुझे कानून पढ़ने की सलाह दी, फिर दफ्तर, मेज़-कुर्सी में बिठाने की, लेकिन मैंने इस सबका विरोध किया। मैं बच्चों से प्यार करता था और स्कूल खोलना चाहता था। आदमी जो करना चाहे, उससे उसे कौन रोक सकता है? मैं शादी भी नहीं करना चाहता था लेकिन उसमें मुझे फँसा दिया गया, लेकिन जो काम मैं नहीं करना चाहता उसे करने से मैंने इनकार कर दिया।

'मैं अपने पिता का अकेला लड़का था लेकिन उनके व्यवहार के कारण मैंने घर छोड़ दिया। लॉली एक्सटेंशन में हमारा बहुत शानदार घर था, ऐसा कि आप यकीन नहीं करेंगे। मैं वहीं पला और बड़ा हुआ था, यह दरअसल उसी घर की याद है जो मेरी बीवी को बहुत परेशान करती है और जिसके कारण वह इतनी चिढ़ी हुई रहती है। मैंने नौकरी के सवाल पर घर छोड़ दिया था और जब पिताजी का देहांत हो गया, तभी उसमें वापस गया। मेरी बीवी सोचती थी कि अब मैं

उसी घर में रहूँगा लेकिन मैंने यह नहीं किया और मुझे यह भी पता नहीं कि उस घर का हुआ क्या। मेरी माँ की मृत्यु के बाद उन्होंने दूसरी शादी कर ली थी और अब वह, उसके बच्चे या भाई उसके लिए लड़-झगड़ रहे होंगे। मुझे वह घर नहीं चाहिए, उसकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं है, न मुझे उनका एक भी पैसा चाहिए। लेकिन बीवी चाहती है कि मैं अपने अधिकारों के लिए लड़ूँ। अगर मेरा अधिकार मुझे मिल भी जाय तो मैं उसका उपयोग नहीं कर पाऊँगा, और इस तरह लड़ने में अपना कीमती वक्त बरबाद करना मुझे ठीक नहीं लगता।'

'लेकिन तुम्हारी बीवी और बच्चे तो अच्छी ज़िंदगी बिता सकेंगे...।'

'आप भी यह सोचते हैं? इसकी कोई उम्मीद नहीं है। वह तो महल में भी उसी तरह रहना शुरू कर देगी।'

'लेकिन तुमने उसे रहने की बहुत अच्छी जगह भी तो नहीं दी है...।'

'आप ठीक कहते हैं। लेकिन मैंने सोच-समझकर उस जगह का चुनाव किया है। ईश्वर ऐसी ही जगहों में रहता है। हमें भी ऐसी ही जगहों में रहना चाहिए। और अगर हममें कुछ योग्यता है तो हमारी उपस्थिति से वह जगह बदल जायेगी। लेकिन बीवी की समझ में यह बात नहीं आती। वह मेरे स्कूल को बेवकूफी समझती है और अपने बच्चों को वहाँ नहीं भेजेगी। मैंने हर कोशिश करके देख ली लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। उसे हक़ है कि बच्चों को जहाँ चाहे, भेजे। उसने उन्हें गटर में डाल दिया है, जहाँ सुअर पलते हैं। आपने देखा, बच्चे कैसे लगते हैं! मेरी बीवी असंभव की मिसाल है। अब मेरी आखिरी उम्मीद यही है कि किसी दिन कोई चमत्कार होगा और उसका दिमाग़ बदल जायेगा। हमें दुनिया की सबसे बड़ी बुराई से भी निराश नहीं होना चाहिए।'

'लेकिन तब तक, आप क्या यह नहीं सोचते कि आपको उसकी बात मानकर किसी अच्छी जगह में रहने चले जाना चाहिए?'

'नहीं। पहली बात तो यह कि मैं जो कर रहा हूँ, वह मेरा कर्तव्य है, दूसरी यह कि वह जहाँ भी जायेगी, उसे भी अपने जैसा बना लेगी।' यह समस्या बाहरी नहीं है।'

नदी हमारे सामने बहती चली जा रही थी। मैं उसकी बातें सुनता रहा और सोचता रहा कि यह आदमी गलत दुनिया में पैदा हो गया है।

'तुम्हें बच्चों का यह स्कूल खोलने का विचार क्यों पैदा हुआ?' मैंने प्रश्न किया।

'मेरे बचपन के दिनों की यादों से। ज्यादातर लोग उस शानदार ज़िंदगी को भूल जाते हैं। लेकिन वह हमेशा मेरे साथ रही है। वह समय ऐसा होता है जब चीज़ों के रंग कुछ और होते हैं, गहराइयाँ ज्यादा होती हैं, विस्तार बड़ा होता है, उस समय की ज़िंदगी ज्यादा सुखी और संतुलित होती है। बिना किसी विशेष बात के प्रसन्नता उसी समय प्राप्त होती है। फिर जब हम स्कूल जाते हैं तो उसका चश्मा हमारी आँखों पर चढ़ जाता है, जिसके कारण वस्तुओं के प्रति उस समय की हमारी दृष्टि एकदम बदल जाती है और हम वयस्क हो जाते हैं। मुझे हमेशा लगा है कि हमारे शिक्षकों ने हमें हमेशा गलत दिशाओं में मोड़ने का काम किया है। इसलिए मैंने हमेशा महसूस किया है कि मानवता के भविष्य के लिए हमें अपनी मूल दृष्टि बनाये रखना चाहिए, और बच्चों की शिक्षा के द्वारा मैं उसी को स्थापित करने की कोशिश कर रहा हूँ। बच्चों को स्वतंत्र छोड़ दो और वे ठीक रहेंगे। इस मैं 'स्वतंत्र छोड़ो व्यवस्था' का नाम देता हूँ, जो उन्हें पूर्ण मनुष्य बनायेगा, और हमें भी, जो उनके साथ इस तरह काम करेंगे, वयस्कता के इन शापों से बचाएगा।'

इसके बाद उस पर खाँसी का दौरा पड़ा। जब खत्म हुआ तो थोड़ी देर रुककर वह फिर कहने लगा, 'अब मैं आपको एक रहस्य की बात बताता हूँ। मैं पूरी तरह अपनी योजना के अनुसार जीवन बिताना चाहता हूँ और इस संबंध में किसी का भी हस्तक्षेप बरदाश्त करने के लिए तैयार

नहीं हूँ क्योंकि मेरे पास समय बहुत कम रह गया है। मुझे पता है कि किस दिन मैं मर जाऊँगा। एक ज्योतिषी ने मेरे जीवन के हर मिनट की गणना करके यह समय मेरे लिए निश्चित किया है। मुझे ठीक-ठीक पता है कि किस दिन किस घंटे...मेरी पत्नी को अपने जीवन का यह सबसे बड़ा आश्चर्य ज्ञात होगा।' यह कहकर उसने अपनी बात पूरी की, 'यही कारण है कि मैं उसे इतने धैर्य से सहन करता हूँ।'

हम घर लौट आये। मैंने उसे भीतर आने को कहा लेकिन उसने इनकार कर दिया। 'अब इस वक्त नहीं। लेकिन जब मुझे जरूरत होगी, मैं आ जाऊँगा, और आपको यह स्वीकार होगा।'

'हाँ, बिलकुल...इसे अपना ही घर समझें।'

'अरे नहीं, घर यह आपका ही है और रहेगा...', यह कहकर वह लौट पड़ा।

7

मित्र के माध्यम से सुशीला से बातचीत का मेरा सिलसिला तीन-चार सप्ताह तक टूटा रहा। कुछ दिन तो वह बीमार रहा, फिर कोई न कोई काम निकल आया, फिर अतिथि आने लगे जिनके कारण वह नियत दिन और समय पर मेरे साथ नहीं जा सका। मैं जाता था और निराश होकर लौट आता था, और चौथे बुधवार को मैं आशा लगाये उसके घर गया। वहाँ एक माली था जिसने मुझे एक पत्र दिया, 'मुझे बहुत अफसोस है कि सिर्फ एक घंटे की सूचना पर बहुत ज़रूरी काम से त्रिचनापल्ली जाना पड़ रहा है। कब लौटूँगा, इसका पता नहीं है, लेकिन मैं तुम्हें पत्र लिखूँगा' वह परिवार के साथ गया था। मैंने पूछा, 'मैं तालाब जाकर वहाँ कुछ देर बैठ सकता हूँ?' नौकर ने अनुमति दे दी।

मैं मंदिर के बाहर उसी स्थान पर बैठ गया। शाम झुक आई थी। तालाब का शांत जल, उस पर खिले कमल के फूल और ठंडी हवा, इन सबने मिलकर मुझमें एक नई चेतना भर दी, फिर भी मन में निराशा का भाव प्रबल था। मैंने आँखें बंद कर लीं और पत्नी के रूप की कल्पना करने लगा। पत्ते सरसरा रहे थे। मैंने ज़ोर से कहा, 'श्रेष्ठ आत्माओ! आप सब यहाँ हो? क्या आप वार्तालाप का कोई अन्य उपाय नहीं कर सकते?'

मुँह से ये शब्द बोलते हुए मुझे शर्म भी आई। मेरे शब्द चारों ओर छाई गहरी शांति में डूबते चले जा रहे थे। उनकी ज़रा भी प्रतिक्रिया नहीं हुई, होती तो मुझे संतोष होता। मैंने दोबारा यही शब्द, लेकिन इस बार बहुत धीरे-धीरे कहे—ऐसा लगा जैसे मैं स्वयं से ही बात कर रहा हूँ। मैं फिर शर्मिंदा हुआ और निराशा में डूबने लगा। कई महीने बाद पहली बार मैंने अपने को इतना अकेला महसूस किया। मृत्यु की भयानक निस्तब्धता और निरुत्तरता ने मुझे जड़ बना दिया और मैं निश्चेष्ट हो उठा। पुरानी भावनाएं वापस लौटने लगीं और लगने लगा कि अभी तक वे बंदी बनकर रह रही थीं, अब स्वतंत्र होकर मेरे ऊपर टूट पड़ने को आतुर हैं।

मैं घर लौट आया और सोने की कोशिश की परंतु नींद नहीं आई। अपने से पूछता रहा: 'मैं ज़रा-सा तिनका पकड़े यह समझता रहा कि ज़मीन पर पहुँच गया हूँ। अब वह तिनका भी बह गया है और मेरा कोई अवलम्ब नहीं है। अब मैं डूब जाऊँगा। मैं पहले ही डूब गया था लेकिन यह बात जानता नहीं था। कुएं के किनारे मैं घास का एक तिनका पकड़े बैठा था।

दूसरे दिन भारी मन से अपना काम करता रहा। बेटी ने सवेरे जब मुझे देखा तो संदेह से पूछने लगी, 'पापा, आप नाराज़ हैं?' 'नहीं तो', मैंने कहा और पूरी कोशिश करके उसे तैयार कर स्कूल पहुँचा आया। मुझे खाने से नफरत हो रही थी, काम से नफरत हो रही थी, दोस्तों से चिढ़ हो रही थी। दिन-भर लड़कों पर अपना गुस्सा उतारता रहा। बी० ए० की कक्षा में एक विद्यार्थी कुछ पूछने खड़ा हुआ। वह प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी था, स्वभाव और व्यवहार से गंभीर था लेकिन मैं उस पर भी चिल्ला उठा, 'बैठ जाओ! मुझे बीच में कोई हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं है...।'

'लेकिन, सर...'

'चुप रहो। तुम दूसरों से ज्यादा नंबर ले आते हो। इसलिए समझते हो...।' वह चुप होकर बैठ गया। उस वक्त उसके चेहरे पर जो भाव आया, उसे मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा, न अपने को इसके लिए माफ़ कर पाऊँगा। पीरियड खत्म होने के बाद मैंने उसे बुलाया और पूछा, 'क्या कह

रहे थे तुम?'

उसने उस दिन के पाठ में जो समझ नहीं आया था, पूछा और मैंने स्पष्ट करके समझा दिया। फिर कहा, 'इन चीज़ों पर ज्यादा ध्यान मत दिया करो, ये सब बकवास हैं लेकिन इन्हें हमें पढ़ना पड़ता है और इन्हें मानने का दिखावा भी करना पड़ता है— जीवन और मृत्यु की समस्या तो हमें हर समय परेशान करती रहती है...'

'लेकिन, सर, इम्तहान के लिए...,' वह बोला। फिर मैंने कहा, 'मैंने तुमसे अभद्रता की, मुझे माफ़ करना... आजकल मैं बहुत परेशानियों से गुज़र रहा हूँ...।' 'मैं समझता हूँ, सर', वह बोला और चला गया। गजपति से भी मैं सही ढंग से बात नहीं कर सका। शाम को जब हम मैदान से गुज़रे, उसने कहा, 'कृष्णन, मुझे तुमसे कुछ बात करनी है।' मैं यह सुनकर खड़ा हो गया और प्रतीक्षा करने लगा। उसने कहा, 'इस वक्त तुम से बात कर सकता हूँ?' मैंने तल्खी से कहा, 'हाँ, अभी क्या हुआ है?' 'यहीं?' उसने फिर पूछा। 'हाँ, यहाँ क्या खराबी है?' 'तुम किस वजह से परेशान दिखाई देते हो।' 'किसी से भी नहीं। दुनिया ठीक चल रही है। मैं ध्यान से सुन रहा हूँ।' वह मुझे अपने कमरे में ले गया, कुर्सी पर बिठाया और बोला, 'पहली बात यह कि ब्राउन यह सोचता है कि हम साहित्य के इतिहास की उपेक्षा कर रहे हैं। उसने फोर्थ ईयर के टैस्ट पेपर देखे और उसे पसंद नहीं आये। उसका ख्याल है कि बोर्ड की परीक्षा में लड़के ढेर हो जायेंगे।'

'तो हमें क्या करना चाहिए?'

'वह चाहता है कि उनके लिए तुम साहित्य के इतिहास का एक विशेष पीरियड लो।'

'ये लोग साहित्य के इतिहास का इतना तमाशा क्यों बनाते हैं? दुनिया की हर ज़रा-ज़रा-सी बात का इतिहास रचने की क्या ज़रूरत है—कोई मूर्ख हर बात का बोगस इतिहास तैयार करे, क्या तभी साहित्य बचेगा? अगर वह यह मान ले कि मैं लड़कों को इसी लहज़े में पढ़ाऊँगा, तो मैं विशेष क्लासें लेने को तैयार हूँ।'

'फिज़ूल की बातें मत करो', गजपति ने कहा, 'तुम्हारी कालेज की आदतें अभी गई नहीं है।'

'नहीं, इसके विपरीत अब मैं गंभीर और मूर्खतापूर्ण कार्यों का अंतर समझने लगा हूँ।'

इन दिनों गजपति मेरे प्रति अधिक सहिष्णु हो गया था। वह मेरा भाषण खत्म होने का इंतजार करता रहा, फिर मुझे अपना परामर्श और आदेश दोनों दिये। मैंने कहा, 'ठीक है, मुझे तुम्हारा आदेश मानना ही होगा। लेकिन मैं लड़कों को क्या सही है और क्या बकवास है, यह दोनों स्पष्ट कर दूँगा। मैं उन्हें बताऊँगा कि वे साहित्य का कचरा चर रहे हैं और हम कचरा विभाग के नौकर हैं।'

मैं घर के दरवाज़े पर खड़ा था, कि लीला का मास्टर सड़क से गुज़रा। मैंने उसे दूर से देख तो लिया लेकिन बहाना बनाकर कि देखा नहीं है, भीतर जाने को मुड़ा। अब मुझे लोगों से बात करने में परेशानी महसूस होती थी। मन पर बड़ा दबाव पड़ता था। मैं सोच रहा था कि वह निकल जाय तो मैं कुछ करूँ, लेकिन उसने दरवाज़े पर आकर आवाज़ दी, 'कृष्णन!' अब उससे मिलना ही था। दरवाज़े पर आकर मैंने उसका स्वागत किया। मैं उसे भीतर नहीं बुलाना चाहता था इसलिए बाहर ही बात करने खड़ा हो गया। वह बोला, 'तबियत ठीक नहीं लगती!'

'नहीं, ठीक है। इतना ठीक मैं कभी नहीं रहा।'

'शाम को टहलने चलोगे?'

'सॉरी! कुछ और काम है।'

'लीला कहाँ है?'

'खेलने गई है।' मैं बहुत संक्षेप में जवाब दे रहा था। वह चला गया।

उस शाम काफ़ी देर तक मैं नदी के किनारे एक कोने में बैठा रहा। 'नदी में लंबी डुबकी लगाऊँ...या साँप के मुँह में हाथ दे दूँ—इस दुख को समाप्त करने के दो हज़ार उपाय हो सकते थे। लेकिन बच्ची का क्या होगा... ईश्वर उसकी देखभाल करेगा, हर कोई करेगा। अब वह एक सत्ता है। वह बिना माँ के रह रही है तो पिता के बिना भी रह लेगी। मैंने उसके लिए कुछ पैसा भी जमा कर दिया है...। उसकी अच्छी देखभाल हो जायेगी। ईश्वर उसकी रक्षा करे!'

दूर श्मशान घाट की दीवार के पीछे चिता की एक लपट दिखाई दी। और मेरे मन से एक आह निकल गई। मनुष्य की सबसे बड़ी आकांक्षा यही हो सकती थी। 'ठीक उसी जगह जहाँ सुशीला को अग्नि दी गई थी...।' मुझे उसका पीला चेहरा याद आया, जिस पर मक्खियाँ बैठी थीं, और होंठों की मुस्कान—मैं फूटकर रो पड़ा। फिर चुप होकर बोला, 'यही मेरा अंत होगा। ईश्वर, मुझे इसी समय अग्नि के हवाले कर दे!' मुझे यहाँ आती मेरी अर्थी और दाह-कर्म के दृश्य दिखाई देने लगे। इनसे मुझे कुछ शांति मिली।

ऐसे ही दिन बीतने लगे, लंबे, खाली, दुख-भरे दिन—जैसे मन पर भारी बोझा लदा हो। लगता था, उसमें पिघला हुआ सीसा भर दिया गया है।

फिर एक दिन मेरे मित्र का पत्र आया: 'मुझे इतने दिन चुप रहने के लिए खेद है। मैं अपने कानों तक मुकदमों में फँसा रहा और लगता है, इनमें मुझे और भी ज्यादा वक्त देना पड़ेगा। लेकिन जो हो, इनका इन्तज़ाम करके मैं कुछ हफ्तों में लौट आऊँगा। यहाँ मैं एक घर में रह रहा हूँ जिसमें एक अच्छा-सा मैदान है, और मेरा अपना एक कमरा भी है, जहाँ मैं अपने वकीलों और गवाहों से बातें करता हूँ और बचा हुआ समय पढ़ने में बिताता हूँ। मुझे अचानक इसलिए यहाँ आना पड़ा कि मेरे चाचा गुज़र गये और ज़मीन-जायदाद का इन्तज़ाम करना था। उन्होंने तीन शादियां की, ढेरों बच्चे पैदा किये और इनसे जितनी परेशानियाँ पैदा होती हैं, उन्हें कोई भी समझ सकता है।

'लेकिन आज आपको यह पत्र लिखने का मेरा उद्देश्य आपको अपनी समस्याओं से परेशान करना न होकर कुछ और ही है। मैं सोचता हूँ कि एक-दूसरे से अलग रहने की स्थिति में हम यह प्रयोग कर सकते हैं। मैं देखना चाहता हूँ कि दूसरे की अनुपस्थिति में भी क्या वार्तालाप किया जा सकता है। आत्माओं के जीवन में दूरियों का कोई महत्व नहीं है इसलिए यह प्रयोग सफल न हो, इसका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। रविवार को चार बजे शाम मैं यह प्रयोग करना चाहता हूँ। इसलिए उस समय आप भी अपने कमरे में बैठ और मुझसे मानसिक रुप से संबंध स्थापित करके अपनी पत्नी से कहें कि वे बातचीत करें। उस समय जहाँ तक संभव हो और कोई विचार अपने मन में न आने दें। ठीक साढ़े चार बजे प्रयोग खत्म कर दिया जायेगा। इसके बाद इसका परिणाम मैं आपको तुरंत डाक से भेज दूँगा।'

मेरे जीवन में फिर से प्राण आ गए। दो दिन बाकी थे। मेरी सारी थकान मिट गई थी।

रविवार के दिन मैंने बेटी को बहलाकर अम्मा के साथ स्कूल भेज दिया और अपने कमरे में आरामकुर्सी पर आसन जमाकर आँखें बंद कर लीं। चार बजने में दो मिनट बाकी थे। मन को शांत किया। हृदय उत्तेजना से धड़क रहा था। एक क्षण साँस रोककर उसे भी शांत किया। आँखें खोलीं तो देखा कि ठीक चार बज गए हैं। मैंने मन में कहा, 'मेरी पत्नी सुशीला, उधर मेरा मित्र और इधर मैं, दोनों, जुड़ चुके हैं। बातचीत आरंभ करो।' मैंने कल्पना की कि मित्र अपने कमरे में ध्यान लगाये हैं, इधर मैं उनसे संयुक्त अपनी कुर्सी पर शांत बैठा हूँ, और मेरी पत्नी उनके माध्यम से बात कर रही है। मैंने आँखें बंद कर लीं और चार बजकर पैंतीस मिनट तक इस स्थिति में बना रहा।

दो दिन बाद जब मैं कॉलेज के लिए निकल रहा था, डाकिये ने एक बड़ा-सा लिफ़ाफ़ा

लाकर दिया। किताबें बगल में थामकर मैंने लिफ़ाफा खोला और उसमें से दो लंबे कागज़ निकाले। इन पर पेंसिल से संदेश लिखा हुआ था। साथ में मित्र का पत्र भी था। संदेश यह था:

‘काफी दिन पहले तुम्हारे मित्र के माध्यम से मैंने तुमसे बातें की थीं। इस समय मैं महसूस कर रही हूँ कि मैं एक दीवार पर बैठी हूँ जिसके एक ओर तुम्हारे मित्र हैं, और दूसरी ओर तुम अपनी हरी आरामकुर्सी पर आँखें बंद किये, मन को स्थिर रखने की चेष्टा करते हुए बैठे हो... तुम्हें पहले की तरह उसी आरामकुर्सी पर बैठे देखकर मैं यह महसूस कर रही हूँ कि हम अलग दुनिया में न होकर उसी कमरे में एकसाथ हैं...

‘आज पहली बात मैं तुमसे यही कहना चाहती हूँ कि किसी प्रकार से भी परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। पिछले कई दिनों से तुम बहुत उदास और अस्थिर हो रहे हो। तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं चल रहा है। यह सब नियंत्रण में रहना चाहिए...

‘हम तुम्हारे मित्र को धन्यवाद देते हैं कि इस प्रकार अलग-अलग रहकर भी बातचीत करने का हमारा सुझाव उन्होंने स्वीकार किया। मुझे विश्वास है कि इससे तुम्हें लाभ होगा। अब तुम यह सोचो कि हमसे सीधे किस प्रकार संपर्क स्थापित कर सकते हो। इसके लिए तुम्हें स्वयं को तैयार करना होगा। इससे तुम्हारी अवस्था में परिवर्तन हो जाएगा। तुम्हें इस बातचीत के लिए आजीवन अपने मित्र पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा, वे भी स्वतंत्र हो जायेंगे। लेकिन इसके लिए तुमको तैयारी करनी होगी। इससे तुम्हारे जीवन में संतुलन स्थापित हो सकेगा, जिससे तुम्हारा स्वास्थ्य और मन दोनों ठीक हो जाएँगे। परंतु इससे पूर्व भी तुम्हें अपना मन और स्वास्थ्य इस प्रकार नियंत्रित करना पड़ेगा कि बातचीत का आरंभ करने में कोई बाधा उत्पन्न न हो। तभी तुम्हारा मस्तिष्क संदेश ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर सकेगा। यहाँ आकर मैंने बहुत कुछ सीखा है; विश्वास करो कि यदि तुम्हें मन की शांति चाहिए तो यह तुम्हें हमसे ही प्राप्त हो सकती है।’

अगले रविवार को हम फिर उसी समय ध्यान करने बैठे। सोमवार को सवेरे डाकिया पत्र ले आया। ‘दुख मत करो। इसके कारण मुझे तुमसे कहीं ज्यादा दुख पहुँचता है। अपने मन को गलत विचारों से मुक्त रखो। यहाँ मैं एक शब्द-चित्र दे रही हूँ।

‘एक थका-माँदा और भूखा-प्यासा यात्री दिन भर के सफर के बाद घर लौट रहा था। डूबते हुए सूरज ने उसके चारों ओर की दुनिया को एक गुलाबी जादू से भर दिया था। पक्षी अपने घोंसलों को वापस लौट रहे थे। बगल में एक झरना बह रहा था। उसने वहाँ बैठकर अपनी प्यास बुझाई। उसने देखा कि एक काली चिड़िया एक टहनी पर बैठी सीटी बजा रही है। सफेद सारसों का एक झुंड आसमान में उड़ा जा रहा था, सूरज की लालिमा उन पर पड़ रही थी। उनकी मंद-मंद गति और श्वेत-लाल रंग ने यात्री का हृदय एक अनिर्वचनीय सुख से भर दिया। वह अपने-आप से कहने लगा—यह सब कितने आश्चर्य और श्रद्धा के योग्य हैं, जो प्रकृति और परमात्मा को इस तरह प्रतिक्षण देख सकते हैं, उनकी जीवन-यात्रा कितनी सरल हो जाती है।—घर पहुँचते समय उसका शरीर थका हुआ था परंतु आत्मा आनंद से परिपूर्ण थी।

‘मैं नहीं जानती, इसे तुम किस दृष्टि से लोगे। लेकिन मेरी आत्मा इस चित्र से हमेशा प्रभावित और प्रसन्न रही है और अब इसे तुम्हें भी पहुँचाकर मैं अकल्पनीय सुख का अनुभव कर रही हूँ। मैंने इस पर एक गीत भी रचा है। जब मैं बैठकर यह गीत गुनगुनाती हूँ, एक स्वर्गिक अस्तमान सूरज, अद्‍भुत रंगों के पक्षी, निर्झर की अनुपम ध्वनि, सब कुछ मेरे सम्मुख मानो आकार धारण कर उपस्थित हो जाता है, और मैं यात्री से बातचीत भी करने लगती हूँ। और मेरे चारों ओर संगीत बजता रहता है—यह समस्त रचना विचार से उत्पन्न होती है, परंतु किस प्रकार, यह तुम समझ नहीं सकोगे। हमारी दुनिया में परिणाम तुरंत और बढ़िया प्राप्त होते हैं; तुम्हारी दुनिया में

मस्तिष्क प्रेरित करता है और व्यक्ति प्रयत्न करता है; यहाँ वह उपलब्धि के रूप में तुरंत प्राप्त हो जाता है। तुम्हारा प्रयत्न ही प्रमाण है कि यहाँ यह तथ्य है; वहाँ बाधाओं पर विजय प्राप्त करके ही कुछ संभव है...

'तुम सोच रहे होगे कि मैं कवि हो गई हूँ। पिछले दिनों मैंने तुम्हें ऐसे अनेक विचार दिये हैं जिन पर तुम लिख सकते हो—मैंने कोशिश की है कि ये विचार तुम्हारे मन में स्थापित हो जायँ; अगर तुम अब भी कविता लिखो तो ये उनमें व्यक्त होंगे। मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि किसी दिन हम दोनों इस प्रकार मिलकर एक महाकाव्य की रचना करेंगे। यह मैं मज़ाक नहीं कर रही हूँ, पूरी गंभीरता से कह रही हूँ। हो सकता है कि इन प्रयत्नों को कोई विशेष महत्व न दे। थके-माँदे यात्री के चित्र की तरह कोई इन पर ध्यान दे और कोई बिलकुल भी न दे, लेकिन, क्योंकि ये तुम्हारी प्रिय पत्नी के प्रयत्न हैं, इसलिए तुम्हें ये अवश्य पसंद आयेंगे।'

दस-बारह दिन बाद मेरा मित्र अपने बाग-बगीचे में लौट आया और पहले की तरह मिलकर ध्यान लगाने योग्य हो गया। मैं भी अपने पुराने कमल फूलों से भरे ताल के किनारे बैठने का फिर अवसर पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

आंरभिक चर्चा के बाद पत्नी ने अचानक मुझसे प्रश्न कर दिया, 'तुम इस कार्य के लिए स्वयं अपने मानसिक विकास का प्रयत्न कब आरंभ कर रहे हो?

'यह मैं कैसे कह सकता हूँ?' मैंने जवाब दिया।

'वाह! अगर तुम यह नहीं जानोगे कि यह कब करोगे या नहीं करोगे, तो दूसरा कौन जानेगा?'

मैंने सफ़ाई दी, 'मेरा मतलब यह नहीं था। मुझे तुम्हें यह बताना पड़ेगा कि कब और कैसे करना चाहिए। मार्गदर्शन तो तुम्हीं को करना पड़ेगा।'

'कल से ही क्यों नहीं शुरू कर देते? लेकिन तुम्हारा कल हो सकता है, कभी न आये। इसलिए आज ही घर लौटकर क्यों न शुरु कर दो? सिर्फ दस मिनट काफी होंगे। बिलकुल आराम से बातचीत करना है। अब इसे स्थगित मत करना। तुम मेरे बारे में रुक-रुककर सोचते हो। फिर कभी-कभी बहुत समय तक मेरे अलावा और कुछ भी नहीं सोचते। मैं तुम्हें सिर्फ यह बता सकती हूँ कि मैं यहाँ बहुत प्रसन्न हूँ। फिर जब तुम खुद यहाँ आओगे, तब भी मैं बहुत प्रसन्न होऊँगी—इस बात पर संदेह मत करना। लेकिन सही समय से पहले यहाँ आने की बात सोचना भी तुम्हारे लिए ठीक नहीं होगा। इसलिए इस विषय में कभी कुछ मत सोचना। दरअसल इसे रोकने के लिए ही मैं तुम्हें एक निश्चित समय पर अपने पास बुलाने का प्रयत्न कर रही हूँ।

'यानी तुम चाहती हो कि मैं निश्चित समय पर ही तुम्हारे बारे में सोचूँ?'

'हाँ, क्योंकि मेरे साथ संपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए निश्चित योजना के अनुसार ही काम करने की आवश्यकता है। जब-जब तुम मेरे बारे में दुखी होकर विचार करते हो, तब-तब मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकती, क्योंकि दुख मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, जिसे किसी भी तरह रोकना हम दोनों के लिए आवश्यक है।'

'लेकिन', मैंने आपत्ति की, 'यह कैसे हो सकता है कि मैं स्थायी रूप से तुम्हारे बारे में सोचना बंद कर दूँ? मैं तुम्हारे बारे में सोचे बिना रह नहीं सकता...।'

'जिस तरह मैं भी तुम्हारे बारे में सोच रही हूँ, उसी तरह, मैं जानती हूँ कि तुम भी मेरे बारे में सोचते होंगे। मैं बस यही चाहती हूँ कि इस सोचने में तुम मेरे साथ संपर्क की इच्छा को भी शामिल कर दो। यही वह पहलू है जिसे मैं तुम्हारे मनोविकास और हमारे बीच संबंधन के लिए आवश्यक मानती हूँ।'

'तो तुम यह चाहती हो कि इसके अलावा दूसरे किसी भी समय मैं तुम्हारे बारे में विचार न

करूँ?’

‘नहीं, नहीं, नहीं। तुम निश्चित समय पर ही अपने अंतर्विकास के लिए बैठना, और तभी किसी माध्यम के सहयोग के बिना मैं तुम तक पहुँच सकूँगी— तभी मेरे लिए यह संभव हो सकेगा।’

‘मैं कागज़ और पेंसिल लेकर बैठूँ?’

‘कागज़, पेंसिल वगैरह महत्व की बात नहीं है। महत्व की बात यह है कि तुम अपना मन संदेश ग्रहण करने योग्य बना लो, फिर वह अपना मार्ग स्वयं बना लेगा। इस कार्य के लिए तुम्हें अपने को तैयार करना है। तब तुम्हें मेरी उपस्थिति प्रतीत होने लगेगी। अभी तुम मेरी झलक पाने के लिए इधर-उधर देखते हो, इसके बाद धीरे-धीरे मुझे अपनी बगल में बैठा महसूस करने लगोगे, और इससे तुम्हारे मन को वास्तविक शांति मिलेगी। आराम से बैठो, मन से सब विचारों को निकाल दो और मेरा ध्यान करो, और संदेश ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाओ। सिर्फ दस मिनट करो। कोशिश करके देखो।’

‘आज रात को करूँ?’

‘हाँ, करो।’

‘मैं ग्यारह से पहले तैयार नहीं हो पाऊँगा।’

‘समय महत्वपूर्ण नहीं है।’

मैं प्रसन्न मन घर लौट आया। लगा कि मुझे एक नई दुनिया की चाभी मिल गई है। मैंने जीवन में इतनी प्रसन्नता कभी नहीं जानी थी। मैं सोचने लगा कि मन की शक्ति संचित करके और वह पूरी शक्ति लगाकर वह संबंधन साधना मेरा कर्तव्य है।

घर पहुँचा तो बच्ची जाग रही थी। मैं खाना खाने गया तो वह आकर मेरी गोद में बैठ गई। फिर जब मैं सोने गया तो मैंने उसका सिर थपथपाया और वह तुरंत सो गई। मैंने बत्ती बुझाई, उठकर बैठ गया और प्रार्थना भाव से कहा, ‘मैं तैयार हूँ।’

मैंने घड़ी की ओर देखा, ग्यारह बजने में दस मिनट थे। ‘सुशीला मेरी पत्नी, ‘मैंने बुलाया। मैंने कल्पना में सब कार्य सरल कर लिया था। मैंने सोचा कि मुझे मन में कहना होगा ‘शांत हो जाओ’ तो वह शांत हो जायेगी, और कहूँगा ‘आओ’ तो मेरी पत्नी सामने आकर खड़ी हो जाएगी। कितनी मूर्खतापूर्ण थी यह कल्पना! मुझे मस्तिष्क से संघर्ष करना पड़ा। दुखी होकर बार-बार उसे पुकारना पड़ा। लेकिन मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार लदे पड़े थे— बेकार की बातें चक्कर लगा रही थीं, कॉलेज, रोज़ के काम, शाम को मिलने वाले दोस्त, पत्नी की आवाज़ —इस सबके बीच मैं उसे संदेश-ग्रहण करने योग्य बनाने का घोर प्रयत्न करता रहा। एक तरह का युद्ध था, यह, मेरी आँखों मे आँसू आ गए। मैंने सोचा कि कागज़ पर लिखने को तैयार पेंसिल रखने से स्थिति ठीक हो जायेगी, लेकिन एकाध खरोंच लगने के अलावा, जिसे शायद मेरे अंतर्मन ने ही स्वयं प्रेरित किया होगा, कुछ भी नहीं लिखा गया। मैंने घड़ी देखी, साढ़े ग्यारह बज चुके थे। मैं थककर चूर हो चुका था। मैं सोने के लिए लेट गया, लेकिन नींद भी नहीं आई।

मुझे जो थोड़ी सी शांति और खुशी मिलनी आरंभ हो गई थी, इस असफलता से वह समाप्त होने लगी, और मैं पहले की तरह फिर दुखी महसूस करने लगा। यह ऐसे हुआ जैसे किसी गहरे गड्ढे में फँसे व्यक्ति को सीढ़ी मिल जाय, फिर वह सीढ़ी भी चरमराकर गिर पड़े। अगले बुधवार जब मैं मित्र से मिलने गया, तो उसे यह चिंता बताई और मार्गदर्शन को कहा। मैं समझता था कि यह कोई मुझे गुप्त शब्द होगा जो मुझे दे दिया जायगा, और जिसका उच्चारण करते ही मैं पत्नी का हाथ पकड़कर चलने लगूँगा? इस बार आते ही उसने कहा, ‘पिछली दफ़ा मैंने तुम्हें आत्मिक

विकास का ढंग बताया था। उसके बाद मैं देख रही हूँ कि तुम लगातार संघर्ष कर रहे हो और असफल हो रहे हो। हमारी ओर से प्रभाव ग्रहण करने के लिए तुम्हें एकदम शांत और स्थिर होना चाहिए। तुम्हारे प्रयत्न में मैंने पाया कि एकदम उलटा असर हो रहा है। अब मैं सोचती हूँ कि इसके लिए अभी समय नहीं आया है क्योंकि तुम्हारे घाव अभी ताज़ा हैं। इसलिए तब तक के लिए तुम्हें यह प्रयत्न छोड़ देना चाहिए, जब तक तुम्हारी मेरे संबंध में मानसिक हलचल समाप्त न हो जाय। तुम्हारी इस समय की स्थिति में, जो मैंने सोचा था, संभव नहीं होगा। इसलिए फिलहाल इसका विचार छोड़ दो। समझ गए न?'

यह सुनकर मैं बहुत व्यग्र हो उठा। जो सीढ़ी मुझे दिखाई देने लगी थी, वह भी खींच ली गई और मुझे उसके पास जाने से भी रोक दिया गया। जब वह यह सब कह रही थी, तब मुझे उत्तेजना से भरी उसकी आवाज़ मानो सुनाई भी पड़ने लगी थी, जिसमें कुछ डाँट भी थी। पहले तो मुझे निराशा हुई, लेकिन एक क्षण के ही लिए, और अब मैं क्रुद्ध हो उठा। वह प्रयत्न करने का मेरा अधिकार कैसे छीन सकती है? मैंने कहां, 'मैं प्रयत्न करना किसी भी तरह नहीं छोड़ूँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं सफल होऊँगा।' इसका उस पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वह बोली, 'ठीक है, अगर तुम्हें विश्वास है तो दूसरी बात है। लेकिन मैं तुम्हें देखती हूँ तो पाती हूँ कि तुम्हारा मन तैयार नहीं है। इससे वार्तालाप ज्यादा कठिन हो जाता है। इसीलिए मैंने सुझाव दिया कि कुछ दिन ठहर जाओ। इस बीच तुम्हारे दृष्टिकोण में अंतर आ सकता है, तब तुम्हें ज्यादा लाभ होगा। मैंने यह नहीं कहा कि प्रयत्न एकदम बंद कर दो। अगर तुम्हें विश्वास है तो ज़रूर करो। मैं सिर्फ उन स्थितियों को बता रही हूँ जो मार्ग में बाधक हैं।'

यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे अफसोस भी होने लगा, जैसा हमेशा होता था, कि मैंने ज्यादा तीखी बातें कह दी हैं। इसलिए मैंने तय किया कि मुझे ज्यादा सहनशील होना चाहिए। मैंने पूछा, 'यह अच्छी बात है तो तुम समझती हो कि मैं प्रयत्न जारी रख सकता हूँ, और तुम मेरी पूरी सहायता करती रहोगी?'

'हाँ, प्रयत्न करते रहो। सहायता भी ज़रूरत पड़ी तो ज़रूर करूँगी।'

मैंने उसे जाँचने के भाव से प्रश्न किया, 'मैं जानना चाहता हूँ कि तुम मेरे प्रयत्नों से परिचित हो, इसलिए यह बताओ कि इन रातों को मैंने क्या-क्या किया?'

'मैं जानती हूँ और मैं मौजूद भी रहती हूँ, लेकिन बीच की कठिनाइयों के कारण इससे ज्यादा अपने को व्यक्त नहीं कर सकती। मैं हर रात देखती रही हूँ कि तुम संबंध बनाना चाहते हो और उसके लिए प्रार्थना भी करते हो। तुम्हारे पास कई कागज़ थे और हरे रंग की पेंसिल थी...

मेरी दराज़ में एक दर्जन के करीब पेंसिलें थीं और उस दिन मैंने कौन सी पेंसिल ली थीं, इस पर मैंने ध्यान नहीं दिया था।

वह कहती रही, 'तुम पेंसिल कागज़ पर रखते हो तो उससे एक बिंदी भी नहीं लगी...इससे पहले तुम कागज़ और पेंसिल के बिना ही कोशिश करते रहे। मैं तुम्हें यह बताना चाहती हूँ कि कुछ समय बाद ही तुम मेरी शारीरिक उपस्थिति को महसूस कर सकोगे, और वह भी उसी स्थिति में जब तुम्हारा विकास सही ढंग से होता रहेगा, यानी, जब मुझे आवश्यक मानसिक वातावरण प्राप्त हो जायेगा।'

'तुम मुझे बता सकती हो कि संबंधन के लिए मैं किस स्थान पर बैठा था?'

'तुम अपने बिस्तर पर बैठे थे। आँखें बंद थीं तुम्हारी। तुमने ध्यान शुरू ही किया था कि एक गाड़ी सड़क से होकर गुज़री, जिसके पहिए खड़खड़ा रहे थे और ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से गा रहा था—और इस पर तुमने अपने दाँत पीसे और उसके लिए बहुत कड़वे शब्द कहे।'

'मुझे खुशी है कि तुमने मेरे संबंधन के प्रयत्नों को पूरी तरह महसूस किया।'

'मैं तुम्हारे विचारों को उस समय भी महसूस कर सकती हूँ जब तुम वार्तालाप के लिए बैठे नहीं भी होते हो। तुम कहीं भी और किसी भी समय मेरे बारे में सोचो, सड़क पर, घर में, या नदी किनारे जहाँ चंद्रमा की किरणें उसके जल पर पड़ रही हों, तो मैं तुम्हारे विचारों को जान-समझ सकती हूँ। लेकिन इसकी विपरीत प्रक्रिया को, यानी तुम्हारी ओर से मेरे साथ संबंध आरंभ करने के लिए, तुममें मनोविकास की जरूरत है।'

अब मेरा मन शांत हो गया। 'शांति' 'शांति' शब्द मैं मंत्र की तरह रटने लगा। इतनी सरल बात को न समझ पाने के लिए मैं अपने को ही दोष देने लगा। उस रात घर लौटते हुए मैं धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाता रहा। अपने से कहा, 'प्यारे भाई, शांत बनो।'

अचानक उसके इस कथन का अर्थ मेरी समझ में आ गया: 'जब जल की सतह पर चंद्रमा की रोशनी प्रकाशमान दिखाई दे।' कई सप्ताह पहले, अपनी उदासी के दिनों में एक रात जब मैं सरयू के तट पर बैठा था, पूर्व दिशा में चाँद निकला और जल की सतह पर उसका प्रकाश तैरने-सा लगा। इसे देखकर मेरी उदासी और भी बढ़ी। मुझे फिर मेरी पत्नी की याद आई। उसने कितनी दफ़ा चाँदनी रात में नदी के किनारे टहलने की इच्छा व्यक्त की थी, और विवाहित जीवन के इतने वर्षों में मैं एक बार भी इसे पूर्ण नहीं कर सका था; कोई न कोई साधारण-सी बात इस कार्यक्रम को रोक देती थी; हम कभी इस समय नदी-तट पर न जा सके। उस दिन जब मैंने जल की सतह पर चंद्रमा का प्रकाश लहराते देखा, तब मुझे यही बात दुखी कर रही थी।

इसके बाद हुए वार्तालाप में उसने कहा, 'मैं अब भी महसूस करती हूँ कि तुम कर नहीं पा रहे हो। क्यों न कुछ समय के लिए यह प्रयत्न छोड़ देते?' मुझे इसी बात का डर भी लग रहा था। अब वह सामने थी। लेकिन मैं इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं था। मैंने ज़िद्दी बच्चे की तरह कहा, 'नहीं, मैं सोचता हूँ कि मुझे प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन प्रयत्नों से लाभ भी होता है। मैं इन्हें जारी रखना चाहता हूँ। तुम मेरी अधिक से अधिक मदद करती रहोगी?'

'यह सुनकर मुझे खुशी हुई। अच्छा, तुम रात के बजाय सवेरे ध्यान क्यों नहीं करते, हो सकता है, यह ज्यादा सफल हो? लेकिन दस मिनट से ज्यादा मत करना। मेरा ख्याल है कि रात की नींद ले लेने के बाद, जैसी भी नींद तुम्हें आती है, ध्यान करना ज्यादा फलदायी भी होगा।'

'एकदम सवेरे?' मैंने पूछा।

'नहीं। कॉफ़ी पीने के बाद कमरे में दस मिनट के लिए। रात को तुम्हारा मस्तिष्क ज्यादा ग्रहणशील नहीं होता। दिन-भर की तमाम बातें उस समय मन में उबलती रहती हैं। नींद लेने से विचार शांत हो जाते हैं, इसलिए सुबह करना ज्यादा सही हो सकता है।'

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार किया। वह बोली, 'दस मिनट तक करना।'

लेकिन मैं सूरज की रोशनी में करना ठीक नहीं मानता था—तब स्कूल और कॉलेज दोनों की तैयारी करनी होती है, बच्ची पर ध्यान देना होता है, उसके निकलने के बाद दरवाज़ा ठीक से बंद करना होता है—वह खुद बड़े ज़ोर से बंद करती है—कोई मिलने वाला या कुछ बेचने वाला आ सकता है, और सबसे बड़ी बात यह कि रोशनी हो जाती है। रात की कोमलता, मेरे विचार से, ध्यान के लिए ज्यादा उपयुक्त है। इसलिए मैंने कहा, 'मैं सवेरे के वक्त ज्यादा ताज़गी महसूस नहीं करता। मेरे ख्याल से रात ही ज़्यादा सही है...।'

'ठीक है, रात के समय ही करते रहो।' यह सुनते ही मुझे डर-सा लगा, कहीं मेरी ज़िद के कारण ही उसने यह बात न मान ली हो। इसलिए मैंने पूछ लिया, 'तुम जब भी मैं करूँ, उपस्थित रहोगी?'

'तुम जब भी करोगे, सुबह, दोपहर, रात, मैं आऊँगी। इसकी चिंता मत करो। हमेशा की तरह

करते रहो, लेकिन ज्यादा आराम के साथ। कागज़ और पेंसिल लेकर भी कर सकते हो, जब भी प्रेरणा हो, उसे ग्रहण करो और पेंसिल चलने लगेगी। पेंसिल साथ होने से ध्यान लगाने में मदद मिलती है।'

'तुम मुझे अपनी उपस्थिति का अहसास कैसे कराओगी'

'पहली बात तो तुम्हारे विश्वास की है—कि मेरी उपस्थिति संभव है। फिर जैसे-जैसे तुम्हारी प्रगति होगी, तुम्हें अपनी बगल में मेरे होने का अहसास भी होने लगेगा। मुझे तो यह भी आशा है कि तुम मुझे सुन या देख भी सकोगे, लेकिन अहसास तो अवश्य होने लगेगा, और बहुत जल्द होने लगेगा।'

मैंने कृतज्ञ भाव से कहा, 'जो भी हो, मैं प्रयत्न जारी रखूँगा।

'मैं कोशिश कर रही हूँ कि तुम्हारे विकास में गति आये और यह आसान भी हो। मैं जानती हूँ कि तुम्हें मेरी उपस्थिति का अहसास होता है, लेकिन डरती हूँ कि अगर बहुत जल्द तुम्हें संदेश मिलना शुरु न हुए, तो तुम संबंधन का प्रयत्न बंद कर दोगे। इसके बाद तुम यह भी सोच सकते हो कि तुम्हें मेरी उपस्थिति का अहसास काल्पनिक था, और यह प्रयत्न तुम हमेशा के लिए छोड़ सकते हो। इसलिए मैं कह रही थी कि कुछ समय के लिए इसे बंद कर दो, इससे तुम्हारा विश्वास नष्ट होने का खतरा टल जाता।'

उसकी इस बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ। 'तुम यहाँ हो, यही मेरे लिए काफी है। इसके सबूत देने की ज़रूरत नहीं है।'

दो सप्ताह तक मैंने उसके निर्देशों का कठोरता से पालन करने का प्रयत्न किया। मैं पूरी लगन से विश्राम करता था, दिमाग़ को खुला रखता था। मन के प्रवेश द्वार पर मैंने एक संतरी नियुक्त कर दिया जो भीतर घुसने वाले प्रत्येक तत्व को बलपूर्वक रोक दे। मैंने अपने पूरे व्यक्तित्व को अच्छी तरह प्रशिक्षित किया, अपनी अंतश्चेतना को भी कसा—जिसमें शायद मौलिक दुख का कुछ अंश अब भी कहीं न कहीं, छिपा पड़ा होगा—इन सबको बताया कि पत्नी सर्वत्र विद्यमान है, स्वस्थ और प्रसन्न है, और मैं अत्यंत सुखपूर्वक मन में उसकी याद करता हूँ, और दुख का अब कोई कारण नहीं है। मैं बिस्तर पर लेट गया और सुख के दिनों में जब वह मेरे साथ होती थी, उस समय की कल्पना करके दस मिनट तक उसी पर मन को स्थिर रखने का प्रयत्न करता था। इससे मैं बहुत संतुष्ट था, लेकिन एक दिन उसने मुझसे कहा, 'मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि इन दिनों विकास के लिए जो तुम्हारे प्रयत्न चल रहे हैं, उससे कहीं ज्यादा शांत तुम्हें होना है। तुम अपना दिमाग मेरे इर्द-गिर्द घुमाने की कोशिश क्यों नहीं करते? इस समय तुम्हारे भीतर केवल मेरा चित्र होता है और उससे एक इंच भी इधर या उधर तुम अपना मन नहीं होने देते। यह कठोर प्रयोग हमारा संपर्क स्थापित नहीं होने देता। अपने प्रखर विचार और शक्तिशाली कल्पना से तुमने मुझे पत्थर की मूर्ति के समान बना दिया है। तुम्हारे विचारों को मुझे इतना अवकाश प्रदान करना चाहिए कि मैं तुम्हारे भावों में घूम-फिर सकूँ। तुम्हारे वर्तमान मन की तुलना उस योगी के शरीर से की सकती है जो अकड़कर ज़मीन पर बैठ गया है। क्या तुम्हें यही प्राप्त करना है? इस समय तुम्हारा मन खुला होना चाहिए कि मैं उसमें प्रवेश कर सकूँ। इस समय हो यह रहा है कि तुम्हारा मन मेरे विचारों से इस प्रकार भरा रहता है कि उसमें विश्राम का तत्व नहीं होता और मैं तुम्हारे मस्तिष्क और हृदय किसी में भी प्रवेश नहीं कर पाती।

'तुम्हारी समस्या इस समय यह है कि तुम्हारा मन एकदम सख्त है। पहले मेरे लिए तुम्हारा तीव्र दुख प्रवेश की बाधा बनता था, अब यह बनता है। दुख की बाधा अब लगभग दूर हो गई है। अब ज़रूरत इस बात की है कि तुम मेरे विचार ग्रहण कर सको। यह तभी होगा जब तुम मुझे

पत्थर की मूर्ति नहीं बनाओगे। तुम्हें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसे तुम मेरे साथ बातचीत कर रहे हो। तुम्हें यहीं तक सीमित रहना चाहिए, इस समय तुम मेरी पूजा कर रहे हो। यह कठोरता समाप्त होगी तो सही परिणाम आयेगा। इसमें समय लगेगा, लेकिन कोशिश जारी रहनी चाहिए।

एक रात हेडमास्टर रात को मेरे पास आ पहुँचा। मैं बिस्तर में था। बच्ची सोने गई थी। मैं बैठकर ध्यान करने की तैयारी कर रहा था। बत्ती बुझाने ही जा रहा था कि दरवाज़े से आवाज़ आई 'कृष्णन, कृष्णन!' मैं इस वक्त कुछ नहीं करना चाहता था, इसलिए चुप रहा कि पुकारने वाला चला जायगा। लेकिन आवाज़ आती ही रही। मुझे उठकर दरवाज़े पर जाना पड़ा। वहाँ देखा, हेडमास्टर था। मुझे देखते ही बोला, 'कृष्णन, मुझे माफ करना, इस वक्त आ गया हूँ। कुछ बात करनी है।'

'हाँ, हाँ आओ,' यह कहकर मैंने गेट खोल दिया। हम वरांडे की सीढ़ियों पर बैठ गये। हमारे सोने के कमरे से रोशनी की एक किरण उसके मुँह पर पड़ रही थी और वह बहुत उद्विग्न दिखाई दे रहा था। कुछ मिनट तक वह चुप बैठा रहा। बगल की एक गली में एक गधे के रेंकने की आवाज़ आई, सामने लगे पेड़ों पर पत्ते तेज़ हवा से सरसरा उठे। मैं देखता रहा कि वह अपना मुँह खोले और काम की बात करे। मेरा ख्याल था कि कुछ पैसों की ज़रूरत होगी; उसकी स्थिति खराब ही चल रही थी।

उसने कहना शुरू किया, 'मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ...', कि इस समय गधा फिर रेंका और वह बोला, 'गधे का रेंकना शुभ लक्षण माना जाता है। यानी मैं सही समय पर बात कर रहा हूँ।'

'हाँ, कहो', क्या ज़रूरत है तुम्हें?' और मैं मन में अंदाज़ लगाने लगा कि इसे कितने की ज़रूरत होगी।

'मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे स्कूल की ज़िम्मेदारी सँभाल लो। बस, तुम्हें यह देखना होगा कि यह नष्ट न हो, 'वह बोला। मुझे लगा कि यह चिंताओं से परेशान होकर यह कह रहा है। 'ठीक है, 'मैंने उत्तर दिया और जोड़ा, 'लेकिन मेरा कॉलेज भी तो है।'

'मैं जानता हूँ,' उसने कहा, 'लेकिन क्या तुम वहाँ के काम से खुश हो?' मैंने जवाब नहीं दिया। जवाब की ज़रूरत भी नहीं थीं। फिर मैं बोला, 'लेकिन नौकरी में खुशी की परवाह कौन करता है? नौकरी तो पैसे के लिए की जाती है।'

'यह बात ठीक है', उसने कहा। लेकिन मैं तुम पर इसके लिए दबाव नहीं डाल सकता। तुम इतना तो कर ही सकते हो कि स्कूल पर नज़र रखो जिससे ये बच्चे दूसरी विरोधी दुनिया में न चले जायँ।'

'हाँ, ठीक है,' मैंने जवाब दिया, यह सोचकर कि इस मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति को परेशानी न हो। कमरे की रोशनी में उसके चेहरे का एक हिस्सा चमक रहा था। उस पर मेरी दृष्टि गई तो वह पागल का नहीं, रहस्यवादी का चेहरा नज़र आ रहा था। मैं अधिक देर तक अपने पर काबू नहीं रख सका, ज़ोर से बोला, 'बताओ तो, बात क्या है?'

वह मुस्कराया और कहने लगा, 'आज शायद मेरी ज़िंदगी का आखिरी दिन है। कल मैं शायद नहीं रहूँगा।' उसकी आवाज़ फड़फड़ाती-सी लगी। 'तुम्हें याद होगा कि मेरे पास एक ज्योतिषी की रिपोर्ट है, और मैंने यह भी बताया कि मेरी पत्नी को जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य झेलना पड़ेगा। यही वह आश्चर्य है। मैं इसे किसी को बताना नहीं चाहता था। लेकिन फिर मैंने सोचा कि स्कूल के बच्चों के प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है, और उनका कुछ प्रबंध किये बिना मैं नहीं

जा सकता। दिन-भर मेरे मन में यह उठा-पटक चलती रही और मैं एक दर्जन दफ़ा तुम्हारे दरवाज़े पर आकर वापस लौट गया...।'

मैं उलझन में घिरा उसे देख रहा था लेकिन वह इस तरह बात कर रहा था जैसे एक सड़क से दूसरी सड़क पर मुड़ रहा हो...। इससे मुझ जैसे व्यक्ति को भी, जिसने मृत्यु के विचार से समझौता और उसे स्वीकार करना सीख लिया हो, गहरी परेशानी हो रही थी। वह शांतिपूर्वक कहता रहा, 'मेरे ज्योतिषी ने हर महीने की रिपोर्ट तैयार की है, और उसमें दिये टाइम टेबिल की तरह मेरी ज़िंदगी चल रही है। मैं इसे इतना समझता हूँ कि कोई बात मुझे परेशान नहीं करती। मैं हर वक्त वस्तु को उतना ही महत्व देता हूँ जितना ज़रूरी है, और किसी बात के लिए सीमा से अधिक परेशान नहीं होता—पत्नी के लिए भी मेरा यही भाव है, और वह भी इसी टाइमटेबिल के अनुसार मुझे चलती प्रतीत होती है।'

'फिर उसका क्या होगा?' मैंने पूछा।

'भगवान जाने। मैं तो यही चाहता हूँ कि वह मेरे भाइयों के खिलाफ, मकान और जायदाद के लिए मुकदमा न करे।'

यह सब सोचते हुए मैं सीधा होकर बैठ गया और बोला, 'नहीं, ऐसा कुछ नहीं हो सकता।' इस तरह की बातें करना मुझे मूर्खतापूर्ण लग रहा था।

'नहीं, ऐसा ही है।' उसने ज़ोर देकर कहा।

'ज्योतिषियों को ऐसी बातें कहने की आज़ादी नहीं है।'

'हाँ, लेकिन मेरा ज्योतिषी उस तरह का ज्योतिषी नहीं है, दरअसल वह एक साधु-संत है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य को सही देखते हैं और वैसा ही बताता है। वह नहीं चाहता कि आप रेत में अपना सिर गड़ाकर बैठ जायँ और मान लें कि सब कुछ ठीक है। उनका मानना है कि मनुष्य को सत्य और शक्ति का प्राणी होना चाहिए। तुम उससे मिलोगे तो उसे चाहने लगोगे, हालांकि मैं नहीं जानता कि वह है कहाँ। वह एक दिन भिक्षा माँगने आया, मैं उसे अच्छा लगा, इसलिए वह बैठ गया और मेरा हाथ देखकर मेरी पूरी ज़िंदगी मुझे लिखकर दे दी, और शाम को अपनी राह चला गया। उसके बाद से मैंने उसे नहीं देखा। लेकिन जितनी देर तक वह मेरे साथ रहा, मुझे नई दृष्टि, नए विचारों और नई शक्ति से भर गया। इससे मेरे जीवन में क्रान्ति आ गई। इसके बाद ही मैंने अपना परिवार और घर छोड़ा और यह स्कूल आरंभ किया। तब लोग मेरा मज़ाक उड़ाते थे लेकिन मैंने किसी की परवाह नहीं की। मेरा जीवन उसकी भविष्यवाणी के अनुसार ही चलता रहा है।'

मैंने कहा, 'फिर भी अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य है।'

'है, लेकिन मैं कर क्या सकता हूँ! मैं उन्हें अपना स्कूल दे सकता हूँ, लेकिन क्या वह इसे चलायेगी? हरगिज़ नहीं।'

'वह स्कूल को लेकर क्या करेगी? क्या स्कूल उसको रोटी-कपड़ा दे सकेगा।?'

'अगर वह सही ढंग की ट्रेनिंग प्राप्त करती तो यह स्कूल उसे बहुत कुछ दे सकता था, 'उसने उत्तर दिया।' अगर वह इसमें रुचि लेती तो मैं भी बहुत कुछ कर सकता था। लेकिन उसने तो बच्चों को भी नहीं आने दिया। उस जैसा स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति, मैं जानता हूँ, हर स्थिति से निपट सकता है। मैं समझ गया कि मैं चाहे जो तर्क दूँ, मेरी बात इसकी समझ में नहीं आयेगी। उसने कहा, यह सब चिंता मत करो। उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो। तुम तो यह बताओ कि स्कूल की ज़िम्मेदारी ले सकोगे? कम से कम यह वचन अवश्य दो कि जब तक ये बच्चे यहाँ हैं, स्कूल चलता रहे।'

'मैं, जो संभव होगा, ज़रूर करूँगा। लेकिन मुझे कॉलेज भी देखना है,' मैंने पुराना जवाब

दिया।

'मेरा ख्याल है, मेरा वक्त खत्म हो रहा है। इस वक्त आधी रात होगी, है न?' हो सकता है, मैं कल का सवेरा न देख पाऊँ।' उसकी यह बात सुनकर मैं भीतर एक हिल उठा। ज़ोर देकर उससे कहा, 'दोस्त, इन बातों पर विश्वास मत करो। कल सवेरे तुम यहाँ ज़रूर आओगे।...या यहीं क्यों न सो जाओ?' उसने सिर हिला दिया। कहा, 'यह मेरी आखिरी रात है। मुझे यह पत्नी और बच्चों के ही साथ बितानी है।'

'मैं तुम्हें घर छोड़ आऊँ?' मैंने पूछा और आशा की कि वह मना कर देगा। मैं अपनी बच्ची को तो भूल ही गया था। उसने कहा, 'नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है। मैं सही-सलामत घर जा सकता हूँ। तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बिलकुल ठीक हूँ और मेरा दिमाग़ भी सही काम कर रहा है। अगर अब भी कोई शक हो तो यह कागज़ देखो...।' यह कहकर उसने जेब से एक मुड़ा हुआ कागज़ निकाला और उसे खोलकर अपने घुटनों पर फैला लिया। फिर रोशनी की तरफ मोड़कर कहा, 'पढ़ो इसे। मैंने यह अपनी फाइल से निकाला है, बिलकुल आखिरी कागज़ है यह, 'यह कहकर वह बनावटी हँसी हँसा। 'ज़ोर से पढ़ो।' मैं कठिनाई से इस पर लिखा पढ़ पा रहा था: 'यह व्यक्ति इस पृथ्वी पर निश्चित अपने सब कर्तव्य पूर्ण करके आज के दिन अपनी पत्नी और बच्चों से घिरा इस जीवन को छोड़ जायेगा...।' मैंने पढ़ तो लिया, लेकिन समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहूँ। ऐसे अवसरों पर मनुष्य क्या प्रतिक्रिया करता है?

'लेकिन तुम तो बिलकुल ठीक लग रहे हो?' मैंने ज़रा तल्खी से कहा।

'मैं बिलकुल ठीक हूँ,' वह कहने लगा, 'लेकिन ऐसा क्या है जो किसी को पूरी स्वस्थ अवस्था में और किसी और को बीमारी में ऊपर जाने से रोक सके?' इस जैसा अद्भुत आदमी मैंने आज तक कभी नहीं देखा था। इसके इस पक्ष का मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं था। मुझे लगने लगा कि मैं तो एकदम बेवकूफ निकला। मैंने कभी नहीं सोचा था कि यह आदमी मृत्यु को इस दृष्टि से, विचार के रूप में भी, देखता-समझता है। एक-दो दफ़ा जब उसने मेरी पत्नी की मृत्यु के बारे में संवेदना व्यक्त की थी तो वह बहुत ऊपरी संवेदना थी, जिसका कोई महत्व नहीं था, लेकिन तब मैंने यही सोचा था कि यह संकोचवश कुछ नहीं कह पा रहा है। मैंने अपने मनोवैज्ञानिक अनुभवों और प्रयोगों के बारे में भी उससे कभी कोई चर्चा नहीं की थी, क्योंकि मैं जानता था कि उसे इन बातों में रुचि नहीं होगी, लेकिन अब मुझे उसे ये सब बातें बताने की इच्छा होने लगी, और मैंने उससे कहा, 'सुनो, मैं भी मृत्यु में विश्वास नहीं करता। मेरी पत्नी ने मुझसे अनेक बार बातचीत की है, और मुझे निर्देश भी दिये हैं कि मैं अपना मनोविकास किस प्रकार करूँ।' काफी विस्तार से सब बातें मैं उसे बताता रहा—और वह चुपचाप सुनता रहा। मेरे सामने पड़ रही उसकी छाया में उसका सिर बहुत बड़ा दिखाई पड़ रहा था। फिर वह बोला, 'मुझे गलत मत समझना। यह हर आदमी की अपनी आस्था और विश्वास का सवाल है। मुझे मृत्यु के बाद के जीवन में रुचि नहीं है। इस बारे में मेरी कोई राय भी नहीं है। दूसरे लोकों में वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार जीवन हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। मेरे लिए इसका कोई महत्व भी नहीं है। मैं केवल मृत्यु की सत्ता को मानता हूँ। मेरे लिए यह पूर्ण विराम से अधिक कुछ नहीं है। मैंने इसे पूरी शांति के साथ स्वीकार करने का अभ्यास कर लिया है। इसके परे...,' यह कहकर उसने सिर हिलाया और कहा, 'अगर आप यह कागज़ आगे भी पढ़ें तो पता चलेगा कि इसमें मेरे अगले जन्म के बारे में भी बताया गया है। मैं कोचिन गाँव में एक ब्राह्मण के परिवार में जन्म लूँगा।...वगैरह, वगैरह, लेकिन मुझे उसकी चिंता नहीं है।'

'तुम भविष्यवाणी में इतना विश्वास करते हो तो इसमें भी करना चाहिए,' मैंने कहा।

'लेकिन मेरा विश्वास इसी जीवन को लेकर है, इसके बाद के जीवन के लिए नहीं... अपने

बारे में लिखे इस कागज़ को मैंने एक दफ़ा से ज्यादा नहीं देखा। भूत, वर्तमान, और भविष्य के संबंध में मेरा ज्ञान इसी जीवन से संबंधित है। इससे आगे मुझे कुछ नहीं कहना, क्योंकि मेरा विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् मेरा शरीर जिन पंच तत्वों से बना है, उन सबको मुक्त कर देगा, और मेरी बुद्धि तथा स्मृति उससे ज्यादा नहीं रह जायेगी जितनी वह जल और वायु को प्राप्त है।'

यह सुनकर मैं बहुत दुखी हुआ। मैं अपनी पत्नी के संबंध में सोचने लगा—और जो सब उससे मुझे ज्ञात हुआ था। क्या यह सब अपने को धोखा देना था? क्या वह भी पाँच निष्क्रिय तत्वों से अधिक कुछ नहीं थी और श्मशान की अग्नि ने उसे भाप, हवा और धूल में बदलकर छोड़ दिया था? इस व्याख्या से मैं हिल उठा था। 'लेकिन', उसने कहा, 'ये मेरे अपने विचार हैं...इनसे तुम्हें परेशान नहीं होना चाहिए।' मेरी बेटी नींद में हिली और कुछ बड़बड़ाई। मैं उठ खड़ा हुआ। वह भी उठा और मेरा हाथ पकड़कर बोला, 'अच्छा, विदा दो...अगर मैं कल फिर तुमसे मिलूँ तो मुझ पर हँसना मत।' 'अरे नहीं,' मैंने कहा, 'मिले तो मैं दावत दूँगा। कहूँगा कि तुम्हें नई ज़िंदगी मिली है।'

मैं उसे फाटक तक छोड़ आया। वह तेज़ी से आगे बढ़ गया।

दूसरे दिन मैं जल्दी जाग गया। मुझे मित्र की बहुत चिंता थी। बच्ची अभी तक सो रही थी। मैंने हाथ-मुँह धोया, कॉफी पी और और अम्मा से बच्ची की देखभाल करने के लिए कहकर बाहर निकल गया।

एण्डर्सन लेन पहुँचा तो मेरा दिल तेज़ी से धड़क रहा था। मैंने हेडमास्टर के घर की तरफ नज़र डाली। वहाँ अभी तक अँधेरा था। कुछ मजदूर बाहर चल-फिर रहे थे, कुछ अभी तक घरों के आगे सो रहे थे। सुबह की रोशनी में यह गली भी साफ-सुथरी लग रही थी।

दस-बारह लंबे-लंबे कदम रखकर मैं हेडमास्टर के मकान तक पहुँच गया। दरवाज़ा बंद था। मैंने कान लगाकर सुनने की कोशिश की कि भीतर से रोने की आवाज़ तो नहीं आ रही है। लेकिन उसकी जगह बर्तन खड़कने की आवाज़ सुनाई दी। यानी घर की मालकिन जग गई थी और कोई विशेष बात नहीं हुई थी। इससे मुझे खुशी हुई और मैं वापस जाने को हुआ। लेकिन मैंने अपना विचार बदल दिया। इच्छा हुई कि भीतर जाकर देखूँ कि क्या स्थिति है। मित्र को सुरक्षित और बातचीत करता देखकर ही मुझे संतोष प्राप्त होगा। मैंने दरवाज़ा खटखटाया। उसकी पत्नी ने दरवाज़ा खोला और मुझे देखकर गुर्राई।

'क्या चाहिए?' उसने पूछा।

'हेडमास्टर हैं?'

'नहीं।'

'कहाँ हैं?'

'मुझे बताते हैं क्या?' वह बोली। 'ये सब नियम उनके लिए नहीं हैं। रात को खाना खाकर गये थे, अभी तक लौटे नहीं हैं...उनको बीवी, बच्चे और घर की कोई परवाह नहीं है। बिना बाप के बच्चे हैं ये...', उसने कड़वाहट से कहा। इतने सवेरे ऐसी बातें सुनकर मेरा मन खराब हो गया। मुझे उस आदमी के लिए मन में इज्ज़त जगी, जो ऐसी औरत के साथ इतने साल से रह रहा था। वह वापस जाने को मुड़ी। मेरे मन में आया कि इसका गला घोंट दूँ—उसके बाल ऊपर कसकर बँधे थे, इसलिए यह करना आसान भी था। 'लोग ऐसी औरतों से शादी क्यों करते हैं?' मेरे मन में सवाल पैदा हुआ। 'एक मिनट मेरी बात सुनिये, 'मैं कहने लगा, 'मैं आपको कुछ ज़रूरी बात बताना चाहता हूँ। ये रात को नहीं आए?'

'नहीं, बता तो चुकी हूँ,' वह बोली।

'अब आप शायद उनसे कभी न मिल सकें। मेरा ख्याल है, यह सुनकर आपको खुशी होगी,

'मैंने कहा। वह, मेरा मतलब क्या है, यह नहीं समझ सकी। घूमकर मेरी तरफ सवालिया नज़र से देखा और पूछा, 'क्यों?'

'आप सचमुच जानना चाहती हैं?' मैंने भी सवाल किया। 'जब वह ज़िंदा थे, तब आप चाहतीं तो उन्हें खुश रखकर उन्हें बचा सकती थीं। लेकिन अब वह ज़िंदा नहीं हैं। अब आप आज़ाद हैं। और खुश रह सकती हैं...।'

यह सुनकर वह चीखी और पूछने लगी, 'क्या हुआ है उन्हें? बताइये, क्या हुआ है?' तब तक उसके बच्चे, गंदे चीथड़े पहने और आँखें मलते, क्योंकि अभी वे सोकर उठे होंगे, अपनी माँ के पास आ खड़े हुए। वह उन्हें गले से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगी। 'अब ये सब अनाथ हो गये। अब इन्हें कौन खिलायेगा? आज के बाद ये सड़कों पर मारे-मारे फिरेंगे।'

फिर वह मेरे सामने आकर पूछने लगी, 'मुझे बताइये, सर, क्या हुआ है?' मैंने उसे ज्योतिषी की भविष्यवाणी और रात को मेरे घर आने की बात बताई। तो वह कहने लगी, 'यह सब वह मुझे, अपनी पत्नी को, नहीं बता सकते थे?' उसका रोना बढ़ता जा रहा था। रोते-रोते वह ज़मीन पर गिर पड़ी और सारी सड़क उसके रुदन से गूँज उठी।

इस बीच मैं वहाँ से हट गया। सोचने लगा कि उसे क्या हुआ होगा। मैं घर लौट आया, देखा, बच्ची अभी तक सो रही है। मैंने फैसला किया कि नदी के किनारे उसकी तलाश करूँ और पुलिस को खबर कर दूँ। घर से बाहर निकला और सड़क पर चलने लगा। स्कूल के पास से गुज़रा तो देखा कि वह फाटक पर खड़ा है। मुझे लगा कि कहीं यह उसका भूत हो नहीं है। मैं बोला, 'सवेरे की रोशनी में मैंने कभी कोई भूत नहीं देखा।' उसने दाँत निकाले और मेरे पास आकर मेरे हाथ पकड़ लिये। बोला, 'मैं अपना भूत नहीं हूँ।' अब उसमें एक अनोखी खुशी भरने लगी थी। जैसे नई जान आ गई हो। 'मेरी तरफ सवालिया नज़रों से मत देखो। उनके जवाब मेरे पास नहीं हैं, तुम्हारे पास भी नहीं होंगे। वह घटना नहीं हुई, बस इतनी सी बात है...। मैं नहीं जानता कि उस साधु ने मुझे इस आखिरी दिन की बात क्यों बताई। बस यही एक गलती निकली उसकी भविष्यवाणी में, बाकी सब सही निकला। पहली गलती...लेकिन बहुत ही अच्छी...।'

'कहा नहीं था मैंने कि यह गलत निकलेगी?' मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और खुशी से उछलने लगा। 'आज मैं कितना खुश हूँ!'

'मैं भी...तुम्हें नहीं मालूम कि पिछले कई सालों से मेरे दिमाग़ पर इसका कितना बोझ था—भले ही मैं कुछ और सोचता और कहता रहा होऊँ। कैंसर की तरह, जिसका मुझे पता भी था, कि मैं कब मर जाऊँगा। मेरे ये साल भयंकर कष्ट के रहे हैं। मुझे खुशी है कि अब यह खत्म हो गया। अब मुझे अपनी नोट बुक में कोई और पेज़ पढ़ने को नहीं रहा है। अब मैं आज़ाद और खुश रह सकता हूँ।'

'लेकिन इसके आगे तुम्हारे पुनर्जन्म के बारे में भी तो कुछ बताया है?'

'बकवास है वह। मैं उसकी परवाह नहीं करता। मेरे लिए यही ज़िंदगी काफी है...।'

'लेकिन तुम्हें इसमें इतना विश्वास नहीं करना चाहिए था...तुम्हें पता है, ये लोग...।'

'सुनो, मेरे दोस्त! अब तक के सालों में इसकी बातें इतनी सही साबित हुई हैं कि उस पर मैं अविश्वास नहीं कर सकता था; लेकिन यह उसकी पहली और आखिरी गलती है, क्योंकि इसके आगे, अगले जन्म के अलावा, उसने और कोई बात नहीं कही है...। मैं समझ नहीं पा रहा कि इस महान संत ने यह गलती क्यों की? हो सकता है, उसने मेरा इम्तहान लिया हो,' यह कहकर उसने एक लंबी आह भरी। 'पता नहीं वह अब कहाँ है...अब उससे मिलकर यह जानना भी संभव नहीं है...।' यह कहकर वह हँसा।

सफल नहीं हुआ। भीड़ उत्सुकता से उसे देख रही थी। वह सामने आया और बोला, 'अब आप लोग जाते क्यों नहीं?' लोगों ने कुछ कहा और जवाब का इन्तज़ार करने लगे। वह पैरों से लिपटे अपने परिवार के साथ असहाय-सा उनकी तरफ देखता रहा। भीड़ भी उससे नज़र नहीं हटा रही थी। उसने जेब में हाथ डालकर एक कागज़ निकाला, झटककर उसे खोला और सामने दिखाकर बोला, 'इसे कोई पढ़ सकता है?' एक आदमी आगे आया और उसे पढ़ने लगा। 'ज़ोर से पढ़ो,' हेडमास्टर ने जैसे हुक्म दिया, जिसकी तामील करते हुए उस आदमी ने उस पर लिखी भविष्यवाणी सबको पढ़कर सुना दी। हेडमास्टर ने कहा, 'यह मेरे लिए भविष्यवाणी है और यह ग़लत नहीं हुई है। मैं आप सबके सामने कहता हूँ कि अब मैं इस परिवार के लिए नहीं हूँ। आप मुझे मृत मान सकते हैं, या यह कि मैंने संन्यास ले लिया है।'

उसकी बीवी पूरी ताक़त से चीखने-चिल्लाने लगी। लेकिन वह अपने इरादे पर दृढ़ था। उसने पूरे आडंबर से घोषणा की: 'पत्नी को हर महीने घर चलाने का खर्चा मिला करेगा, लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं। अब मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगा...।' बीवी ने कसकर उसके पैर पकड़ लिये और बोली, 'मेरी गलतियों को माफ़ करो। अब मैं ठीक से रहूँगी...।' उसने बिना एक शब्द बोले उसे झटक दिया। बच्चे उसके सामने खड़े हो गए तो उनसे कहा, 'तुम सब बाद में स्कूल में मुझसे मिलने आना। लेकिन याद रखना, अब मैं तुम्हारा बाप नहीं हूँ...।'

यह कहकर वह भीड़ में रास्ता बनाते हुए बाहर निकला। मैं पालतू भेड़ की तरह उसके पीछे चला। ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आ रही थीं। इनका क्या अर्थ है, सोच नहीं पा रहा था। उसकी बीवी मुझसे कुछ करने को कहने लगी। मैंने असहाय भाव से उसकी ओर देखा। अब मुझे इस प्राणी पर दया आ रही थी। मैं बोला, 'हेडमास्टर, जरा सोचो...'

'कृष्णन, मुझसे कुछ मत कहो,' वह बोला, 'मुझे इससे बड़ा काम करना है और उसे मैं करके रहूँगा। अब मैं कितना आज़ाद महसूस कर रहा हूँ...।' उसने सर आगे किया और तेज़ी से चलने लगा। भीड़ कुछ दूर तक हमारे पीछे आई, फिर तितर-बितर हो गई। लेकिन उसके बच्चे और बीवी पीछे चलते रहे। वह बोला, 'वापस जाओ...तमाशा करना चाहते हो तो करो, तुम्हें मैं रोकूँगा नहीं, लेकिन मैं इसमें हिस्सा नहीं लूँगा। समझ में आया?'

महीने बीतते गये। ज़िंदगी चलती रहती है, एक के बाद दूसरा दिन आता है और गुज़र जाता है, रोज़मर्रा के तय काम होते चले जाते हैं: बच्ची, उसका स्कूल, मेरा कालेज, लड़के, घूमना-फिरना और आत्मविकास। यह अंतिम कार्य इन दिनों मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। मेरे लिए यह एक तरह की स्थायी उत्तेजना थी, जिसके द्वारा अनुभव और ज्ञान के क्षेत्रों में मुझे कुछ नवीन प्राप्त हो सकता था। हर रात मैं सुशीला के बताये निर्देशों के अनुसार ध्यान करने बैठता, अपने दिमाग़ को खुला रखता, और अब मैं यह सोचने लगा था कि मेरी चेतना में बहुत थोड़ा ही सही, परिवर्तन ज़रूर हुआ है। मेरे भीतर वास्तविक प्रसन्नता उत्पन्न होने लगी थी, यादें परेशान नहीं करती थीं, और मैं धीरे-धीरे अस्पष्ट रूप में कुछ घटनाओं के प्रति सचेत भी होने लगा था। कुछ इस तरह जैसे कोई तीन-चौथाई बहरा आदमी अपनी प्रिया की साड़ी की सरसराहट को सुनने लगे। इन्हीं दिनों हुई हमारी एक बातचीत से इसकी पुष्टि भी हो गई कि यह मेरी कोरी कल्पना ही नहीं थी। हमारे बुधवार के कार्यक्रम तो धीरे-धीरे समाप्त हो गये थे, लेकिन औसत छह-सात सप्ताह बाद कभी-कभी हम यह मीटिंग कर भी लेते थे। अब मैं नियमित मीटिंगों की ज़रूरत भी नहीं महसूस करता था। रात्रि के समय किये मेरे संपर्क मुझे पर्याप्त शांति दे देते थे। मुझे उसका यह कथन हमेशा याद रहता, 'पहली बात तो इसमें विश्वास की है,' और इसे मैंने कसकर पकड़ लिया था। 'विश्वास, विश्वास'-तर्क, संदेह और निरंतर असफलता, इन सबसे ऊपर मैंने इसे

स्वीकार कर लिया था। रात-दिन मैं मन में एक ही बात दोहराता, 'मैं जब ध्यान करने बैठता हूँ, वह मेरे साथ होती है, जब मैं निष्क्रिय होकर उसे पुकारता हूँ, वह तुरंत आ जाती है, और इससे मुझे एक अजीब तरह की सफलता भी मिली। और कोई विचार मेरे लिए संभव नहीं था।

काफी समय बाद एक दिन शाम को मेरे मित्र ने कमल-ताल के किनारे यह कार्यक्रम किया। हमेशा की तरह वातावरण बहुत सुंदर था। पत्नी ने कहना शुरू किया, 'तुमने अपने विकास में कुछ नया अनुभव किया है। अब मैं कह सकती हूँ कि तुम्हारा विकास संतोषजनक है। चार दिन पहले की बात सोचो—रात समाप्त हो रही थी, जब मैंने तुम्हें अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराने की कोशिश की। मैंने वही साड़ी पहनी जिसे तुमने एक दिन बहुत शानदार बताया था—नीले रंग की साड़ी जो चमकती रहती है। मैं आई और हम दोनों बगीचे में घूमने चले गए। हम काफी देर तक साथ घूमते रहे, फिर यह अनुभव समाप्त हो गया। तुम बिस्तर जा ला लेटे और फिर सो गये...फिर करवट लेकर सोचने लगे कि बीच में कुछ हुआ है, और इसके बाद फिर सो गये। अगर तुम इस अनुभव को याद कर सको तो मेरी इस बात पर विश्वास करना कि इस समय मैं ही तुम्हारे साथ थी, और यह याद इस बात का भी सबूत है कि तुम्हारा विकास सही ढंग से हो रहा है....।'

इस घटना को याद करने में मुझे ज्यादा परेशानी नहीं हुई। मैं प्रसन्नता से भर उठा। मैंने मित्र का हाथ पकड़ लिया और बोला, 'बिलकुल सच है यह बात, बिलकुल...। मैंने सोचा था कि यह सपना भर था, लेकिन नहीं, सचाई थी यह। सपनों के बारे में हम कितना कम जानते हैं; कितना कम समझते हैं! इस संदेश का एक-एक शब्द सच है। मुझे सपना साफ़-साफ़ याद नहीं है, लेकिन यह याद है कि नीली साड़ी पहने वह मेरे साथ है। मैंने उसका स्वागत किया और हाथ पकड़ लिया। फिर हम बगीचे में घूमने चले गये। सपने का इतना हिस्सा ही याद है। यह परेशान दिमाग़ के द्वारा निर्मित कल्पना नहीं थी, असली सचाई थी।... यह सुशीला ही थी, वह खुद आई थी।'

'अब उससे पूछो', मैंने आगे कहा, 'कि वह मेरे साथ कितनी देर तक रही? क्या वह अक्सर मुझसे मिलने आती है?' इस तरह के मैंने बहुत से सवाल बता डाले। इस समय मैं खुद भी स्पष्ट नहीं था कि क्या सवाल पूछूँ और यह भी कि किस प्रकार पूछूँ। मेरे मन में सिर्फ यह था कि सवाल पूछना है।...लेकिन शायद उसने मेरे मन की स्थिति समझ ली और उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारे इन सवालों का जवाब देने की कोशिश करूँगी, लेकिन ये जवाब संतोषजनक नहीं होंगे, क्योंकि इनकी प्रकृति ही ऐसी है। इस वक्त तुम यहाँ कमल-ताल के पास दो घंटे से हो। क्या तुम यह कह सकते हो कि तुम केवल एक बार अपने मित्र के साथ रहे हो, या दो बार या तीन बार? जब कभी तुम्हें ज़रूरत हो तो दूसरे कमरे से तुम्हारे पास कोई आ जाता है जब कभी तुम विकास या संबंधन के लिए बैठते हो मैं तुम्हारे साथ होती हूँ। कभी ऐसा भी होता है कि मैं दूसरे कमरे में होऊँ लेकिन तुम्हारी उपस्थिति का मुझे ज्ञान हो और तुम्हारे बुलाते ही या तुम्हारी ज़रूरत समझकर मैं वहाँ तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ। तुम अलग करने वाली दीवारों को शीशे की दीवारें समझकर भी व्यवहार कर सकते हो।'

एक शाम जब मैं कालेज से घर वापस लौटा तो माँ का पत्र पाकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि वे दूसरे दिन सवेरे ग्यारह बजे की बस से आ रही हैं। मैंने फौरन बच्ची को यह खबर बताई, और वह पूछने लगी, 'उनके साथ कौन आ रहा है? वे खिलौने भी लायेंगी मेरे लिए?'

'हाँ, लाएँगी, क्यों नहीं लाएँगी?' मैंने जवाब दिया, और उस दिन की शाम की सैर रद्द कर दी। घर की सफाई ज़रूरी थी, नहीं तो माँ इस काम में ही सारा वक्त बिता देतीं। मैंने अपनी कमीज़ उतारी, धोती ऊपर कमर में कसी और सिर में तौलिया लपेट ली। किचन में काम कर रही

अम्मा से कहा, 'सारे बर्तन चमका डालो। कल माँ आ रही हैं। तुम तो जानती हो, इन मामलों में वे कैसी है।' अम्मा ने सब बर्तन बाहर निकाल लिये और झाड़ू लेकर सारे घर की सफाई करने में जुट गई। मैं भी एक डस्टर और लंबी झाड़ू हाथ में लेकर कोने-कोतरों से धूल निकालने और एक-एक ट्रंक बाहर खींच-खींचकर और मेज पर रखी किताबें और कापियाँ उठा-उठाकर सबको अच्छी तरह साफ करने और करीने से उनके स्थान पर फिर से जमाने में लग गया। इससे मुझे छींक आने लगी और ज़ुकाम शुरु हो गया जिसे ठीक होने में दो-तीन दिन लगे। बच्ची मेरे साथ पूरे समय लगी रही। उसे भी काम करने का जुनून सवार हो गया और हर कार्य में खुद भी हाथ बँटाने की कोशिश करती रही।

मैंने उससे कहा, 'तुमने अपने खिलौनों का बक्सा इतनी बुरी तरह भर दिया है कि बंद भी नहीं होता। हॉल में खुला रखा है, वहाँ यह अच्छा भी नहीं लगता। अब इसका कुछ कर डालो। बेकार की चीज़ें फेंक दो और अच्छे वाले खिलौने साफ करके सँभाल-सँभालकर रख दो। दादी गंदा शंदा बक्सा देखेंगी तो क्या कहेंगी?'

लीला ने पहले तो इस पर एतराज़ किया और किसी अच्छे काम की माँग की। लेकिन बार-बार उसे यह समझाने पर कि दादी की वजह से यह करना बहुत ज़रूरी है, उसने 'हाँ' कह दी। फिर वह बक्से के पास गई और हमेशा की तरह उसका हेंडिल पकड़कर उसे ज़मीन पर उलट दिया। हर चीज़ खड़-खड़ करती नीचे आ गिरी—दर्जन-भर गत्ते के डिब्बे, स्लेट, किताबें, लकड़ी के खिलौने, इंजन, मोटरें, और गुड़ियाँ, सब इधर-उधर बिखर गये। वह इन सबके बीच जमकर बैठ गई और बोली, 'जो-जो मुझे नहीं चाहिए, उन सबको फेंक दूँ?'

'हाँ, फेंक दो।' अब उसने बड़ी गंभीरता से यह काम शुरू किया। हर चीज़ को उठाती, ध्यान से देखती रही और फिर फैसला करती, 'यह मुझे नहीं चाहिए' और कमरे के एक कोने में फेंक देती। जो चीज़ें एक जमाने में उसे बहुत पसंद थीं और जिन्हें वह जान से भी ज्यादा प्यार करती थी, अब उनमें से ज्यादातर को वह एक-एक करके फेंकने लगी। थोड़ी देर में दूसरे कोने में बहिष्कृत, खिलौनों का ढेर लग गया। बहुत थोड़ी चीज़ें बचीं, स्कूल की किताबें-कापियाँ, पाँच लकड़ी के बर्तन और एक बड़ी गुड़िया। मैं घर के दूसरे कमरों में काम कर रहा था। लौट कर देखा तो बोला, 'मैंने तो हॉल साफ़ कर दिया था, तुमने फिर गंदा कर दिया।' वह बोली, 'मैं अब सबको बाहर सड़क पर फेंक दूँगी। उसने हाथ में कई चीजें उठाई, उन्हें लेकर बाहर सड़क तक गई, लेकिन फिर बिना फेंके वापस लौट आई और बोली, 'पापा, मैं ये सब वापस बक्स में रख देती हूँ।'

'क्यों?'

'ये सब बहुत ज़रूरी हैं...',उसने बड़ी गंभीरता से कहा और मेरी तरफ गौर से देखा। फिर सब खिलौने उसी बक्स में उसी तरह वापस भर दिये गये।

मैंने माँ को लाने के लिए छुट्टी की अर्ज़ी दी। मार्केट स्क्यावर के पीछे बस स्टैंड पर उसके इन्तज़ार में जाकर खड़ा हो गया। सूरज की चमक बड़ी तेज़ थी, चारों तरफ धूल उड़ रही थी। त्रिचनापल्ली से ग्यारह बजे आने वाली बस का आधे घंटे बाद भी कहीं नामोनिशान नहीं था। मेरा धीरज खत्म होता जा रहा था। यहाँ इन्तज़ार करने के लिए भी कोई जगह नहीं थी। एक मामूली-सा इमली का पेड़ था जिस पर बहुत थोड़ी-पत्तियाँ नज़र आ रही थीं-उसके नीचे बस पकड़ने वाली तीन औरतें, सामान उठाने के लिए तैयार एक कुली और पड़ोस का एक गधा जो गर्मी बरदाश्त नहीं कर पा रहा था—और एक घोड़ा गाड़ी खड़े थे—गाड़ी वाला अभी-अभी यहाँ आया था क्योंकि उसका घोड़ा गर्मी से बदहवास हो रहा था, उसे यह भी उम्मीद थी कि बस से कोई सवारी मिल जाय तो कुछ आमदनी हो जायेगी। वह बस का इन्तज़ार करता गाड़ी में

थककर सो गया। गधा पास आया और घोड़े के मालिक ने उसके खाने के लिए जो थोड़ी सी घास डाली थी, कि वह पेट भरकर अगले सफर के लिए तैयार हो जाय, उसे सूँघने लगा। फिर झपटकर उसने पूरा मुँह भरा, जिस पर घोड़े ने एतराज़ जताने के लिए ज़ोर से हिनहिनाहट की। मालिक जग गया और उसने गधे पर चाबुक फटकारा। लोग सूरज की लपटों में भुन रहे थे, लेकिन यह तमाशा देखकर खुश हुए।

आखिरकार बारह बजे बस आकर खड़ी हो गई। धूल से भरी माँ सवारियों से धक्का-मुक्की करती किसी तरह बाहर आई। उसका पहला सवाल था, 'बच्ची कैसी है?' हमने गाड़ी में उसका सामान रखा, ड्राइवर से पैसों पर बहस की और चले। गाड़ी की खड़खड़ के बीच वह सवाल करती रही—कि मैंने खत क्यों नहीं लिखा, अम्मा ठीक से खाना बना रही है या नहीं, बच्ची की सही देखभाल हो रही है या नहीं, वगैरह। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि वह ज़िंदगी से भरपूर है और सवाल पूछे जा रही है—जिनसे कुछ देर के लिए मुझे सुरक्षा भी महसूस हुई और ज़िंदगी के ठोस मसले और समस्याएं सुलझती-सी लगीं।

बच्ची हमेशा की तरह दरवाज़े पर इन्तज़ार कर रही थी, और जैसे ही मां गाड़ी से उतरी, दौड़कर उसकी गोद में चढ़ गई। दादी और पोती में फौरन ज़ोरदार बातचीत शुरू हो गई, जिसमें से ज्यादातर मेरी समझ में भी नहीं आ रही थी। 'दादी, अपना बक्स खोलो, मेरे लिए क्या लाई हो?' ट्रंक और बिस्तर घर में आने से पहले ही उसने पूछना शुरू कर दिया। दोनों भीतर गईं। मैं उनके पीछे आया। उस समय तक दोनों के बीच काफी तर्क हो चुका था—बच्ची उसके पुराने ट्रंक के ऊपर खड़ी थी और फौरन उसे खोलने को कह रही थी। दादी कुछ मिनट सुस्ताने के लिए माँग रही थी, और कह रही थी: 'बेटी, हमारे छोटे से गाँव में तो दूकानें ही नहीं है। वहाँ से मैं तुम्हारे लिए क्या लाती?' उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। उसने हॉल के दायीं ओर के कमरे पर नज़र डाली, मेरी पत्नी का कमरा, जो अब खाली था। और धोती के छोर से आँखें पोंछ लीं।

मेरी बेटी ने ट्रंक पर चढ़कर जो उत्पात मचाया, तो मुझे लगा कि अब मुझे दखल देना चाहिए। मैंने डाँटकर कहा, 'लीला, तुम्हें कुछ समझना चाहिए...', लेकिन माँ ने मुझे रोक दिया, 'बच्ची से नाराज़ मत होओ, अच्छा उतरो, मैं ट्रंक खोलती हूँ। 'उसने ताले में चाभी लगाई और बोली, 'बचपन में तुम भी बिलकुल ऐसे ही थे, पिता को इसी तरह पकड़ लेते थे— जब तक वे तुम्हें कुछ दे न दें।' उसने ट्रंक खोला। लीला उसकी गोद में बैठी ध्यान से देख रही थी कि उसके लिए क्या निकलेगा। माँ ने ऊपर से साड़ियाँ उठाई, उनके नीचे से दो तौलिये, जैकेट, एक कंघा, और इन सबके नीचे से एक छोटा-सा डिब्बा निकाला जिसमें एक सोने की चेन थी। 'पिछली दफा जब तुम्हारे पिता शहर गये तब वहाँ के सुनार से लीला के लिए बनवाकर लाए थे। आसपास वही एक सुनार है, पंद्रह मील दूर...।' उसने बच्ची को चेन पहना दी।' तीन तोले की है। कैसी है, बेटी?' लीला बड़े संतोष से उसे अपनी छाती पर लटकी देख रही थी। चेन चमक रही थी लेकिन मैं कुछ और देख रहा था। मैं उस डिब्बे को देख रहा था जिसमें से माँ ने चेन निकाली थी। 'माँ ज़रा यह डिब्बा देना', मैंने ज़ोर से कहा।

मैंने इसे उलट-पुलट कर देखा, उंगलियों से नापा और याद करने लगा— चंदन का डिब्बा जिस पर हाथी दांत का काम हो रहा है। 'एक मिनट रुकना', यह कहकर मैं अपने कमरे में घुस गया। मेज़ की दराज़ खोलकर-पत्नी के संदेशों के कागज़ निकाले: 'यह बड़ा डिब्बा नहीं है— आठ से दस इंच लंबा, तीन इंच ऊँचा और चार इंच चौड़ा, इसका ढकना सपाट न होकर गोल सा है... मेरी सास ने मुझे दिया था। चंदन और हाथी दाँत का है...। 'मैंने नापने का फुटा निकालकर उसे नापा उसने जो नाप दी थी उससे आधा इंच इधर-उधर था।

मैंने डिब्बा रख दिया और कागज़ दोबारा पढ़ा। मैं निश्चय नहीं कर पाया कि यह डिब्बा वही

था या नहीं। इसके बाद जो वाक्य था, उसे मैंने नहीं पढ़ा था, 'डिब्बे के नीचे छोटे-छोटे हाथी दांत के पैर लगे हैं, शेर की शक्ल जैसे। डिब्बा हाथ में लेकर मैंने उसके पैरों की जाँच की। हाँ, वैसे ही पैर थे। मैं उत्तेजना से भर उठा, कागज़ उठाकर माँ की तरफ दौड़ा कि उसको बताऊँ, लेकिन रुक गया। वह इस बात को समझ नहीं पायेगी, संदेह करेगी, सवाल पूछेगी, और परेशान हो जायेगी। इसका अर्थ था मृत्यु को एक नई दृष्टि से देखना, जिसे समझना उसकी उम्र के व्यक्ति के लिए संभव नहीं था, और वह मुझे पागल भी समझ सकती थी। इसके अलावा यह बात बहुत कीमती थी जिसे अपनी माँ को भी नहीं बताया जा सकता था। मैंने कागज़ दराज़ में रख दिये, वापस आया और माँ की बगल में बैठ गया। बोला, 'माँ, यह डिब्बा मुझे पसंद है, तू इसमें क्या रखती है?' 'तेरा ही है' उसने धीमी आवाज़ में कहा, फिर मेरे कान में बताया: जिससे लीला न सुने, 'तेरी बीवी के गहनों का। मेरी बहन ने सालों पहले मुझे दिया था। सुशीला को यह बहुत पसंद था। एक दो दफा इसे मुझसे माँगा भी था। लेकिन किसी वजह से मैंने उसे दिया नहीं था...अब मैं इसमें उसके गहने रखती हूँ। इसे बच्ची को दे दूँगी...।'

'मैं इसे ले सकता हूँ?'

'तुम क्या करोगे इसका? इसमें तो गहने रखे जाते हैं...।'

'यह मुझे पसंद है। मैं इसमें बच्ची की छोटी-मोटी चीजें रखूँगा', मैंने कहा। उसने मुझे डिब्बा दे दिया।

इसे पा लेने के बाद दूसरे दिन मैंने अपने ससुरजी को भी उन चौदह पत्रों के बारे में लिखा, जिनकी सुशीला ने अक्सर चर्चा की थी। चार दिन बाद उनका उत्तर आ गया। 'मैंने घर का हर कोना और हर बक्सा और ट्रंक अच्छी तरह देख लिये हैं लेकिन एक भी खत कहीं नहीं मिला है। मुझे लगता है कि वे उस सामान में होंगे जिसे एक दिन उसने और उसके भाई ने जलाकर नष्ट कर दिया था। उम्मीद करता हूँ कि इससे तुम दुखी और निराश नहीं होंगे।' आखिरी पैराग्राफ में उन्होंने लिखा था, 'मुझे नहीं पता कि तुम यह जानते हो या नहीं, लेकिन मैंने तुम्हारे पिताजी को यह लिख दिया है। मैं अपनी नातिन लीला के लिए एक वसीयत कर रहा हूं जो उसे शादी के समय प्राप्त होगी।'

मैं माँ के पास गया। वह हॉल में बैठी बच्ची के बाल काढ़ रही थी। इन दिनों वह बच्ची का सब काम अपने हाथ से ही करती थी क्योंकि उसे शिकायत थी कि मैंने उसकी ठीक से देखभाल नहीं की है।

मैं बोला, 'ससुरजी का पत्र आया है।'

'तो तुम्हें भी वही बात लिखी है', यह कहकर उसने बच्ची की तरफ इशारा किया।

'हाँ, वही बात है।'

'तुम्हारे पिताजी को लिखा था,' उसने बताना शुरु किया, 'वे वसीयत करना चाहते हैं' फिर उंगलियों से छह का आँकड़ा बनाया, 'इसके लिए, जब शादी होगी तब पैसा मिलेगा।'

'दादी, किसकी शादी होगी?' बच्ची ने पूछा।

'हमारे गाँव में एक लड़की की...,' दादी ने जवाब दिया।

'वह कितनी बड़ी है?' लीला ने दूसरा सवाल किया, पता नहीं क्यों वह लड़की का आकार जानना चाहती थी। मेरी माँ ने कहा, 'दूसरे मामलों में बच्ची का भाग्य अच्छा नहीं रहा लेकिन उसके भविष्य का इस तरह इंतज़ाम हो रहा है, यह अच्छी बात है।'

माँ चार सप्ताह हमारे साथ रहीं। पिताजी इन दिनों ठीक थे, इसलिए वह आ सकीं थी। खुशी के दिन थे ये। बच्ची उनकी देखभाल में फूल सी खिल उठी। अब उसने किसी भी बात के लिए मेरे पास आना बंद कर दिया था। वह सवेरे से रात तक दादी से चिपकी रहती और रात

को भी उन्हीं के साथ सोती। उसका व्यवहार भी बहुत बदल गया था। अब उसे देखकर मैं यह सोचकर दुखी होने लगा कि उसे जो चाहिए था, उसे मैं दे ही नही पा रहा था। मेरी देखभाल में अगर बच्ची खुश दिखाई देती थी तो यह उसकी सहिष्णुता ही थी, और कुछ नहीं।

माँ के वापस लौटने का समय आया और वह सामान बाँधने लगी। बच्ची ने उससे पूछा, 'दादी, अब तुम जा रही हो?'

'हाँ, बेटी।'

'मत जाओ, दादी' यह कहकर वह इतनी दुखी दिखाई दी कि माँ ने कहा, तुम मेरे साथ चलोगी?' यह सुन कर लीला उछल पड़ी और बोली, 'पापा, मुझे एक बक्सा दो, मैं उसमें अपना सामान रख लूँगी।' मैंने उसे समझाते हुए कहा, 'अभी नहीं, लीला...अभी नहीं।'

यह सुनकर वह आपे से बाहर हो गई। माँ ने भी कहा, 'लेकिन बेटा, तुम इसे मेरे साथ जाने क्यों नहीं देते?' मैंने जवाब दिया, 'इसलिए कि इसे वहाँ मेरी भी ज़रूरत होगी। दादी ने उससे कहा, 'लेकिन पापा साथ नहीं जायेंगे...।'

'क्यों?' बच्ची ने सवाल किया। 'क्यों नहीं जायेंगे?'

'उन्हें अपने स्कूल जाना होता है...'

'स्कूल तो मैं भी जाती हूँ,' लीला का जवाब था।

'इसलिए तुम मेरे साथ रहो और दादी को जाने दो...,' मैंने उसे समझाया।

'तो दादी यहाँ रह जायँ,' वह बोली। मैं समझ गया कि उसने माँ के साथ जाने का फैसला कर लिया था। वह जानती थी कि उस घर में और भी बच्चे हैं। दो बच्चे मेरी बहन के और दूसरे और मिलाकर कुल सात बच्चे। लेकिन लीला को यह समझ में नहीं आता था, कि घर पर इतने बच्चे क्यों हैं? ज्यादा बच्चे तो स्कूल में होते हैं। इसलिए उसने पूछा, 'यह स्कूल है क्या?'

दूसरे दिन शाम वह दादी के साथ जाने को तैयार थी। मुझे उसे बस से भेजने में चिंता होती थी। मैं भी कभी उसके बिना अकेला नहीं रहा था, यह विचार ही मुझे दुखी कर देता था। लेकिन उसका उत्साह देखकर मैंने अपने को समझाया, 'मुझे स्वार्थी नहीं होना चाहिए। उसे अपनी ज़िंदगी बिताने देना मेरा कर्तव्य है।' उसके खिलौनों का बक्सा और कपड़ों का ट्रंक बस की छत पर चढ़ा दिया गया। मैं माँ को बच्ची के बारे में आवश्यक निर्देश दे रहा था। कन्डक्टर ने सीटी बजाई, तब भी मैं चुप नहीं था। 'इसे खिड़की से बाहर गर्दन मत निकालने देना। यह ज्यादा मिठाइयाँ न खाये। रात को इसे कई दफा बहुत खाँसी आती है। हर शुक्र को तेल लगाकर नहलाना, लेकिन पानी ज्यादा गरम न हो।... नहलाकर एकदम कपड़े से उढ़ा देना... दूध, सिर्फ आधा गिलास...' माँ मुस्कराती मेरे निर्देश सुनती रही।

बच्ची बोली, 'पापा, मैं आपको खत लिखूँगी।'

बस घरघराकर चलने को हुई और शीघ्र ही अपनी उड़ाई धूल में गायब हो गई।

कुछ सप्ताह बाद मेरे पिता का पत्र आया जिसमें एक कागज़ और भी था। पिताजी ने लिखा था: 'यह लीला का पत्र है तुम्हारे लिए। आज सवेरे जब मैंने कहा कि मैं तुम्हें पत्र लिखने जा रहा हूँ, तो उसने तुरंत घोषणा की कि उसे भी पापा को बहुत सी बातें लिखनी हैं। मैंने उसे कागज़ और पेंसिल दी और उसने यह पत्र तुम्हारे लिए लिखा है।' मेरे सामने एक कागज़ था और पिताजी के पैड से निकाला गया था। इसे बीच में से मोड़ दिया गया था। भीतर टेढ़ी मेढ़ी लाइनें थीं जो पेड़, बादल वगैरह लगती थीं और दो-चार अंग्रेज़ी के अक्षर उलटे-सीधे लिखे गये थे। नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में नाम लिखा था—लीला। ऊपर के फ्लैप पर लिखा था 'पिताजी के लिए'—ये अक्षर भी इस तरह बना-बना कर लिखे गये थे कि बच्चे के लिखे लगें, हालांकि यह सब लीला की

तरफ से पिताजी ने ही लिखे थे। इसमें उनकी विशेष स्याही का ही उपयोग किया था। मैंने बेटी का पत्र ध्यान से देखा और मोड़कर जेब में रख लिया—इसे पाकर मुझे बेहद खुशी हुई। पिताजी ने अपने पत्र में स्पष्ट किया था: 'तुम जानना चाहोगे कि लीला ने क्या लिखा है, इसलिए मैं उसकी व्याख्या कर रहा हूँ। लीला हमेशा दर्जन-भर बच्चों से घिरी रहती है, हमेशा उनके साथ खेलती रहती है, और उसने अपने बाबा की आरामकुर्सी के सामने एक किला बनाकर सजा दिया है। बाबा हर वक्त उसके खेल-तमाशे देखता रहता है जिससे उसे बड़ी खुशी मिलती है। इससे बाबा अपनी बीमारियाँ भी भूल जाता है। शाम को वह अपनी दादी के साथ टैंक या बाग में घूमने जाती है। इसका स्वास्थ्य ठीक है, दादी जो उसे खिलाती-पिलाती है, उसे खुश होकर खाती है और हज़म भी कर लेती है। शाम को एक मास्टर उसे पढ़ाने आता है। रात को दादी के साथ सोती है। मैंने उससे पूछा कि पापा चाहिए क्या, तो बोली 'हाँ' और फिर कहा, 'उन्हें भी यहाँ बुला लो'— जो सचमुच बहुत अच्छा सुझाव है। तुम सप्ताहांत उसके साथ बिता सकते हो। आखिरकार वह तुम से चार घंटे ही तो दूर है। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम यहाँ आकर अपने अकेलेपन से निजात पा सकते हो...।'

दूसरे सप्ताह गाँव जाने के लिए मैं बस पर सवार हो गया।

मैं गाँव से लौट आया। घर बहुत उदास लग रहा था, लेकिन मुझे उसे बरदाश्त करना था। मैं अक्सर अपने-आप से कहता, 'वियोग और अकेलेपन से छुटकारा नहीं है...। पत्नी, बच्ची, भाई, माता-पिता, मित्र...सब अलग होने के लिए ही एक-दूसरे से मिलते हैं। यह मिलना-अलग होना निरंतर जारी रहता है। वे हमसे अलग होते हैं, हम उनसे अलग हो जाते हैं। यह जीवन का नियम है जिससे बचने का उपाय नहीं है। जब हम माँ के गर्भ से बाहर आते हैं, उसी समय से वह नियम आरंभ हो जाता है। जीवन का सारा संघर्ष और कष्ट इसी कारण है कि हम इस नियम से बचना चाहते हैं या उसे रोकना चाहते हैं या उसे अपने को चोट पहुँचाने देते हैं। हमें यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए। जीवन का एकमेव सत्य है निपट, उपायहीन अकेलापन। और सब झूठ है। मेरी माँ अपने माता-पिता से अलग हुई, बहनें घर छोड़कर कहीं और चली गईं, मैं और मेरा भाई दोनों एक-दूसरे से अलग हुए मेरी पत्नी मुझसे छीन ली गई, मेरी बेटी माँ के साथ चली गई है, पिता अपने पिता से अलग हुए और मेरे मित्र-कहाँ हैं वे? वे सब पिचकारी की बूँदों की तरह अलग-अलग जा पड़े। जीवन का नियम है यह। इससे लड़ना व्यर्थ है...।'

इस प्रकार मैं पहले की अपेक्षा कम संघर्ष से इसके साथ समझौता करने लगा। मैंने ज़्यादा पढ़ना आरंभ कर दिया। लिखने में ध्यान लगाया और ज्यादा चिंतन करने लगा। मैं सिनेमा देखने जाता, अक्सर सैर करने जाता और कभी-कभी अपने मित्र हेडमास्टर से भी मिल लेता। अपना बहुत सा समय मैं बच्चों को खेलता देखने में व्यतीत करता या हेडमास्टर को स्कूल के मैदान में आम के पेड़ के नीचे उन्हें कहानी सुनाते देखने में बिताता। जब मैं उसकी झोपड़ी के सामने बैठकर बच्चों को देखता तो मेरा अकेलापन बहुत कम हो जाता और मैं अपने भीतर गहरी शांति और संतोष का अनुभव करने लगता। मैं सोचता कि ज़िंदगी से इससे अधिक की आशा करना उचित नहीं है। अपने पास हेडमास्टर की उपस्थिति मुझे बड़ा सुकून देती थी। इन दिनों वह बहुत प्रसन्न रहता था। उसके स्कूल में इस समय दो सौ बच्चे पढ़ रहे थे और वह शिक्षकों तथा कर्मचारियों को अच्छा वेतन देने में समर्थ था।

उसकी पत्नी तथा बच्चे हर रोज़ कई दफा, उससे मिलने आते थे। वह सबसे अच्छा व्यवहार करता। यद्यपि स्वयं उनसे मिलने कभी नहीं जाता था, न उनको पिता और पति कहने का अधिकार देता था। उसकी पत्नी अब काफी बदल चुकी थी, और उसके लिए खाना बनाकर लाने

के लिए भी कहती रहती थी। लेकिन इसके लिए उसने यह कहकर सख्ती से इनकार कर दिया कि 'यहीं से सारे कष्ट शुरू होते हैं। किचेन ही स्त्री का सबसे बड़ा हथियार है।'

8

अब मैं समझ गया था। मैं संतुलित जीवन की तलाश में था, और जो भी इसके मार्ग में बाधक था या हो सकता था, उस सबको, कालेज के कार्य को भी, दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग से हटा देना मेरे लिए आवश्यक था। एक पूरी रात अकेले घर में बैठा मैं इसी बात पर विचार करता रहा और सवेरा होने तक मैंने निश्चय कर लिया था। मैं वह काम जारी नहीं रख सकता था, न मुझे उनके सौ रुपये माहवार की ज़रूरत थी। पहले तो मैंने यही सोचा कि सीधे ब्राउन को त्यागपत्र देकर इससे छुट्टी पा लूँ। इस स्थिति में मुझे अपने मित्रों, सहयोगियों और समझाने-बुझाने वालों से एकदम दूर रहना होगा। और पुरानी घनिष्ठताओं से मुक्त होने में बाधक अपनी भावनाओं की उपेक्षा भी करनी पड़ेगी। मैं ऐसा पत्र लिखूँगा जो एक मिसाल बन जाय और जिसे छूने वाले हाथ भी झुलस कर रह जायँ। इस पत्र में मैं पूरी एक सदी से चल रही गलत शिक्षा-प्रणाली की धज्जियाँ उधेड़कर रख दूँगा। मैं इसमें यह विस्तार से बताऊँगा कि मैं युवा मस्तिष्कों को सौवीं बार शेक्सपियर और एलिज़ाबेथियन छंद और रोमांस कविता से क्यों नहीं भरना चाहता और साहित्य-विश्लेषण, मान्यताओं और इतिहास का सड़ा-बासी गोश्त उनके मुँह में क्यों नहीं ठूँसना चाहता—क्योंकि आज उन्हें इन सबकी नहीं बल्कि ऐसी शिक्षा की ज़रूरत है जो उन्हें मस्तिष्क का पूरा उपयोग करना सिखाएं। इस शिक्षा ने हमें जड़ मूर्खों का राष्ट्र बनाकर छोड़ दिया है, हम अपनी संस्कृति के लिए अजनबी हो गये हैं और दूसरों की संस्कृति का कूड़ा-कचरा खा-पीकर उनके ज़रखरीद गुलाम बन गये हैं।

कॉफी पीने के बाद मैं बड़े-बड़े कई कागज़ लेकर अपनी मेज़ पर आ बैठा। फिर लिखना शुरु किया:

'प्रिय श्री ब्राउन,

यह मेरा त्यागपत्र है। आप निश्चय ही इसका कारण जानना चाहेंगे। ये इस प्रकार हैं...: लेकिन लिखने का यह ढंग मुझे पसंद नहीं आया। यह बहुत हवाई लगता है। मैंने कलम से उसे काट दिया और दोबारा लिखना शुरु किया। तीन कागज़ लिख डाले और उन्हें पढ़ा तो मुझे खुद पर शर्म आने लगी। यह मेरी रुचि के हिसाब से बहुत ज्यादा नाटकीय और फौजी किस्म का था। इसमें मैंने थ्यूरियों, वक्तव्यों की बौछार की थी और अंग्रेज़ी के सब लेखकों की पिटाई की थी, जो मेरा उद्देश्य नहीं था। मैंने सोचा कि शेक्सपियर के सानेटों की या 'ओड टु दि वेस्ट विंड' और 'हर सुंदर वस्तु सदा सुख देती है' जैसी उक्तियों की कोई निपट मूर्ख ही उपेक्षा कर सकता है। लेकिन परीक्षाओं और सहायक पुस्तकों का क्या किया जाय? क्या ये ही ज्यादातर साहित्य के स्थानापन्न नहीं बन जाते? और हमारी अपनी जड़ों के बारे में क्या कहा जाए? मैंने इन बातों पर गहराई से विचार किया लेकिन मेरी उलझन बढ़ती ही गई। मैंने लिखा: 'मैं इस व्यवस्था के खिलाफ हूँ, शिक्षा की उस संपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ़ जो हमें जड़ बुद्धि बना देती है, सांस्कृतिक जड़ बुद्धि, लेकिन जिससे आपका शासन और व्यापार चलाने के लिए कुशल क्लर्कों की भीड़ तैयार हो जाती है। आपको यह भी नहीं सोचना चाहिए कि मैं महान लेखकों के अध्ययन के विरुद्ध हूँ...।' ये मैं हज़ारों दफ़ा पहले कहे गये विचारों को ही दोहरा रहा था। यह 'उच्च शिक्षा की समस्याएं' शीर्षक से एक साप्ताहिक पत्र में बहुत दिनों से नियमित छपती चली

आ रही लेखमाला की—जिसे कोई 'शिक्षाविद्' दस रुपये प्रति कालम के हिसाब से लिख रहा था—भोंडी नकल-सा प्रतीत हो रहा था।

मैंने अपने मन में कहा, 'मैं यह सब नहीं कहना चाहता' और पूरा पत्र फाड़कर उसे रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिया। 'मुझे जो कहना है, वह इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है।'

फिर मैंने एक बहुत छोटा कागज़ निकाला और उस पर लिखा, 'डियर सर, मैं कुछ व्यक्तिगत कारणों से त्यागपत्र दे रहा हूँ। आपसे प्रार्थना है कि मुझे अवलिंब सेवा मुक्त कर दें...।' लिखकर मैंने इसे लिफ़ाफे में बंद कर दिया।

दोपहर बाद यह लिफाफा हाथ में लिये मैं ब्राउन के कमरे में दाखिल हुआ। वह आराम के मूड में घूमने वाली कुर्सी पर बैठा एक किताब पढ़ रहा था। मैंने लिफ़ाफा उसके सामने रख दिया।

'क्या है यह? छुट्टी के लिए अर्ज़ी?' यह कहते हुए उसके सुंदर चेहरे पर एक मुस्कान फैल गई। 'बैठ जाओ,' वह बोला और पत्र पढ़ने लगा। पढ़कर उसका चेहरा कुछ लाल हो गया। मेरी तरफ देखकर पूछा, 'क्या बात है?' फिर सिगरेट जलाई, उसका धुआँ फेंका और अपनी हरी आँखों से मेरी ओर देखते हुए उत्तर का इन्तज़ार करने लगा। मैंने सिर्फ इतना कहा, 'सर, मैं यह काम और ज्यादा नहीं कर सकता...।'

'कोई विशेष कारण?' मैं चुप रहा। क्या जवाब दूँ, मेरी समझ में नहीं आया। इसलिए यही कहा, 'मैं एक बच्चों के स्कूल में काम शुरु कर रहा हूँ।' 'ओह...', वह बोला, 'मैं नहीं जानता था कि तुमने प्राइमरी में पढ़ाने की ट्रेनिंग ली है...।' मैंने उसकी तरफ देखा, पाश्चात्य मस्तिष्क जो हर बात का वर्गीकरण करता है, उसे नाम देता है और उसका अलग विभाग बना देता है...। मैंने कहा, 'मैं अपने एक मित्र के साथ शिक्षा में एक नया प्रयोग करना चाहता हूँ...।' 'अच्छा, यह तो अच्छी बात है', वह बोला। 'लेकिन इसके लिए क्या त्यागपत्र देने की ज़रूरत है? तुम दोनों साथ-साथ नहीं कर सकते?... शिक्षा में तो प्रयोगों की बहुत आवश्यकता है, लेकिन...।' उसका कहना था कि मैं काम 'हॉबी के रूप में करूँ। मैंने कहा, 'सर, मैं कालेज में जो कर रहा हूँ, वह मुझे सही नहीं लगता। मैं पढ़ता हूँ और पढ़ा देता हूँ और वे उसी को इम्तहानों में उगल देते हैं...। मि० ब्राउन, मुझे तो यह काम ही नहीं लगता। यह तो मुझे धोखा-धड़ी लगता है, जो पैसों के लिए कर रहा हूँ।... इससे मेरी अंतरात्मा को खुशी नहीं होती...।' इस तरह मैं बोलता गया।

'मैं क्या कहूँ', उसनें सिर खुजाते हुए कहा। 'लेकिन यह अफसोस की बात है। मैं यह कहूँ कि अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो इतनी जल्दी कुछ नहीं करता...।'

'सर, मैंने इस पर काफी विचार किया हैं', मैंने कहा, 'और मैं फैसला कर चुका हूँ।'

'उसमें तुम्हें क्या आय मिलेगी?' उसने पूछा।

'करीब पच्चीस रुपये महीना...', मैंने उत्तर दिया।

'यानी यहाँ से बहुत कम...।'

'जी। मेरे लिए पैसे का ज्यादा उपयोग नहीं है। मेरा परिवार नहीं है। मेरी बच्ची की देखभाल और लोग करते हैं और उसके भविष्य का प्रबंध भी हो चुका है। मेरे पास कुछ पैसा जमा भी है। सौ रुपये महीने की मुझे जरूरत ही नहीं है...।' ब्राउन यह सुनकर चकरा रहा था। मैंने आगे कहा, 'दुनिया के दूसरे लोगों के विरुद्ध मैं जिस काम को काम समझता हूँ और जिससे मेरी अंतरात्मा सुखी होती है, उसे मैं कर भी सकता हूँ। मैं कविता लिखूँगा और बच्चों के साथ रहूँगा और काम करूँगा और उनके मन-मस्तिष्क को खुलते हुए देखूँगा...।'

'ठीक है', उसने कहा। 'तुम्हारे जैसे व्यक्ति को साहित्य की शिक्षा देने में भी उतना ही सुख मिलना चाहिए। साहित्य के शिक्षक के रूप में तुमने बहुत अच्छा काम किया है...'

मैंने सिर हिलाकर कहा, 'जी नहीं, मैंने ऐसा कोई अच्छा काम नहीं किया है...।'

'तुम यह कहना चाहते हो कि ये सब कवि और नाटककार तुम्हारे लिये महत्वपूर्ण नहीं हैं?'

मुझे लगा कि इस प्रश्न के जवाब में मैं सब बातें दोहरा जाऊँगा जो मैंने पहले पत्र में लिखी थीं और फिर फाड़ दिया था। 'यह बात नहीं है। मैं इनका सम्मान करता हूँ। मैं बच्चों को यही देकर इनका ज्ञानवर्धन और मनोरंजन करूँगा लेकिन यह सब मैं बिलकुल दूसरे ढंग से करूँगा।' इस तरह मैं देर तक बोलता रहा। ब्राउन धीरज से मेरी बातें सुनता रहा। हम घंटे-भर बात करते रहे। अंत में उसने कहा, 'तुम चाहो तो एक हफ्ता और सोच लो। मैं तो यही चाहूँगा कि तुम हमें मत छोड़ो...।' यह कहकर उसने अपना हाथ बढ़ाया। मैंने उसकी बड़ी और गरम हथेली को कसकर पकड़ा... फिर बाहर निकल आया।

कॉलेज में मेरी विदाई के लिए बड़ा भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया। शाम को छह बजे का समय दिया गया था। मैं पाँच मिनट पहले पहुँच गया। शास्त्री और रंगप्पा ने, जो कार्यक्रम का प्रबंध कर रहे थे, मुझे प्रवेश करते ही पकड़ लिया। वे बाहर इन्तज़ार कर रहे थे और मुझे देखते ही आगे बढ़कर मेरा हाथ थामा और एक तरह से खींचकर मैदान में ले गये जहाँ बहुत शानदार इन्तज़ाम किया गया था। होटल के मालिक ने चारों ओर रंगीन झालरें लटका दी थीं, एक दर्जन मेज़ों पर कढ़े हुए टेबिल-क्लाथ बिछा दिये थे और निकेल के गुलदस्तों में फूल लगाकर इनके बीच में रखवा दिये थे।

एक कोने में प्याले और तश्तरियाँ खड़क रही थीं। किनारों पर सफेद कपड़े पहने वेटर खड़े थे। उन्होंने मुझे इज़्ज़त से देखा। यही नहीं, बाकी सब लोग भी मुझे विशेष व्यक्ति के रूप में देख रहे थे। ऐसी क्या बात थी जिसने मुझे हीरो बना दिया था? मैं बहुत संकोच महसूस कर रहा था। वातावरण में चमेली और गुलाब की हलकी खुशबू तैर रही थी। मैं जानता था कि कहीं एक हार भी मेरा इन्तज़ार कर रहा था।

मुझे एक ऊँची पीठ वाली कुर्सी पर बिठा दिया गया। मेरे साथ वाली कुर्सी ब्राउन के लिए थी। बायीं ओर गजपति बैठा था। चारों ओर अध्यापक और विद्यार्थी घुले-मिले खड़े थे। सब मुझे ही देख रहे थे, जो मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। जीवन में इतना आत्म सचेत मैं कभी नहीं हुआ था। गजपति भी बहुत उत्तेजित था और कुर्सी पर बैठा कसमसा रहा था। 'ब्राउन अभी तक क्यों नहीं आया?' वह भुनभुना रहा था और अपनी घड़ी को देखता जा रहा था।

बाहर कार रुकने की आवाज़ हुई। 'प्रिंसिपल साहब'—सब बुदबुदाये। ईवनिंग सूट पहने और जूतों की खटखट करते वे आ रहे थे। 'ये भी अवसर के अनुकूल कपड़े पहनकर आये हैं', मैंने अपने से कहा 'इस सब आंडबर की क्या ज़रूरत है?' गजपति अपनी सीट पर खड़ा हो गया और शास्त्री तथा रंगप्पा स्वागत करने के लिए आगे बढ़े।

हम सब तैयार थे। ब्राउन ने मेरी तरफ मुड़कर धीरे से कहा, 'मुझे डर था कि मौसम कहीं हमें बाहर यह जलसा न करने दे।' मैंने आसमान की तरफ देखा। मौसम के बारे में जो समझ में आया, कहा। गजपति, बिना बुलाये मेहमान की तरह हमारी तरफ गर्दन बढ़ा कर बोला, 'इस मौसम में बारिश आम तौर पर नहीं होती, इसलिए ताज्जुब है कि पिछले दो दिनों से हो रही है। आज नहीं हुई यह भाग्य की बात है...।'

'हाँ', ब्राउन ने कहा, 'अजीब बात है...।' और पसीना बहाता रंगप्पा हाँफता हुआ इधर-उधर घूम रहा था, उसने वेटरों को इशारा किया कि खाना परोसना शुरू करें। दस के लगभग वस्तुएं थी। ब्राउन ने हरेक का स्वाद लिया, लेकिन तीखे मसाले की चीजों से हाथ खींच लिया— जो भारत में तीस वर्ष का उसका अनुभव था—मिठाइयों के छोटे-छोटे टुकड़े मुँह में डाले और बिना

होंठ चलाये सीधे नीचे भेज दिये। गजपति दोनों हाथों की उंगलियाँ एक-दूसरे में लगाये उदास भाव से प्लेटों को देख रहा था। बाकी सब अतिथि बातें कर रहे थे और खाते भी जा रहे थे। मैंने गजपति से पूछा, 'क्या बात है?' उसने उदासी से अपना सिर हिलाकर कहा, 'मैं रोगी आदमी हूँ, इन चीज़ों का मज़ा नहीं ले सकता...?' ब्राउन ने सुन लिया और चुप रहा। वह बीमारियाँ की चर्चा नहीं चाहते थे, इसलिए बात बदलने की कोशिश की। उन्होंने सुनहरे रंग की एक मिठाई उंगलियों से पकड़ी और पूछा, 'यह भी जलेबी का एक रूप है?'

गजपति ने फौरन जवाब दिया, 'मेरा ख्याल है कि आप ठीक कह रहे हैं। यह दाल से बनाई जाती है जबकि असली जलेबी...!'

'तो मैं ठीक निकला', ब्राउन ने मुस्कराकर कहा।

'मैं जलेबी को पहचान लेता हूँ।' हम सब हँसे। रंगप्पा ने जो काफी दूर अपनी कुर्सी से देख रहा था, हमारी तरफ प्रश्न भरी दृष्टि से देखा, और सभ्यता के कारण मुस्करा भी दिया...

जब कॉफी आई तो ब्राउन ने अपना प्याला उठाया और खड़ा हो गया। चारों ओर शांति छा गई। उसने प्याला हाथ में लेकर उठाया और अपनी गंभीर अवाज़ में कहा: 'आज शाम के विशेष मेहमान के स्वास्थ्य के लिए।' लोगों ने तालियाँ बजाईं। फिर उसने कहना शुरु किया, 'मैं नहीं जानता कि कॉफी से टोस्ट करना सही है लेकिन इस समय मैं औपचारिकताओं मैं नहीं पड़ूँगा...' इसके बाद सब उपस्थित जनों की ओर से मेरी सुख और समृद्धि की कामना की गई। फिर कहा, 'मैं इन्हें बहुत वर्षों से जानता हूँ, कितने यह गिन पाना कठिन है। मुझे याद है जब वह मेरे कमरे में इंग्लिश ऑनर्स में दाखिला पाने आये थे। इन्हें मैंने अपने सामने बढ़ते हुए देखा है। शिक्षक के रूप में भी ये सफल रहे हैं। छात्र इन्हें बहुत चाहते हैं। और मैं जानता हूँ कि परीक्षक के रूप में वे इनसे डरते भी रहे हैं।' कुछ लड़कों ने दाँत निकालकर मेरी तरफ देखा। 'हर जगह, हर परिस्थिति में मैंने इन्हें आदर्शवादी के रूप में जाना है। इनकी सदा यह चिंता रही है कि इनके जीवन तथा साहित्य के सिद्धांतों पर दुनिया किस प्रकार खरी उतरे। बहुत कम ऐसे लोग होंगे तो साधारण वेतन के कार्य के लिए उससे कहीं ज्यादा वेतन और सुविधाओं का कार्य छोड़ दें। लेकिन इन्होंने यह कर दिखाया है। एक फ्रेंच दार्शनिक ने कहा है कि सफलता उसके आर्थिक मानों से नहीं जाँची जा सकती। हमारा कॉलेज इस आदर्शवादी को हमेशा गर्व से याद करेगा और...', मेरी ओर देखते हुए कहा, 'जब आपकी संस्था विकसित हो जाय और दुनिया में अपना स्थान प्राप्त कर ले, तब, मैं आशा करता हूँ कि उससे प्राप्त होने वाले संतोष में आप एक हिस्सा हमें भी देंगे...मित्रो, मुझे विश्वास है कि आप सब इनकी सफलता की, मेरे साथ मिलकर कामना करेंगे।' यह कहकर उन्होंने कप बहुत ऊँचा उठा लिया।

मैं सिर ऊपर नहीं उठा पा रहा था। हाथ काँप रहे थे। नीचे देखते हुए मैं बैठा रहा। ब्राउन अपनी कुर्सी पर बैठ गया। मैं द्रवित हो उठा था, धीरे से बोला, 'अनेक धन्यवाद!' इसके बाद तीन और लोग बोले। रंगप्पा ने हॉस्टल के दिनों की हमारी दोस्ती का बयान किया, इसके बाद शास्त्री और एक ऑनर्स का छात्र बोला। उसने कहा, 'हमारे देश को हमारे अतिप्रिय शिक्षक के समान, जो आज हमें छोड़ कर जा रहे हैं, और भी बहुत से शिक्षकों की आवश्यकता हैं।' कोमल परंतु तीखी आवाज़ में उसने अपना कथ्य पूरा किया, 'राष्ट्र का नवनिर्माण इन्हीं के द्वारा संभव है।' सम्मान और सद्भाव घने कोहरे की तरह मुझसे लिपटे जा रहे थे। अंत में मैं भी उठा और बोला, 'मित्रो, मैं आप सबको इन शब्दों के लिए धन्यवाद देता हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि किसी राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए नहीं, बल्कि अपने ही स्वार्थ के लिए मैं यह कार्य छोड़ रहा हूँ। मुझे इस समय अपनी शांति की सबसे ज्यादा तलाश है। मैंने पाया कि वयस्कों की दुनिया और उनके लिए कार्य करने में मुझे शांति नहीं प्राप्त होगी, यह प्राप्त होगी इस दुनिया को छोड़कर

बच्चों की दुनिया में प्रवेश कर उन्हीं के लिए कार्य करने से। उस दुनिया में मैंने पाया कि शांति और संतुलन का अपार भंडार है। इससे ज्यादा मेरे दिमाग़ में इस समय कुछ नहीं है, और मैं चाहूँगा कि आप मेरे बारे में अपनी धारणा सही कर लें। मैं आप सबका और अपने प्रमुख का अत्यंत कृतज्ञ हूँ...।' मैं वाक्य पूरा किये बिना ही बैठ गया क्योंकि मेरी आवाज़ काँपने लगी थी।

रंगप्पा चमेली और गुलाब के फूलों की एक बड़ी सी माला लाया और उसे मेरे गले में डाल दिया। एक और माला उसने प्रिंसिपल के गले में डाल दी। तालियां बज उठीं। किसी की आवाज़ आई 'थ्री चियर्स फॉर अवर गेस्ट ऑफ दि ईविनंग'...हिप, हिप...।' आसमान गूँज उठा। फिर थ्री चियर्स फॉर दि प्रिंसिपल...,' और मीटिंग समाप्त हो गई।

रात को काफी देर बाद मैं अपनी सड़क पर अकेला, चमेली और गुलाब की माला की खुशबू से लदा, जो मेरी बाँह में लटकी थी, घर वापस आ रहा था। सोच रहा था, 'किसके लिए ले जा रहा हूँ यह माला?' सुशीला होती तो माला को पूरे दो दिन खज़ाने की तरह सँभालकर रखती, इसके टुकड़े काट-काटकर सवेरे और शाम अपने बालों में लगाती। अब उस अकेले घर में माला ले जाकर क्या करूँगा?'

अँधेरे में मैंने ताले में चाभी लगाई, दरवाज़ा खोला और रोशनी जलाई। माला एक खूँटी पर लटका दी और बिस्तर को ठोकर मारकर खोल दिया। फूलों की गंध घर-भर में फैल गई। उन पर थोड़ा सा पानी छिड़क दिया। जिससे ताज़े बने रहे। फिर रोशनी बुझाई और सोने के लिए बिस्तर पर लेट गया।

माला मेरे सिर के ठीक ऊपर लटक रही थी। उस पर जो पानी की बूँदें डाली थीं, उनसे फूलों में नई जान पड़ गई थी। उनसे निकलने वाली तेज़ सुगंध मेरे मन में भी नया चैतन्य भर रही थी। लगा कि वातावरण गमक उठा और आध्यात्मिक शक्तियाँ उसमें प्रवेश कर रही हैं। वायु के हर कण में उनकी गंध समा रही थी और परम सुख में जैसे-जैसे मेरा मन डूबने लगा, इन्द्रियों की शक्तियाँ तीव्रतर होती चली गईं। मेरी चेतना आकाश में लुप्त होने लगी। लगा कि भूत, वर्तमान और भविष्य सब एकाकार हो गया है।

मैं इस दिन किये कामों, मीटिंग और मित्रों से हुई बातचीत के बारे में सोच रहा था। परंतु अब उन सबका महत्व समाप्त हो चुका था। मैंने अपने मन में इनका मुआयना किया। स्मृतियों के टुकड़े उभरकर आने लगे— ब्राउन की एक दृष्टि, डेन्टिस्ट के सामने वाले कमरे में खिलौना-घर, हाथ में माला लिये रंगप्पा, भाषणों के कुछ शब्द और आवाज़ें—यह सब धीरे-धीरे साफ़ होता जा रहा था और उसके स्थान पर मन का भवन केवल एक सुगंध से भरता जा रहा था। यह नशे की तरह मेरे मन पर छा गया—श्रेष्ठ, अध्यात्म का नशा। इसमें अपने अस्तित्व और स्मृतियों को डुबो देने के सिवा मेरे लिए कोई उपाय न रहा। मैंने धीरे से पुकारा, 'सुशीला, सुशीला, मेरी पत्नी...।' इस ध्वनि ने मेरे सारे व्यक्तित्व को ढक लिया। यह शब्द ध्वनि बनकर संगीत की तरह मेरे चारों ओर बजने लगे। 'मेरी पत्नी...पत्नी...मेरी पत्नी...सुशीला!' मेरा मन इस लय में झूमने लगा। और मैं अपने अस्तित्व को भूलने लगा। मुझे झपकी-सी आने लगी और मैं कहने लगा, 'पत्नी, मेरी पत्नी!' कब तक...कब तक मैं यह कहता रहा, पता नहीं। जब आँखें खोलीं तो पाया कि सुशीला मेरे बिस्तर पर बैठी है, स्वर्गिक मुस्कान से मेरी ओर देख रही है।

'सुशीला! सुशीला!' मैं चीखकर बोला। आ गईं तुम? 'हाँ, मैं आ गई। मैं हमेशा यहीं रही हूँ।' मैं तकिये के सहारे बिस्तर पर बैठ गया। उसने कहा, 'तुम परेशान क्यों हो रहे हो?'

'मैं तुम्हारे लिये जगह बना रहा हूँ', एक तरफ सरकते हुए मैंने जवाब दिया। मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा। और कहा, 'कितनी अच्छी लग रही हो तुम!' उसका चेहरा सोने के रंग से दमक

रहा था, नेत्रों में एक नई आभा थी, साड़ी लकदक कर रही थी! और उसमें, जैसा उसने कहा था, 'रोशनी' के तार पिरोये हुए थे।... 'कितनी सुंदर!' उसे एकटक देखते हुए मैं कह रहा था। 'मैं जब भी तुम्हारे पास आती हूँ, यही पहन कर आती हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम्हें यह बहुत पसंद है,' उसने कहा। मैं उसे देखे जा रहा था। चमेली की सुगंध उसके चारों ओर तैर रही थी। 'चमेली की सुगंध।' मैंने कहा।

'ज़रा रुको,' यह कहकर मैं उठा। खूँटें पर टँगी माला उतारी और बिस्तर पर वापस आ गया। माला उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला, 'तुम्हारे लिए, हमेशा की तरह...। मुझे डर था कि तुम इसे नहीं लोगी...।' उसने मुस्कराकर माला ले ली और उसका एक टुकड़ा तोड़कर बालों में पीछे लगा लिया। फिर सिर घुमाकर पूछा, 'अच्छी लग रही है?'

'अद्भुत!' मैंने कहा और उसे सूँघा।

मुर्गे की आवाज़! प्रभात की पहली किरण खिड़की से झाँक रही थी। ठंडी हवा हमारे चेहरों की छू रही थी। अचानक हमारे व्यक्तित्वों की सीमाएं समाप्त हो गई। अपार, अजाने सुख का क्षण था यह—जिसके लिए हम जीवन और मृत्यु के कृतज्ञ हैं।